शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिए
आधुनिक प्रकाशन, बीकानेर
द्वारा प्रकाशित



# भीगी हुई रेत

सपादन चित्रा मुदगल

प्रकाशक
शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए
आधुनिक प्रकाशन
दाऊजी मंदिर, बीकानेर 334001
आवरण किनमिन
मूल्य इक्कीस रुपये मात्र
संस्करण प्रथम, 5 सितम्बर 1989
मुद्रक एस० एन० प्रिंटस,
नवीन शाहदरा दिल्ली 110032

BHIGI HUI RET
(Short Story)
Edited by Chitra Mudgal
Price Rs 21/

# आमुख

राजस्थान के शिक्षक साहित्यकारो की सजन-यात्रा को शुरू हुए 22 वप बीत चुके ह । 1967 मे शिक्षक दिवस प्रकाशनो की जिस शृखला का सूत्रपात किया गया था, उसमे अब तक 106 पुस्तके सामने आ चुकी है । सजन का शतक तो हमने गत वप ही पार कर लिया था, अब हमारी यात्रा दूसरे शतक की ओर है—क्रमबद्ध, गतिमान और पुख्ता । सजन-यात्रा की इस सफलता पर मैं राजस्थान के शिक्षक साहित्यकारो को बधाई देता हू । मुझे विश्वास है कि अपनी रचनात्मक प्रतिभा और मौलिक ऊर्जा से व पीढी को सस्कारित करन और मानव प्रकृति को परिष्कृत करन मे कामयाब होंगे ।

शिक्षक साहित्यकारो की इन कृतियो को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता और सराहना मिली है । अपने प्रकाशनो मे हमन विविधता और गुणवत्ता दोनो पर ही ध्यान दिया है तथा देश के प्रतिष्ठित साहित्यकारो से उनका सम्पादन करवाकर उन्हे हर दृष्टि से स्तरीय बनाने का प्रयास भी किया है । जाहिर है कि उच्चकोटि के सम्पादन के कारण ऐसी रचनाए ही निखर कर सामने आई है जो युग की रचनात्मक सवदना का साथक अभिव्यक्ति दे सके ।

साहित्य-लेखन अपने आप मे एक अनुष्ठान है । यह सत्य तक पहुचने की मनुष्य की तलाश का एक ऐसा यत्न है जिसम क्षर न होने वाले 'अक्षर' की तथा चिरन्तन 'शब्द' की पूजा होती है । शब्द की यह अनुगूज ही युग की अनुगूज है । वतमान को सस्कारित करके एक आस्थावान उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करना ही इसका लक्ष्य है । मुझे आशा है कि हमारे शिक्षक साहित्यकार इस कसौटी पर खरे उतरेंगे ।

गत वप के आमुख म मैंने एक सुझाव दिया था । मैंने कहा था कि "साहित्य की सभी विधाओ मे गति के साथ लिखन वाल कलम के धनी अध्यापकगण शिक्षक दिवस योजना के तहत प्रकाशित होन वाली पाच पुस्तका की अगली कडी को इतना स्तरीय बनाये कि उनकी रचनाओ पर राज्य के विद्यालयो म और साहित्य-सस्थाओ म गोष्ठिया आयोजित की जाए । इसके लिए व अभी से प्रयत्न मे लग जायें ताकि अगले वप के प्रकाशनो म उनकी वप के दौरान लिखी गई प्रतिनिधि रचनाए ही प्रकाश मे आयें ।" आशा है इस वप की पाचो पुस्तकें इस कसौटी पर खरी उतरेंगी तथा साहित्यिक चर्चा का एक एसा माहोल बनगा जो लेखका और पाठका के बीच म एक साथक सवाद सिद्ध हो सकेगा ।

एक बात और। दिशाबोध (जुलाई 1989) में मैंने खुली किताब के शैक्षिक उपहार की चर्चा की थी। खुली किताब से आशय है अध्ययन का वह मुक्त वातावरण, जो अकादमिक घुटन को दूर कर, शैक्षिक ऊब को मिटाये और बौद्धिक बोझिलता को हल्का करे। खुली किताब वह है जिससे दूसरी किताबें भी खुलें, जो पढ़ने पढ़ाने का एक मुक्त वातावरण बनाये और चिन्तन व सृजन को नये आयाम दे। इससे सबका विकास होगा—पढ़ने वाले का भी और पढ़ाने वाले का भी। अध्ययन केवल ग्रेड और इन्क्रीमेण्ट के तंग गलियारों तक सीमित नहीं रहेगा वरन् सरस्वती (ज्ञान, जिज्ञासा, रचनात्मक सृजन) के प्रति समर्पित होगा। साहित्य भी तो इसी का एक रूप है। एक अनौपचारिक शिक्षण है यह। जीवन की किताब से बटोरे हुए अनुभव जब गहरी संवेदनाओं से जुड़ते हैं तो अच्छे साहित्य का जन्म होता है। मुझे विश्वास है कि गुरुजन खुली किताब के खुले चिन्तन के आधार पर जो सृजन करेंगे वह स्थायी महत्व का होगा और पीढ़ी को संस्कारित कर सकेगा। मुझे उसी दिन की प्रतीक्षा है।

इस वर्ष प्रकाशित होने वाली पांच पुस्तकें हैं—

1 मोती मूंगे समुद्र का (कविता संकलन) स० कैलाश वाजपेयी।
2 अनुभव के स्फुलिंग (हिन्दी विविधा) स० गोपाल राय।
3 पाचामृत (राजस्थानी विविधा) स० नानूराम संस्कर्ता।
4 भीगी हुई रेत (कहानी संकलन) स० चित्रा मुद्गल।
5 पंख पंख रंग (बाल साहित्य) स० अनन्त कुशवाहा।

मैं इस अवसर पर अतिथि सम्पादकों, रचनाशील अध्यापकों, प्रकाशकों एवं उन सभी लोगों को धन्यवाद देता हूं जो इस अनुष्ठान में किसी न किसी प्रकार से भागीदार बने हैं। जिन लेखकों की रचनाएं इस वर्ष प्रकाशन में नहीं आ सकी हैं वे निराश न हों, बल्कि अपने लेखन की धार को और अधिक तराशने का प्रयत्न करें।

शिक्षक दिवस, 1989

(ललित के पवार)
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान
बीकानेर।

## ऐसी हो हमारी कहानिया

### भूमिका

आज, जिस समय और परिवेश में हम जी रहे हैं वहा नये लेखन की भूमिका, दायित्व और प्रभाव पर चर्चा करना जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही अनिवाय भी। यह कहने के पीछे मेरा यह मतव्य कत्तई नही है कि हम महज नये लेखन को तरजीह दे। दरअसल, मैं कहना यह चाहती हू कि समय के साथ-साथ विकासमान हमारी सेंसिबिलिटी अपने समय, समाज, राजनीति और जीवन को प्रभावित करने वाली शक्तियो को जितनी बारीकी से पकडने म समथ है, उसे अनदेखा नही किया जाना चाहिए। परिवतन की रफ्तार जितनी तजी से बढी है, उसी तजी स बडे परिवार की सुरक्षा भी हमारे दायरे से बाहर चली गई। देखने म, ऊपरी तौर पर यह एक ऐसा सदभ कहा जा सकता है जो बेहद सामाय ह, किंतु इससे जडे प्रभाव, सुखद और दुखद अनुभूतिया जितनी तजी से जीवन पर नजर आती ह वही आज के रचनाकार की जमीन भी उतनी ही तेजी से बनती चली जाती है। ऐस मे लेखन का जन-जीवन स जुडना सहज ही स्वाभाविक हो जाता है। क्योकि छोट परिवार म बाहरी जीवन और अदरूनी जीवन की दीवार बहुत कमजोर होती है, बाहर हो रहे परिवतन तेजी से हमे प्रभावित करते रहे हैं तब दो ही सूरतें रह जाती हैं—हम इन परिवतनो को स्वीकार करें या अस्वीकार। यानी, नयी समझ, चेतना और विकास की गति हमे माय है, तो हम उसके प्रभावो को ग्रहण करना होगा। किन्तु यह सब, इतनी सहज गति से होने वाली कोई सामाय क्रिया नही है कि बाहर कुछ हुआ और हमने उसकी उपयोगिता को दखत हुए, उसे स्वीकार या अस्वीकार

कर दिया।

नय लखका को इस सदभ म नई ससिबिलिटी, यानी विकसित होती हुई कला चेतना अपनी कलात्मक समझ का इस्तेमाल करत हुए ही साहित्य कम करना होगा। इस सग्रह की कुछ कहानिया इस दष्टि म जिम्मेदार लेखन का प्रतिनिधित्व करती नजर आती है।

आज जबकि पत्रकारिता बहुत तेजी से अपना महत्त्वपूण प्रभाव बना रही है हमे देखना होगा कि रचना के ससार और पत्रकारिता के बीच अतर कहा होता है। राष्ट्रीय जीवन का दखन का जो नजरिया पत्रकारिता का है उससे रचनात्मक लेखन के नजरिये को कहा अलग किया जा सकता है! मान लें, हमे कथा या कविता का तत्व पत्रकारिता के जरिये मिलता है और हम उससे अनुभूत यथाय के जरिये ह्यूमेन कसन की कोई रचना कर लेते हैं तो मेरी समझ म यह एक बडी बात होगी।

कहानी को माध्यम बनाकर चर्चा की जाय तो बहुत सीधे और साफ शब्दो म कहा जा सकता है कि आत्म-केंद्रित या जो हमारा जिया भोगा है उसी पर आधारित लखन अब सामयिक नही कहा जा सकता। व्यक्ति के मानसिक जगत की खोज करन वाली श्रेष्ठ कहानिया वरिष्ठ कथाकार बहुत पहले ही कर चुके है। हमारी पीढी के रचनाकार की चिन्ताए मनोवैज्ञानिक ससार की खोज बीन स उतनी नही जुडी हैं जितनी बाहरी जगत की परिवतन-कामी शक्तियो और उनके प्रभाव से। यहा हम यह स्वीकार करते हुए चलना होगा कि रचनाकार की अति रिक्त सवदनशीलता ही उसे इन चिन्ताओ से जुडने पर मजबूर करती है। यहा आकर नय रचनाकार का राष्ट्रीय चेतना के सही स्वरूप और उसकी आधार भूमि स परिचित होना जरूरी हो जाता है।

आजादी के बाद के रचनाकार ने जहा मोहभग को आधार बनाकर रचनाए प्रस्तुत की, वहा उसको वह विशिष्ट मानसिकता काम कर रही थी जिसके तहत कभी यह माना गया था कि हम अधेरे स बाहर उजाले म सास लेंगे बहरहाल, आठवें दशक तक आते आते हमने समय से बहुत कुछ सीखा। हमने जाना कि आजादी का सही अथ क्या है? भारतीय नागरिक के जहन म अधिकार और

वतव्यो की तस्वीर क्या है ? वे कौन-सी शक्तिया है जो हम एक होने से रोकती है ! इस महान्देश की विविधधर्मी जनता की आत्मा को एकता के सूत्र मे बाधने वाले पारदर्शी धागो का तोडने की साजिश बार-बार क्या की जाती है ? हम जानते हैं कि सामान्यत व्यक्ति कभी साप्रदायिक नही होता लेकिन इस्तेमाल करने वाली शक्तिया उसे ही अपना कच्चा माल बनाकर लडाती रहती हैं, आखिर क्यो ? प्रजातत्र और आजादी तभी सार्थक हो पाती हैं जब हम अपना जीवन स्तर उठा सकें।

आग बढने का भ्रम दिमाग म बना रहे, और हम अपनी जगह खडे होकर कदम-ताल करत रह, तो अपनी अस्मिता और चेतना को कुद होन मे अधिक समय नही लगेगा हम उपलब्ध यथाथ की गरिमामय झाकी कभी इतिहास तो कभी वतमान मे देखत रह जायेगे और अपक्षित यथाथ का सपना हमारी आखो मे दम तोड देगा पर क्या सचमुच हो पाएगा ऐसा ! शायद नही, क्योकि हमारे शिक्षक और रचनाकार की आख बराबर व्यापक जनसमुदाय की ओर लगी है उसकी चिताए, समस्याए और सघष अकेले नही है। अब आदमी अकेलपन की अधेरी गुफाओ म कद नही है। इसकी वजह यही है कि हम आजादी क मूलभूत चरित्र को पहचानन की दिशा मे कदम बढा रह है। यह हमारी राष्ट्रीय चेतना का मूल बिंदु हैं। इसे समझाने की दिशा म पहलकदमी शिक्षक ही कर सकते है।

हमारी कलात्मक समझ पनी हो रही है और इसी के साथ साथ हमारे युवा रचनाकार अपनी रचनाए दे रहे हैं और हम सामाजिक साथकता के साहित्य की जमीन भी बनती हुई दख रहे है। आज का रचनाकार महज लिखने के लिए लिख रहा हो, ऐसा नही है। ये कहानिया प्रमाण है क्योकि अपनी विशिष्ट जीवन दृष्टि और परिपक्व विचारधारा यहा लेखन का आधार है। व्यक्ति से शुरु होकर वह समूह तक समय सदभ का लेखा जोखा प्रस्तुत करता है। उसका विश्वास रोमा टिक क्राति म कम और आर्थिक शोपण स मुक्ति म अधिक है। त्रासद यथाथ से सबद्ध आदमी की जद्दोजेहद हो या मानवीय सबधो के बीच बढता हुआ फासला, हमारा रचनाकार जिदगी के व्यापक अनुभवो को रचनात्मक अभिव्यक्ति द रहा है।

इस सग्रह की अधिकाश कहानिया इस दृष्टि स विशेप रूप से उल्लेखनीय हैं

कि अनुभव की ताजगी और अभिव्यक्ति के कच्चेपन की सोंधी गंध इनमें बराबर दिखाई देती है। कहीं परिस्थितियों से जूझने की हिम्मत सजोई गई है तो कहीं टूटता हुआ मनुष्य भी मौजूद है। रिक्त होती जा रही संवेदना हो या गरीबी की मार से टूटता आदमी। समय की रफ्तार के साथ आगे जाता इंसान हो या खुद में परिवर्तन न कर पाने के कारण पीछे छूटता इंसान अविवाहिता की समस्या हो या नष्ट होते जा रहे पारिवारिक सुखों की दास्तान, साम्प्रदायिक सद्भाव की कमी को रेखांकित करना हो या अपनी मिट्टी से लगाव को ये कहानियाँ कुल मिलाकर हमारे समाज की समूची तस्वीर प्रस्तुत कर सकी है। यह दीगर बात है कि कुछेक रचनाकारों को छोड़कर शेष प्राय रचनाकार बनने की प्रक्रिया से गुजरते प्रतीत होते हैं। और इस में कहानी, जाहिर है कहीं अधिक विस्तार लेती प्रतीत होती है तो कहीं उसका कहानीपन खिसकता प्रतीत होता है, बावजूद इसके यह आभास बराबर बना रहता है कि हम जिस विराट रचना संसार से होकर गुजर रहे हैं वह बेहद इमानदारी और मासूमियत से भरा है। इसकी सीमाओं में जीवन के प्राय सभी रूप और रंग देखे जा सकते हैं। कहीं विषय बहुत आकर्षक है तो निर्वाह कमजोर रह गया है और कहीं घटनाओं और विवरणों को ज्यों का-त्यों रख देने से कथात्मकता पिछड़ गई है। एक ललक जो सबमें देखने में आयी है वह है—बेहतर इंसान बनने की ललक। और इस ललक के समक्ष कुछ भी छोड़ने को तैयार होना एक आदर्श स्थिति है।

बिहार-भागलपुर से आयी ये कहानियाँ यदि सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर चली हैं तो यह अनायास नहीं हुआ है। शायद यही इन रचनाकारों से अपेक्षा भी होती है। हमारे इन रचनाकारों को समझना होगा कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अहम भूमिका अदा करने के लिए हमें चीजों को जड़ों तक जाना होगा। जीवन के सत्य की गहरी पहचान के साथ-साथ अपने अभिव्यक्ति-माध्यमों को तराशना होगा। अपने मूल्यों की रक्षा के लिए अपनी आवाज को और अधिक वजनदार बनाने के साथ-साथ उसमें नयापन समाना होगा।

आज जब हम संकट के दौर से गुजर रहे हैं। फूट डालने वाले हर वक्त ताक लगाए बैठे हैं। साम्प्रदायिक दंगों का वहशी और खौफनाक अंजाम जानते हुए भी हम उद्दत होते हुए जब-तब लड़ते रहे हैं। क्षेत्रीयता की संकीर्ण मानसिकता का

परिणाम हम पिछले कई सालो से अपने ही देश मे बहुत करीब मे देख रहे है । जाति गत संघर्ष, भेद भाव और प्रादेशिक विवादो के रहते हमारी राष्ट्रीय चेतना को उभरने की दिशा मिलनी ही चाहिए जो निसंदेह नयी लेखनी से ही सम्भव है मुझे किसी कवि की वह पंक्तिया स्मरण नही हैं किन्तु उनका अर्थ है—"आओ, हम उन परदो को उठा दें जो हमे एक-दूसरे से अलग करते है। आओ हम उनको मिला दें जो बिछुड़ गये हैं । हमारे दिल की बस्ती लंबे समय से वीरान पड़ी है, आओ, इस देश मे एक नया शिवालय बना दें । शक्ति और शांति भक्ता के गीतो मे है और इस धरती के निवासियो की मुक्ति प्रेम और सद्‌भाव से ही हो सकेगी ।'

उम्मीद करनी चाहिए कि ये रचनाकार आगे चलकर और बेहतर रचनाएं देंगे।

(चित्रा मुद्‌गल)

300-डी, पॉकेट-2
मयूर विहार, फेज 1
दिल्ली 110091

## अनुक्रम

भीगी हुई रेत

# टूटते क्षणो का बोध

सावित्री परमार

चपा भौजी के पाव आज जमीन पर नही पड रहे थे । पूरी देह तितली के रगीन पखा-सी उडी जा रही थी । जो घर उनको जड, मनहूस और पराया-सा लगता था, वही जैसे दूध मे नहाकर दप्प से खिल उठा था । हर काम म अतिरिक्त उत्साह जाग उठा था ।

आज आगन मे खेलत बच्चे और बडा क ऊचे बाल भी प्यारे लग रहे थे । खुद भी हरेक बातचीत, हसी दिल्लगी मे आगे बढ-बढकर हिस्सा ले रही थी । आगन, घर, दीवारो म मजीरे-से बज उठे थे । रसोई का पूरा काम उनके हाथ म हर दिन ही रहता था, लेकिन आज का मामला कुछ और था । हर चीज म मन घोले डाल रही थी । बरसात म धुले आसमान म फली चमकती धूप-सी करारी चौध उनकी आखा मे लहरा उठी थी ।

पूरे आठ महीना के बाद बाबू रामनाथ एक हफ्ते की छुट्टी पर घर आये थे । खूटी पर टगे कपडा ने और बरामदे म उतरे जूतो ने जैसे पूरे घर मे चपा भौजी के लिए अपनी अलग दुनिया बसा दी थी । मर्दानी बठक से उठने वाली उनकी आवाज ने उनके मन मे पूरा बसत उतार दिया था । कब सुबह होती कब दोपहर, सोचने-समझने का हिसाब रहा क्या ? कहा मिली सास लेने की फुसत ? पूरा हफ्ता हवा मे उडते तिनके-सा कब बह गया, वे नही जान पाई ?

देही फिर लस्त पस्त-सी हो उठी । उदासी की मुर्दानी परत पुतन लगी । उनका क्या, यो ही बौराई रहती । वह तो धोबन आकर बोली कि—

"कपडा चार दिन म ही तैयार करके जल्दी भागी हू । बाबू कल जायेंगे न ! आखिर बक्स बिस्तरा जमाते वक्त सामान सामने नही हो, तो कैसी मुसीबत हो जाती है ! लो गिन लो ।'

परन्तु एक-एक कपडा गिनते हुए ही काप उठी थी रूई की फुई से अच्छे उडे दिन ? गाडी भरा कुनबा होते हुए भी सारी उमर इसी चौबारे, आगन की

टूटी-फूटी हवेली में बाट डाली।

खुद तो बाबू बाहर नौकरी करने गए और कुनबे की गाड़ी खींचते रहे। पैसा पैसा कमा बचाकर घर की ईंट-ईंट पर लगाते रहे। भाई-बहनों के शादी-ब्याह, मौत कारज, पढ़ाई-नौकरी, क्या नहीं बचा, जो मा-बाप के इशारे पर करते नहीं रहे। जब से ब्याह कर इस घर में आई, यही उमर गलाती रही। एक दिन भी चूल्हे चक्की से पिण्ड नहीं छूटा। ज्यादा-से-ज्यादा पन्द्रह-बीस दिन मायके में घूम फिर आई। इधर तो डेढ़ साल से वहां भी जाना नहीं हुआ। मा-बाप की आखें मुदते ही भाई-भौजाइयों के तेवर गले में नीचे नहीं उतरें, तो चुप्पी खींच ली खुद। करती भी क्या?

दोपहरी भर दिमाग में आधी-सी गहराती रही। एक हूक भी मन को बांध लेती कि बाबू कल चले जायेंगे, फिर? अचानक एक हिलोर-सी उछली कि क्या न इस बार वह भी बाबू के साथ चल दे?

उनकी नौकरी का राज भुगत आये। वैसे भी नौकरी किनारे पर है। मुश्किल से पाच छ साल बचे हैं। तब रिटायर होने में क्या न चार दिन वह भी यहां से निकल शहर में मौज कर आये? कोई पहाड़ तो टूट नहीं पड़ेगा। कैसा अच्छा लगेगा। दो ही का काम जितना भी हसो, जोर से बोलो, कुछ भी खाओ, घूमो, बायस्कोप देखो, तबीयत से सुबह जागो मन हो काम करो, नहीं आराम करो। तरस गई इस सपने को पूरा करने के लिए। सोचते-सोचते कच्ची हिलोर पक्के इरादे का रूप लेने लगी एक हठीली जिद अमर-बेल की तरह दिल दिमाग को कसने लगी।

फिर उमर भी कौन-सी कस्तूरी गंध रह गई है कि सौ बातें बनेंगी? हाथ में केवल आज की सांझ है। अंतिम रात है जो कुछ करना पूछना है, वह इन्हीं क्षणों के बीच है। मन का पाखी डैने खोल उड चला। इसी ऊहापोह में साझ भी ढल गई।

रात को बड़े जतन से चौके में पाटी पर भोजन लगाया। खूब चाव से पास बैठकर खाना खिलाया। मुरादाबादी कलई के डिजायनदार लोटे में पानी और फूल पत्ती खुदे नये गिलास में मलाईदार दूध दिया। एक कोने में देवरानी बैठी बैठक में बैठे महमानों के लिए शरबत बना रही थी।

दोनों ननदें भी वहीं देहरी पर बैठी भाई को थाली के ध्यान के साथ-साथ घर-भीतर की बातें भी बतिया रही थीं। मझली देवरानी नल के नीचे बर्तन साफ करती जा रही थी और कनखियों से जिठानी का जेठ के लिए जरूरत से ज्यादा दुलार बरसता हुआ भी देख रही थी। छोटी सामने कोठरी में जच्चा बनी हुई थी।

भोजन-पानी करके बाबू जी फिर बैठक में पुरुषों के बीच जा बैठे। थोड़ी देर बाद बाहर के महमान जब उठ गये तो भाइयों के साथ आगन में बिछी खाटों पर

सबको बठाकर खुद तख्त पर अधलेटे हो गये। पूरन चाचा और बिमन मामा भी आ बैठे।

पाच भाइयो का भरा पूरा कुनवा। तीन यही कस्बे म लग हुए थे, छोटा बाहर पढता था। सबसे बडे बाबूजी हैं, हमेशा बाहर नौकरी पर रहे। उन्ही के बल-बूत पर सारे भाई पढे रोजगार बठाये। ब्याह शादी हुई। दो बहने ब्याही। मा बाप का कारज किया। पिछली साल मा बराबर मौसी की बरसी की। विधवा होकर यही रही, यही मरी, तब श्राद्ध-पुण्य और कहा होता? बहनो के आय दिन खच लगे रहत। त्योहार-वार अलग, भात छोछक अलग। इसलिए इन्ही कुओ-पोखरा को भरने के लिए खुद बाहर मारे-मार जी-पट मुट्ठी मे कसे भागत-दौडत रहे और चपा भौजी यहा हलकान होती रही।

रात गहरी होती जा रही थी और मर्दों की बाता का अन्त नही आ रहा था, चपा भौजी के जी मे उठक पटक मची हुई थी। ज्यादा दिन दूर रहने के कारण उनका रोम-राम उनके ऊपर आख कान बना रहता था। होनहार ऐसी रही कि दो बार काख हरी हुई, लेकिन जमीन छूने से पहले ही बच्च ठडे हो गय। फिर तो रामजी की ऐसी आख फिरी कि हजार देशी-अग्रेजी इलाज कराय, सब धरे के धरे रह गय। उनका मन भले ही इस ख्याल से दुखी रहा, पर बाबूजी न कोई गिला नही किया, भाग्य से या उनस।

भाइया की औलाद अपनी मान कर चले। इतनी उमर पार करके भी आज बाबूजी के आग वही नई-नवली दुल्हन की तरह लजीली रहती है। न आख भर दखने की हिम्मत और न मुह भर बोलने का दम। बाबूजी की आवाज-आहट सुनते ही कलेजा धडक उठता है। सासँ कण्ठ मे जम उठती है।

घर के पुराने कायदे कानून। बडे छोटे रिश्ता की हजारो लक्ष्मण रेखाए। आखा तक आज भी घूघट। दिन म क्या काम बैठने-बतलान का! हसी-ठठ्ठा! राम भजो। इसी कारण तो बाबूजी उनके लिये सबस बडा प्रलोभन बन रह। उनकी देह के स्पर्शो से लेकर कपडा की मामूली सरसराहट तक उनका दम खींच लती थी। आज भी कसी कद काठी वाल बाबूजी पान खात हुए, मलमल का कढा हुआ कुरता पहन आगन की चादनी मे तख्त पर मसनद के सहारे अधलटे उन्ह बडे अच्छे लग रहे थे।

घाटी म गूजती तहदार आवाज, धीर धीर बोलकर खुलकर हसना, भरे भरे चेहरे पर करीने स कटी हुई मूछे, उठी हुइ चुनटदार पलका वाली आख और लम्बी चौडी स्वस्थ काया उनकी आखा को, मन को भमेरी बनाय रहती है। सामने भी और लम्ब बिछाह म भी।

बातें चल रही थी। उनके मन म झुझलाहट उभरने लगी। भला कोई बात हुई यह! अरे, आज की रात तो कम से कम या मजलिस न लगात। उनका एक-

पर पन उनका साथ पाने को प्रतीक्षित हो रहा था, लेकिन उन्हें कहां ध्यान ?

चपा भौजी को यह भी कम भारी दूसरा दुख था कि साहस बटोर कर जब भी उन्होंने मन का मीठा गाठें खोलीं बाबूजी हमेशा टाल गये, या इन्हें बार-बार दुहराये जाने पर झल्लाने कि—

'तुम्हारा ही मन है। तुम्हीं ज्यादा दुखी हो ? अपने को ही नहें का दवी रखना मानती हो। सबके बीच आना, उठना-बठना है, तो सौ निगाहों, मिजाजों को भी देखना परखना होता है कि नहीं ? फिर सौ फिकर। हजार समस्याएं! हमेशा आदमी का मन एक जैसा ही बना रहता है क्या ? तुम्हारी नजर के इशारे पर सब होता ? फिर भी अगर कोई बात, हमारा वचन या बेजा बात तुम्हें अखरगी, तो कसम कसम ले लो, कभी ही नहीं भी बात की एक बात कि जिससे तुम्हारा जो दुख, वह नहीं होगा दो घडी मिल हैं तो उन घडियों को बेकार खराब मत करो हमेशा आरी बनी क्यों भदती हो ?"

लो, सुनो और एकदम जमाने में निराली बात। आख भयभीत हिरनी-सी ठमक जाती हवा में सिहरती पाखुरी सी सांस कांप उठती आठ नवजात कपोतों के पंखों की तरह खुले थम रह जाते कैसे कहती कि उनके आठों पहर बाबूजी के इद गिर्द छाया बने रहते हैं हरेक सपना उन्हीं के हाथों गिरवी है। उनकी उमर, उनका जीवन, संसार सब वही हैं। वह जानती है उनकी मजबूरी को, पर अपने मन की विवशता, ललक और हर घडी भीतर उगने वाले शब्दों का अर्थ कहां ढूंढें! किस पूछें ? किसको दिखायें ?

ऐसे ही निर्मल आवेग पूर्ण क्षणों में उनका सिर जब कभी भी बाबूजी की चौडी, भरी छाती पर टिक जाता या अपनी हथेलियों की अंजुरी में उनका मर्दानी गंध भरा चेहरा के टिका कर नेह की पागल धुन गुनगुनाकर टकटकी-सी बांध देखने लगतीं तभी बाबूजी चौंक पडते।

"अहो-बहू! होश खो बैठती हो। कोई भी किधर से निकल कर आ सकता है थोडी दुरुस्ती से बैठो। हां, हां तुम बोले जाओ हम सुन रहे हैं लेकिन नजर जरूर बाहर रखेंगे चार दिन को आये हैं क्या कुछ कच्ची कनगोठियां बनाने का मौका दें दूसरों को ?

और वह बंजर जमीन-सी धू धू हो रेत माटी हो उठती अपमानित चुभन और चाव मार मे भी बुरी बाबूजी जब बाहर की ओर नजर निगरानी करेंगे, तो वो किससे बतियाएगी!

यहां भी चपा भौजी वचन बर्दाश्त नहीं बाबूजी का यह रूप ढह उठती बदली-सी भिगा डालती उनके कंधे घुटने नदी-सागर ढलक उठने आखों से हाथ जुड उठते माफी मांगती। हर बात भूल बिलखिला उठती। बाबूजी जरा सा हंस देते या दुलार उठते कि बस निहाल हो उठती बिछ जाती फिर उनके

सकेतो पर लेकिन मन के महल का पूजा घर या ही घण्टिया बिना बजाए सूना-सूना प्रतीक्षित रह जाता, जिसकी चदन रची देहरी पर दौडती, हाफ्ती, थकी-टूटी-सी आकर वे फिर बठ जाती नये पुरान ताने-बाने उधेडती बुनती उमर के पाव यो ही घायल होत रहे, पर चपा भौजी की काया, उनका मन बाबूजी के नाम पर सदा परिक्रमा करता रहा। एक पूजा थी, जो अनवरत चल रही थी।

रात पर कालिमा की एक और गहरी पत चढ चुकी थी। उनके मन की झुझलाहट ने अब क्रोध का रूप ले लिया था। आधी रात हा चली और यह है कि उठने का नाम नहीं! आयेंगे भी ता क्या! मुटठी म कितना-सा वक्त रह जायगा भला? सुबह मुह-अधेरे ही फिर उठा दग भाइया और छोटी बहुआ के सामने कायदा-कानून जो रहना लाजमी है! ऊह! पूरे ही देवता बनत हैं! खुद को पता क्या कि छोटे भाई लोग पीछे म अपने बीवी-बच्चा के साथ कितने हसत-बालते हैं?

दिन मे भी देवरानिया पचास बार कमरे दालाना म अपने-अपने आदमियो से मिलती है बाहर भी जाती है नुमायश, नौचदी, नगामेला कहा नही गई! मदिर मे तो खैर जाने का नियम-सा है। एक वही बालू-पाट की नदी रही। पीछे अगुलिया पर दिन-हफ्त गिनती हुई। सारे घर का काम धधा निबटाती हुई अनाथ-सी। जिठानी-देवरानिया का घर बराबर का काम। खुद का करना क्या? न बालक-बच्चे, न मद घर मे नखरे गुमान कहा करे! मख्त हिदायत, कि इह हमार भाई मत जानना बराबर के बेट जैसे है छोटे पचास कह लें, तो भी पी जाओ। तभी तो वे सिर चढे रहते हैं। चलो माना, पर घर वालो को चाहिए कि अब तो उहें पीछा छोडें।

बाबूजी के पैर हिले। भौजी का दिल बल्लिया उछल पडा। जगले की किवाड छोड हटने को हुइ। एकदम आ जायेंग, खडा देखेंगे, तो क्या सोचेंग? परन्तु यह क्या! उन्हाने तो कोहनी के नीचे तकिया रखकर और अच्छी तरह टिका लिया था।

चपा भौजी का कलेजा कोयला हो उठा। खडे-खडे पाव अलग टूट गये थे। हे राम! ऐसा मरदमानस किस काम का? अरे, खुद के भीतर से अगर सारा खून निचुड गया है, तो दूसरा का तो ध्यान करें! काहे के बाबूजी, कोरे पत्थर के टीले! इन घर वालो को दखो जरा, बाक-नाक भिडाय बेकार की बातें कर रहे हैं। ऐसे तो अब डूब सारे तार! भाड मे जाओ सब उन्होन खिडकी के पल्लो को भडाक से खाला और बद किया। झपट कर आगन मे आयी और घडौची क पास आकर घडो पर रखे गिलास-लोटा को जोर-जोर से अदलने-बदलने लगी, लेकिन बाबूजी ने कमर फेरकर उधर एक बार भी गौर नही किया। आखिर उन्होंने जिठानी के लडके गोविंदा को बुलाकर कहा कि ताऊजी के कान मे उठने के लिए बाल द

और फिर खिडकी की फाक मे आखें जमा कर खडी हो गयी ।

इसके भी करीब आधा घण्टा बाद बाबूजी उठे । लोटे से भरकर पानी लिया । पीकर इधर उधर होते रहे । शायद इस इतजार मे कि भाई लोग अपने ठिकाने हो तो वह अपने कमरे मे जावें ।

चपा भौजी ने धीरे से खिडकी कसी और बिस्तर के पास बिछी खटोली पर बैठ गयी, बाबूजी भीतर आये । उनके मुह मे दबे पान से कीमती तम्बाकू की खुशबू मे सारा कमरा गमक उठा । जले घावो पर जैसे किसी ने नमक का लेप कर दिया । बिना उत्तर दिये भभक उठी और बाहर मे लोटा भर पानी कटोरे से ढक कर लाई, तिपाई पर रखकर झपाक मे दरवाजा बन्द कर दिया ।

बाबूजी का शरीर सकोच से भर उठा । अस्त-व्यस्त से होकर बोले

"अरे, अरे, चम्पू ! यह क्या गजब करती हो ? देख रही हो अभी मिराली वाली बहू गोद के को लेकर नाली पर गयी है । दम्मू भी शायद आगन मे ही हैं । ठहरो जरा ! अभी दरवाजा बन्द मत करो खोलो इसे ।"

परन्तु फिर किवाड खुले ही नहीं । चपा भौजी गुस्से से भरी लोप हो रही थी । बाबजी ने पूरी मनुहार की । गलती भी मानी और अन्त मे वही घिसा पिटा आदर्शवादी बहाना रखा सामने ।

"क्या समझती हो तुम ! तुम्ही यहा अकेली परेशान थी ! मैं बधा हू । कभी कोई आ रहा है, कभी कोई मिलू नही किसी से ? कैसे भीतर बैठ जाऊ सई-साझ से ? तुम्हारा मन नही पहचानूगा क्या ! तुम भी तो मेरी सोचो खैर, अब ठीक से बैठो, बोलो । देही मे भी कुछ थकावट-सी है, ये रूठारूसी छोडो जी ।"

बस हो गया मान घमड ! हसकर बडे आराम से उन्होने तो पा ली छुट्टी ! चपा भौजी क्या बैठी रह अब कमर फेरे ? बैठना है तो बैठी रहो बेशक बाबूजी तो नींद मे बेकाबू हो जायेंगे टसरका किसको दिखायेगी ? छोडो, जाने दो । ठीक ही तो कहते हैं मैं भी क्या करें ? बाबूजी ने कोई दिल्लगी की और वह हस पडी, बादल फट गये ।

बातो की रिमझिम शुरू की उन्होने बाठ और नाक चढाकर । आखो मे नई-पुरानी निजनिया खीच कर कुछ एस अदाज मे अपने दिन के जले-भुने टुकडे रखे कि बाबूजी का बर्फ से भी ज्यादा ठण्डा दिल अलाव सा भभक उठा ।

शिकायतो की सीढियो पर चढकर पूरा मन उडेल दिया गगा-जमुनी धाराए बहाकर यह भी कह दिया कि—

"इस बार चाहे कहर टूटे या मौत आय, वह जरूर जरूर उनके साथ जायेंगी नही तो जिन्दा नही रहेंगी । कहूनगी जहरी छान जहर है घोट-पीसकर निगल लेगी अब दम ला खुद मरी का मुह देखना है या सग ले जाना है ? साथ ले

जाना हो, तो हां हूं की खाली हामी से काम नहीं चलेगा। हथेली थमकर सौगन्ध देनी होगी।"

बाबूजी सुनकर सिर्फ मुसकराते रहे। उनकी ओर करवट करके धीरे धीरे कुछ बोल भी देते थे हम देते ये ।

जाने कब कैसे लालटेन के मंदे पीलियाए उजाले में चम्पा भौजी की नाक का बेसर ऐसा झमका मार के कौंधा कि बाबूजी आखें फैलाकर रह गये। नई रंगीन चूड़ियों के भार से ठसी गुदाज कलाई जान ले बैठी। झीनी गुलाबी रंगत वाली धोती से माक्त बुंदो के लटकन कलेजे मे कोंचा मारने लगे। भादो से उमड़ते आंचल की कोर जाने कब खिसक गई थी सासो की शाख पर कैसे पखेरू फड़फड़ा उठे थे। बाबूजी की देह सन्ना गई। वे ठगे हुए-से लुटे-लुटे हो उठे।

चालीस पार करके भी बदन की ऐसी गठी कसावट पर और मक्खनिया गुदकारे चेहरे पर उनकी नजर अब तक क्यों नहीं गई थी! घण्टा मुंह फाड़े ऐसे देखते रहे, जैसे हारा थका पथिक मीलों के धूल फांटे भरे सफर के बाद अचानक हरियाली पा जाये! प्यासे हिरन को रेगिस्तान में लबा-लब झील मिल जाये! चंपा भौजी ऐसी नई-निकोर तो कभी लगी ही नहीं वाह! और इन्हीं कमजोर क्षणों में उन्होंने साथ ले जाने की स्वीकृति दे दी पक्की मोहर के साथ सपने लहरा उठे। नींद कैसी! पलकों में रतजगा हो गया।

सुबह पूरा घर हैरान, कि कोई जिक्र नहीं, तयारी नहीं और ऐसी तावड़-तोड़ जाने वाली बात एकदम कैसे जम गयी? बड़े भैया चंपा भौजी को नौकरी में संग ले जायें? ऐसी असंभव बात इतनी पुख्ता? किसी का दिमाग काम नहीं कर रहा था। धरा उठाई शुरू हो गयी, दोपहर की गाड़ी हर हालत में पकड़नी थी।

चंपा भौजी फिरकनी हुई भाग रही थी। देवरानियां, ननदें राह-गैल का खाना बनाने में जुट गयी। वह अब क्यों देखें चौका? बला से, कुछ भी साथ बांधो, चाहे रहने दो। जाने कितनी जगह सौ तरह के नाश्ते-खाने? अब किसकी री-री, झीं-झीं डिब्बा खोल जेवर निकाले। पायजेब बिछुए खूब निखार तार वाले बुरुश में। गुलूबंद चंपाकली, दानमाला पहनी। चूड़ियों के आगे शेर के मुंह वाले कड़े दबाये। गूंज-अंगूठियां पोरओं पर चढ़ाई। गुच्छेदार तगड़ी पहनी। चमकनी बिंदी और नोकदार काजल डालकर बालों में खुशबू वाला तेल थपक मांग भरी फिर माला मोतिया से गुथा झब्बे वाला चुटीला। बेला नाइन से महावर रचवाई। पड़ोस की बिट्टो से लेकर नाखून पालिश रंगी। सुनहरी फूलों बाने किनारे की रेशमी लाल धोती पहनकर बड़े जतन से कपड़े में लिपटी-धरी चप्पलें फट-फटकार कर पहनीं। ऊपर से मूंगिया झलक लगी गोटा टंकी वायल की चद्दर ओढ़ घूंघट खींच लिया। जी का उछाह समेटा नहीं जा रहा था।

समय हो गया था चलने का। देवरानियों ने पांव छुए। उन्होंने बाल-बच्चों के सिर पर हाथ फेरा। दूर रिश्ते की चचिया सास ने दस-बीस अच्छी सलाह दीं। नाइन ने सजी लुटिया में पानी भर कर दिया। दो घूंट पीकर उसमें धनधनाते दो रुपये डाले। नाइन ने आसीसें देते हुए वह पानी उनके सामने पर सिरा दिया।

मन हाथ से बाहर हुआ जा रहा था। सड़क-बस्ती पार होते ही चादर उतार कर चार तह करके घुटनों पर रख ली और बाबू जी पर काजल भरी चितवन से एक तिरछी मुस्कान फेंक दी। उन्होंने भी उसका भरपूर जवाब आड़ी-टेढ़ी आंखों से दे दिया।

अपनी मोहिनिक विजय पर वह निहाल हो उठी। हमेशा यह जान रहे कि—

"क्या करोगी साथ जाकर? ज्यादा ही जी उचाट हो रहा है तो गांव चली जाओ, महीना-बीस दिन के लिए। बाबू और ताई खुश हो जाते। हमारे लिए तो वही बड़े-बूढ़े हैं। अपनी चार-बीघा खेती है। ढोर-डंगर है। दूध पानी ही बदलेगा, बुजुर्गों की सेवा का पुरस्कार अलग। गांव-गली के आदमी भी तारीफ करेंगे। दूसरी बात यह है कि जाने कैसा मौका आये! रिटायर होकर वहां देही खटानी पड़े! अपना घर गांव तो देखना ही है न।"

और चपा भौजी विद्रूप भरी हंसी हंसकर टाल देती थी—

"धत्तेरे की! वाह, बड़ी मिली हैं घर का कूड़ा बया! जायें वहुए चाची के पास। उन्हीं ने जगत की सेवा का ठेका लिया है न! जायेंगे रिटायर होकर गांव? बड़े देखें यही। सारी उमर घिसा दी अकेले दावानों में सिर फुड़वा कर, अब जाओ गोबर माटी में निबटने।" रेल की खिड़की से सिर निकाल कर बाहर बड़े चाव से देखा। गांव खेत, पेड़ दौड़े जा रहे थे।

नौकरी के आनंद पाकर वह हरदम झूमती रहती। दो आदमियों का क्या काम? मन पसंद खाना, पहनना। आजाद मैना-सी फुदकती रहती छोटे से क्वाटर में। शाम को बाबूजी का हाथ पकड़कर दूर तक घूमने जाती। लगातार चार पांच सिनेमा देखे, तो लगा कि जिंदगी का बहुत-सा अनदेखा पूरा कर लिया।

बाबूजी काम पर चले जाते, तब क्वाटर के चबूतरे पर बैठकर बातें करती। पड़ोसिया से बाबूजी की जाली के फूलों वाली बनियान बुनती। अपने भरे पूरे कुनबे का, बाबूजी के त्याग का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करती। दिन यों ही फुर हो जाता। सई-सांझ से लेकर दूसरे दिन दस ग्यारह बजे तक खूब तबीयत के साथ बाबूजी की संगत रहती।

दिन दिन जोड़ लगाकर वर्ष समय के पंखों पर पलक झपकते तैर गये। अंतिम वर्ष रह गया बाकी। इसी बीच उन्होंने चार-छः नये फैशन की साड़ियां और हल्के

फुल्के दो-तीन गहने बनवा लिए थे। विद्यालय की नौकरी इससे अधिक वैभव और क्या देती भला ?

घर के ब्यौरेवार किस्से चिट्ठियो मे आते रहते थे, परन्तु यह भी उनकी नजर मे छिपा नही था कि उन चिट्ठियो मे जिस आदर, प्यार और इतजार की गुनगुनी गर्मी बाबूजी तलाशते है, वह नही मिल पाती। यह भी कि वह गाव मे भी खत-पत्री इन दिनो ज्यादा डालने लगे हैं, खैर, यह तो वे भी जानती हैं कि खेती-बाडी और गाव की हवा उन्हे हमेशा खीचती रही है। कहते रहे है कि चार पसे की नौकरी शहरियो को क्या ? दो दिन खाओ और अट्ठाइस दिन रबड की तरह खीचते रहो। उधर माटी मे मुट्ठी भर दाने छितराओ और सारे कारज जी खोलकर पूरे करो।

रिटायर होने का दिन भी आ गया। सारा सामान समेट दोनो घर की ओर लौट चले। अपने छोडे हुए कस्बे के स्टेशन पर उतर चपा भौजी को बडा आश्चर्य हुआ।

अजीब सा नयापन। या कहे तो अजनबीपन। तागा सडकें गलियो को जब पार करने लगा, तो उन्हे महसूस हुआ कि वह किसी दूसरे नगर मे आ गई है। सडक, बाजार, रास्ते सब नई पहचान लिए लगे। यहा तक कि अपनी गली के नुक्कड तक यही भ्रम बना रहा। हालाकि सामने दीवानजी की हवेली के आगे नीम और पीपल के पेड बदस्तूर खडे थे। वही हनुमानजी की छोटी गुमटी। वही पीरखा का चबूतरा। कोने मे वह रहा लाला बनवारी लाल का किलेनुमा ऊचा फाटक " लेकिन फिर भी कुछ था, जो बहुत उलट पलट नजर आ रहा था।

दरवाजे पर तागा रुका। इधर उधर खिडकियो-दरवाजो मे छोटे-बडे चेहरे झाकने लगे। परिचित-अपरिचित से

पन्द्रह दिना मे ही घर मे बसी उदासी और परायेपन के कारण का पता लग गया। इस उसके मुह से बात आई कि भाई लोग अलग चूल्हा करना चाहते थे। क्या ? बेटे की तरह पाले पोसे इनके भाई ? छोटे देवर ? यह कानखजूरी सीख किसने दी ?

बाबूजी इस घर के लिए इनके लिए बहू-बच्चो के लिए, सारी सुख-सुविधाओ के लिए आख, कान, मुह बन्द करके कुर्बान होते रहे और अब ? आखिरी उमर मे आकर चूल्हा अलग करेंगे अपना ? बेटा-बेटी की तरह मानकर जिस आदमी ने बुढापे तक कायदा, लाज शर्म आखो मे ओढी, उसी को आज इन लोगो ने आखो से तिनके की तरह छिटककर फेंक दिया। पर किससे कहे यह बेहयाई ? सुनेगा भी कौन ? और जिस निलज्ज दो-टूकपने से बात चली थी, उसी दो टूक तरीके से दस बडो के बीच घर का बटवारा हो गया।

बाबूजी और भी ज्यादा खामोश हो गये। एक छत के नीचे बसा घोंसला स्वार्थी नाखूनों ने नोच-खसोट कर बाग्ह बाट कर डाला। चपा भौजी क्या करती? घुटने कमर ही टूट गये। उनके बाबूजी कट पड की तरह ढहकर पड गए। अब जी कहा चैन पाये?

घरवाले मार मनधुन हो उठे। बहुओं की घूघट-गाती उठने लगी। बच्चे जिनके पेट जाप किय थे, थूक-लार पल्ले से पोछे थ, वही उनकी और बाबूजी की खिल्ली उडाने लगे थे। शिकायत करो तो कोने-कोच म फुसफुसाहटें उठने लगी थी ये दोनो तो सठिया गये हैं। कुछ समझते तो है नहीं। बकार काय काय करना। रोटी खा ली, मतलब नौकरी पीट ली और मर लिए। दुनिया क्या है, कहा जा रही है, इसका अदाज क्या? मा बाप की खुस पुस सुनकर बच्चे खिलखिल दात फाड देते मन तो करता कि खींचकर एक मारें हाथ और पूछें कि माठिया पन क्या होता है? अपने मा बाप को भी नालों-गटर म दबाव देना अच्छा! लेकिन बाबूजी की आखो का सकेत पाकर खून का घट पीकर रह जाती।

चपा भौजी दख रही थी कि बाबूजी दिन पर दिन रिसने ही जा रहे थे। हलका सा बुखार और खासी ताडती रहती है। वैद्य जी की पुडिया कोई असर नही कर रही थी। क्या करें। दूसरे डाक्टर को दिखाये? उन्हें दखकर उनके हाथ परो का सत अलग म निकल गया था।

भीतर बाबूजी खास रहे थे। कराहने की आवाज आई। वह दौडकर गई कमर छाती सहलाने लगीं हाथी-सा बदन सिकुडकर बास बराबर रह गया था। बदलाव का गम क्या कम हौलनाक होता है? फिर एक तो बात चीखकर दद फाड ल, वहा कुछ बह तो जाता है, लेकिन जहा बूद-बूद पी ली जाये मन की टीस, वहा का जहरी तालाब देही को ही चाटगा।

चपा भौजी की पलकें तालाब बन गई, झरझर कर बाबूजी की छाती पर बिखर गईं। उन्होंने कापते हाथ उनके सिर पर रख दिए--- अरे बावली! तू क्या आधी हुई जा रही है! अभी मैं जिन्दा हू अचानक हल्सा गुजरा है, सो हिल गया हू, टूटा तो नहीं हू ना?" वह छाती पर सिर टिकाये सुबकती रही। बुखार शायद तज था। तवे की तरह खाल तप रही थी।

'अब चुप कर चपी! जी सम्भाल। उठने-बठने लायक होने दे, तब अपने गाव चलेंगे। काकू मर गये। काकी अकेली जिस तिस म आध-बटाई पर हल साझा करवा रही है। बूढी काया भी सुख पा लगी चार दिन। सारी जिन्दगी बाहर दूसरो के सिर की छाया के लिए बिता दी, चल अब माटी का कर्ज भी उतार दू क्यो? मुझे क्या पता था कि आगन यो दगा द जायेगा!"

चपा भौजी की आखो म जुगनू चमक उठे। "आपसे आज कहू, पहले डर

था । एसा पता होता ता बाहर दो ईंटो का झापडा छा लेते।

"खर, चिट्ठी डलवाये दे रही हू गोमू से कि अठवाडे बीच हम आ रहे हैं। दवाई लेके सो जाओ दो घडी ।"

सचमुच कइ दिन बाद बाबूजी को बडी गहरी नीद आइ। सिर ऊपर जो शहतीर झुका चला आ रहा था, लगा कि नही, अभी सिर पर छत की छाया बनी हुई है पाव तले की जमीन अभी ज्यादा बिखरी नही ह कोइ नया अबूझा-सा सपना उनकी पुतलिया को थपकन लगा था ।

# मुक्ति-पथ

माधव नागदा

वह जब तेली के घर लाया गया तो छोटा सा था। महज तीन महीने का। तेली उसे अपने दोस्त करमा सुथार से दस रुपये में लाया था। चूंकि उस रोज शनिवार था, यानी थावर, इसलिए तेलन ने उसका नाम रखा थावरा। थावरा था बहुत प्यारा और चंचल। समझदार भी इतना कि जब तेली पुकारता 'थावरा' तो वह कूदता-कूदता जहां-का-तहां रुक जाता और कान खड़े कर गले से हैंड-हैंड की मद्धिम आवाज निकालता।

घर में थावरा के अलावा एक बूढ़ा बैल भी था जो आंखों पर पट्टी बांधे लकड़ी के एक कोल्हू के चारों ओर गोल-गोल घूमता रहता। थावरा को उसका यूं एक ही दायरे में घूमते रहना समझ में नहीं आया। तेली उस मरियल से बैल को हरदम धमकाता रहता और कभी-कभी तो बेरहमी से पीट भी देता। परन्तु थावरा का इस सबसे कुछ लेना-देना नहीं था। वह तो उछलता-कूदता, चौक में चौकड़ियां भरता खाता और पसर जाता। कभी-कभी तेली कहता "कर ले प्यारे मौज जितनी करनी हो। तेरा भी नम्बर आने वाला है।"

इसी मौज-मस्ती में वक्त गुजरता गया। फिर एक दिन ऐसा भी आया कि दो आदमी बूढ़े बैल को घसीटकर ले गये। बस, तभी से थावरा पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। तीन साल का होते न होते घाणी में जोत दिया गया। लगभग एक वर्ष हो गया है, उसे इसी तरह चलते चलते। पता नहीं कितना सफर तय हो चुका है कितना शेष है। रोज सवेरे तेली उसकी आंखों पर अंधा चश्मा चढ़ा देता। दिन भर वह चलता रहता चलता रहता। जब चश्मा खुलता तो थावरा पाता कि रात हो चुकी है, और वह जहां से सवेरे चला था अब भी वहीं है। शीघ्र ही उसकी समझ में आ गया कि आंखें मूंद एक ही दायरे में बार-बार तय किये जा रहे अनजान सफर की यंत्रणा कैसी होती है।

'हिच हिच हिच।' तेली ने टिचकारी की। थावरा को बहुत थकान अनुभव

हो रही थी। मगर कम्बख्त तेली था कि उसे पल भर का भी विश्राम नही देता। उसे तली की शक्ल से ही नफरत थी। कितने क्रूर और कितने बेढग होते है, य मनुष्य। घाणी की लाट की तरह लम्बे। न झिग मिर करती पूछ, न बदन पर मुलायम मुलायम रोये, न माथे पर सीग।

बाप र सीग नही है, तो भी तेली कितना मारता है, सीग होत तो। थावरा काप गया। उसके पैर अनायास ही तज हो गये। हालाकि तेली घर के अदर चला गया था।

कुछ देर तक कोई आहट न पाकर थावरा को विश्वास हो गया कि तेली आस-पास नही है। उसन राहत की सास ली। वह रुक गया।

बस, एसे ही वह दिनभर म कुछ क्षण चुरा लेता है। यह चुराया हुआ वक्त ही उसका अपना होता है।

"गधे के बच्चे। नमकहराम। अब तेरी घण्टी बाघनी ही पडेगी।" तेली माना जमीन फाडकर निकला। थावरा चैन की दो सास भी नही ले पाया कि तेली का हथौडे जैसा हाथ उसकी पीठ पर आ जमा। ऊपर से बेहूदी गाली। थावरा को यह गाली सबसे नागवार गुजरती है। वह तो गऊ का जाया है। विशुद्ध साड-पुत्र है। और तेली-राजा उसे गधे की सतान घोषित कर रहा है। वह इतना अनजान नही कि गधे से परिचित ही न हो। पास ही कुम्हार का घर है, जहा गधा रात को गला फाडकर बेसुरा राग अलापता है, और सारे दिनभर नजरें झुकाये बोझ ढाये चला जाता है। विरोध की कोई कोशिश तक नही।

तेली के प्रति उसके मन मे क्रोध भर गया। वह फुकारा।

"गुस्सा करता है, ले। और कर गुस्सा।" तेली ने एक और जमा दी। फिर एक और। एक और।

"मार ही डालोग क्या, बेचारे अनबोल जीव को?" अन्दर से तलन चिल्लायी।

थावरा को अपनी स्थिति पर बेहद क्षोभ हुआ। य दो पैर वाले जानवर हम चार पैर वालो पर कितना अत्याचार करते हैं। क्या इससे छुटकारे का कोई उपाय नही है?

'ठहर जा, अभी तेरी नमकहरामी का इलाज करता हू। कमला की मा, वो घण्टी लाना तो जो मैं कल बाजार स लाया था।'

घण्टी? हा, याद आया। थावरा ने खेतो पर काम करने वाले बैलो के गले मे देखी थी। तेली उस रोज कुए पर ले जाता है, पानी पिलाने। उस समय थावरा की आखो पर मनहूस चश्मा नही होता। वह कान खडे करके और पूछ हिला-हिलाकर चारो ओर बडी उत्सुकता से देखता है। हरे भरे पड। पेडो की छाव तले जुगाली करती खूबसूरत और युवा गायें। खेतो मे काम करते मेहनतकश गठील

वदन के रत्न। दसा के गन म रुनझुन करती घटिया।

य बल किनन खुशनसीब ह। जब य हल म जुतत हैं, तो मालिक इनकी आखों पर पट्टी नही बाधता। हावन वक्त इन्ह 'गधे क बच्चे' या 'नमकहराम' जसी गदी गालिया नही देता। भाईड, बापुड जस प्यार नाम देता है। उसकी बोली म तेली की तरह टुच्चापन नही होता बल्कि एक मिठास होती है। स्नेह-पगा स्वर। और इन बलो का आराम क क्षण चुरान नही पडत। किसान स्वय उन्ह विश्राम की छुट्टी देता है। हरी-हरी कवली-कवली घास डालता है। थावरा का तो रोज रोज सूखी खली खाकर हाजमा ही खराब हो गया है।

थावरा इन भाग्यशाली बैलो को हसरत भरी निगाहों म देखता। दोपहर क वक्त बाड के उस तरफ वे आपस में सीग लडाते ठिठोली करते या फिर एक-दूसर को चाट रह होत। हर भर धान के खेतो पर पसरी गुनगुनी धूप म उन्ह रश्क होता। थावरा को देखकर सेतिहर बैल आवाडत, सीग म जमीन कुचरत, खुर पटकते मानो थावरा का आह्वान कर रह हो कि आओ, गुलामी की जजीरें तोड कर आओ और हमम शरीक हो जाओ। फिर कोई तुम्हारी आखो पर पट्टी नही बाध सकगा तब तुम रोशनी का भरपूर आनन्द उठा सकोग।

बाड के इस पार थावरा छटपटाता। करुण स्वर म अब-अब करता। बाड को सूध-सूधकर देखता कि कहा पर वह कमजोर है और किस तरह इस चीरकर वह अपने हमजोलियो म शामिल हो सकता है। उसका जी होता है कि किसान क बैलो की तरह वह भी खुली हवा मे सास ले, खेत म अन्न उपजाय और जी भरकर दुनिया को निरखे। उसके गले म भी किसान के बल की तरह पीली-पीली सी घटी हो और जब जब वह खुल खेतो मे कुदडकी लगाए तो रुनझुन रुनझुन

तली ने उसके गल म घण्टी बाधकर पुट्ठे पर एक लात जमायी, "चल, अब कस चकमा देगा, मैं भी देखू।

ठन-ठप ठन-ठप।

थावरा को लगा कि इस घटी म वह रुनझुन नही है, जो जा खेतो पर तरा करती है। तेली कबाडी क यहा स एक बहुत पुरानी, फूटी हुई घटा ल आया था। उसस अजीब-सी बसुरी ठन ठप आवाज निकल रही थी।

अब तेली थावरा को चलता करके घर म तलन के पास आकर बठ जाता। घटी अपना बेसुरा राग अलापती रहती 'ठन-ठप ठन ठप'। मानो थावरा को चिढा रहा हो। थावरा जसे ही सुस्ताने लगता, तेली करता, 'हुड-हुड हरामखोर।' उसक थके कदम फिर तेज हो जाते।

थावरा कसमसाकर रह जाता। उसके भीतर लावा इकट्ठा हो रहा था। वह तली को देखते ही फुफकारने लगता। जब-तब सीग भी मार देता। परन्तु तली हर बार अपन को बचा लेता और बडबडाता तुझे ढेड फाडे, मारना सीखा है।

ठहर जा इसका भी इलाज है, मेरे पास।"

क्या तेली के पास उसके हर कदम का काट मौजूद है? दो पैर का यह जानवर इतना ताकतवर क्योंकर है? कहते है, इन लोगो के पास दिमाग नाम का एक अचूक हथियार होता है, उसी के बूते पर ये हम पर शासन करते है। तो क्या इस अनचाहे अंधेपन से कभी छुटकारा नही मिलेगा? थावरा सोचता और तिल-मिलाकर रह जाता।

पैर जवाब देने लगे थे। तेली के डर के बावजूद वह रुका और गरदन को झटके देकर आस पास भिनभिना रही मक्खियो को दूर भगाया। और यह क्या घंटी बज उठी ठन ठप ठन-ठप। ओह, तो खडे-खडे भी घंटी बजायी जा सकती। थावरा को सुखद आश्चर्य हुआ। उसने इस बार महज परीक्षण के तौर पर अपनी गदन झटकायी। फूटी घंटी फिर बजने लगी। तेली घर मे बैठा था। इस बार उसने नही किया—"हू-हू, हरामखोर।'

थावरा को लगा कि रोशनी की कोई झीनी-सी किरण चश्मे को भेदकर अनायास ही झिलमिला उठी है। अब उसके पैर थक जाते तो खडे खडे गरदन हिलाता। गरदन थक जाती तो चलने लगता। हा, इस बात की पूरी चौकसी रखता कि तेली आसपास न हो। और उसके कान अब तक तेली की पदचाप सूघने के अच्छी तरह अभ्यस्त हो चुके थे।

थावरा को यह नया प्रयोग बहुत मजेदार लगा। उसमे विश्वास भर गया कि वह इस अजूबे जानवर से बराबरी का मुकाबला कर सकता है।

परन्तु उसकी खुशफहमी बहुत दिनो तक टिक नही पायी। आखिर एक दिन तेली ने देख ही लिया, "अरे-अरे थावरा, तू इतना बेईमान हो गया? मैं भी सोचू कि आजकल तेल कम कैसे बैठ रहा है। हरामखोर नालायकी करता है। धन्धा चौपट करने पर तुला है।"

तेली ने दो चार लातें जमा दी। थावरा के नथून बजने लगे। मुझे हरामखोर कहता है। अरे हरामखोर तो तू है, जो मेरा कमाया खा रहा है। मैं तो खरी मेहनत का खाता हू। सारे दिन अधेरे का पहाड खोदता हू, और तेल का झरना पी जाता है, तू। मुझे तो यह भी पता नही कि तेल का रग काला होता है या पीला। मेरे हिस्से तो निचुडी हुई खली हैं—तेरी गालिया है तेरे डण्डे हैं।

थावरा यह सब कैसे कहे। इसान के साथ रहते रहते वह इसानी भाषा समझ तो लेता है, परन्तु बोलना नही आता। तो फिर कैसे अपना विरोध प्रकट करे?

उसके भीतर का लावा कसमसाने लगा।

दोपहर को जब तेली ने उसे खोला तो लावा फट पडा। वह झपटा और लगा मेंटियाने। एक तरफ दीवार आ गयी थी। दूसरी तरफ थावरा का सिर। दे भचीका दे भचीका।

"अरे, अरे थावरा। मार डालेगा क्या? हाय रे, मरा रे।"

भीतर स तलन दौडकर न आती तो तली की गत ही बिगड जाती। तलन ने सोटा उठाया और लगी थावरा को धबीकने।

"ल और मार। ल मार। हा हो। तेरे पर वडका पडे। तुझे गोयरा काट। ढेड की हाडी म दू तुझे। मैं तो हिमायत करती हू कि अनवोला जीव है। मत मारो। और यह तो उल्टे ।

तली हाय र हाय र कर रहा था। थावरा भौचक्का था। वह कुछ समझ नही पा रहा था। तली को भेटियाने का उसे दु ख नही था। अफसोस था तो इस बात का कि तलन ने उसे पहली बार इस बुरी कदर मारा था।

तलन अपन पति को सहारा देकर अदर ले गयी। तल-हल्दी की मालिश की। गम गम चाय पिलायी। बोली 'अब सो जाओ तनिक। उस ढेड को मैं आज न तो पानी पिलाऊगी और न चारा डालूगी। अभी जोतती हू जाकर।'

आकर देखा तो पाया थावरा जस-का-तस खडा है। चमडी काप रही थी। गदन झुकी हुइ। खुला था फिर या खडा था जस खूटे से बधा हो। चारे का तरमा तक नही तोडा। चुपचाप और गमगीन, गोया किसी गहरे सोच म डूबा हो।

मालकिन को देखकर थावरा ने हौल स सर उठाया और कान खडे करके इस कदर कातर दृष्टि स दखा कि नलन की सारी कठोरता नारियल के तल की भाति पिघल गयी। वह जाकर थावरा की गदन से लिपट गयी, "पगल, बलद की जीवा जान म आकर इतना गुस्सा करता है? य तो अपनी-अपनी देह के दण्ड हैं, भोगने ही पडेंगे। जीना तब तक सीना। हम इसान हैं, तो भी कौन-स सुखी हैं। एक दिन भी घाणी न चलायें तो दूजे दिन खाने के भी लाले पडे। अब तो सुना है, गाव का सठ बिना बल की घाणी ला रहा है। बिजली चलायगी उसे। फिर तो पडी घाणी लक्क" बराबर। तरी आखो की पट्टी हम अपने पेट पर बाध लेंगे। तू आजाद हो जाना, बस। थोडे दिना क लिए गुस्सा काहे को करता है।'

तलन न उसकी गदन सहलायी। थावरा कुछ समझा, कुछ न समझा। परन्तु तलन क भीग स्वर न उस आत्मीयता से सराबोर कर दिया। वह अपनी खुरदरी जीभ स मालकिन का हाथ चाटन लगा।

इस घटना के बाद दो-तीन रोज तक तलन न ही घाणी हाकी। वह मारती कम थी। उसकी गालिया अखरन वाली नही होती। परन्तु अधेरा तो यहा भी बरकरार था।

और जब उसकी पीठ पर मुक्क और पट पर लात का एक साथ प्रहार हुआ ता थावरा समझ गया कि तली आ पहुचा है। उसने भी नथून बजाकर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की।

'ठहर जा, तरी विद्या तो मैं अभी गोटे करता हू।' तली ने स्वर की क्रूरता मे

कोई अंतर नही आया था।

जब आखो से पट्टी उतरी तो थावरा ने देखा कि तली के साथ तीन जन और भी है।

उन्होने थावरा को रस्सियो से जकड दिया। एक ने गर्म सूआ लेकर नथूनो के बीच की मुलायम चमडी को छेदा। दूसरे ने इस छेद मे पतली मगर मजबूत रस्सी पिरो दी। थावरा दर्द के मारे बुरी तरह छटपटाया। तली की क्रूरताओ का मानो कोई अंत नही था। उसने तीसरे को इशारा किया। तीसरा थावरा के सीग पर या आरी चलाने लगा जैसे सीग न होकर बेजान लकडी हो। खररर-खररर ।

थावरा के सीग कट गये। थावरा नथ गया। अनबोले जीव को बचाने वाली तेलन भी इस दौरान जाने कहा गायब हो गयी थी। अब थावरा जब भी तली के खिलाफ अपना आक्रोश उगलने को होता, तली नाथ पकड लेता। थावरा का सारा आक्रोश धुआ हो जाता। तली फिर भी धमकाता "रस्सी जल गयी पर बट नही गया। सारे को कची मारकर बागरा कर दूगा। समझता क्या है।"

तो तली के तरकश मे अभी भी तीर बाकी है। कर ले करना है जो, कसर मत रख। देह के दण्ड है, भोगने पडेंगे। थावरा को तेलन की बात याद आ जाती। परतु कब तक ? आखिर कब तक ? थावरा आशा और निराशा के झूले मे झूलने लगा।

धीरे-धीरे तली की ग्राहकी कम होती गयी। स्थिति यहा तक आ पहुची कि दो दो तीन-तीन दिन तक ग्राहकों के दर्शन तक नही होते। थावरा का चश्मा घाणी की लाट पर टगा रहता। तेली दिनभर मक्खिया उडाता, चिलम से धुआ छोडता और धीमे स्वर मे भुनभुनाता, "इस ढेड पाडे, मेरा धधा चौपट कर दिया।" दबे स्वर मे फकी यह गाली सेठ के नाम होती।

अब तेली के स्वर मे तुर्शी गायब थी। एक दिन वह मोची से कह रहा था, "कैसा पाजी जमाना आ गया है। बनिया घाणी चलाने लगा।'

मोची तिल की घाणी कराने आया था। तीन दिन मे आया एक मात्र ग्राहक। बोला, "वह तो जूते भी बेचता है। लोग प्लास्टिक फ्लास्टिक के पहन लेते है। मुझे कौन पूछे। सच कहता हू, गोरधन भाई, दाई से पेट क्या छिपाना, खाने के भी लाले पड रहे है।"

जवाब मे तेली ने एक लम्बी सास छोडी।

घाणी होने पर एक हाथ मे तेल की पीपी और दूसरे मे खली की गाठ लेते मोची बोला, ' चलू काका। पैसे बाद मे पहुचा दूगा। शाम को आटे-दाल का भी जुगाड करना है। बनिया तो एक पैसे की भी उधार नही करता।"

तेली ने जाते हुए मोची पर बेबस नजर डाली "मुझे भी अब यह धधा नही

पोसाता भाई। बच दूंगा इस सवरन को।'

सचमुच एक दिन कुछ लोग आये और घाणी की लाट निकालकर ले गये। तेनन झींकती रही, बाप दादाओं का धंधा है, इस तरह बेचते शर्म नहीं आती? लोग क्या कहेंगे?"

"बाप-दादा का है, तो क्या करूं? घाणी में तूं या मेरे हाथ-पैर दूं? मैं तो इस नालायक थावरा को भी बेच रहा हूं।

थावरा भी ऊब गया था। ये निठल्ले दिन तो और भी दुखदायी थे। खाने को भी भरपेट नहीं मिल रहा था। और जो मिल रहा था वह भी बैठे-ठाले। तेली अब अगर उसे गाली देता 'हरामखोर, निकम्मे' तो वह बुरा नहीं मानता। लेकिन तेली मानो, अपनी सब गालियां भूल चुका था।

फिर वह दिन भी आया जब एक किसान से दिखने वाले आदमी ने थावरा के पुट्ठे ठकठकाये मुंह खोलकर दांत गिने और पूंछ मरोड़कर उसकी चुस्ती को परखा। फिर बोला, "ठीक है, साढ़े तीन सौ में सौदा तय।

जब किसान उसे ले जाने को हुआ तो तेलन थावरा से लिपट गयी, "थावरा, तूने हमको बहुत कमाकर दिया रे। अब तेरे दिन उजले, हमारे अंधेरे। बावजी, मेरे थावरा को मारना-कूटना मत, बेचारे ने वैसे भी बहुत मार खायी है।"

तेली बोला "हरामखोर, थावरे। अपनी मरखनी आदत छोड़ देना। गुस्सा मत करना समझे।

तेली के मुंह से बहुत दिनों बाद अपने नाम छूटी गाली थावरा को अच्छी लगी। उसकी आंखों में रंगीन सपने झिलमिलाने लगे।

रास्ते में बाड़ के उस पार खेती की मेड़ पर बैल हरी-हरी घास चरते हुए एक दूसरे से सींग लटा रहे थे, और ठिठोली कर रहे थे। उनके गले की घंटियां बज रही थीं रुनझुन रुनझुन। थावरा ने आज बाड़ को सूंघा नहीं। न ही करुण स्वर में 'अम्ब-अम्ब' किया। बल्कि गहरी आवाज में ओंराड़ा और अपने चारों खुरों से खूब धूल उड़ायी। थावरा आज बहुत खुश था। □

# एक और द्रोणाचार्य

शीतांशु भारद्वाज

पूर्वी क्षितिज से बाल रवि उगने लगा था। नित्य कर्म से निवृत्त होकर धर्मदत्तजी छज्जे पर आ खड़े हुए। हाथ में तांबे की जलधरी गड़वी लेकर मन-ही मन सूर्य मंत्र का जाप करते हुए वे सूर्य नारायण को जल-धार चढ़ाने लगे। तभी कहीं से उनके कानों में शिब्बू की आवाज पड़ी—बाज्यू!

बेटे का वह स्वर उन्हें कर्ण-कटु लगा। उनकी पूजा-अर्चना में व्यवधान उपस्थित हो आया। देखा तो शिब्बू सीढ़ियां चढ़ता हुआ ऊपर उन्हीं की ओर चला आ रहा था। खाली हो आई गड़वी को नीचे रखकर वे उसे प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगे।

—बोज्यू क्या न मैं यहीं कहीं कोई छोटी मोटी ठेकेदारी करने लगूं! शिब्बू के मुंह से दारू के भभाके उठ रहे थे।

तड़ाक से उन्होंने बेटे के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। वे उसके लिए आंखें तरेरने लगे, कम्बख्त! सुबह सुबह ही नशा करके आ रहा है?

शिब्बू गाल सहलाने लगा।

—हरामखोर! धर्मदत्तजी उसके लिये दांत पीसने लगे, जब देखो, पिनक में ही डूबा रहता है!

शिब्बू जैसे आया था वैसे ही लड़खड़ाते हुए पांवों से चौपाल की ओर चल दिया।

धर्मदत्तजी वहीं छज्जे पर बैठ गये। दोनों हाथों से माथा पकड़े हुए वे अपने भाग्य को कोसने लगे।

जैंता बाप-बेटे की बातचीत सुन चुकी थी। छज्जे पर आकर उसने पति के कंधे पर हाथ रख दिया। क्या, क्या हुआ?

—सुअर की औलाद ठर्रा चढ़ाकर आया था। उनका मन खराब होने लगा।

वर्षों पहले एक बार उनके विद्यालय का निरीक्षण हो रहा था। उप विद्यालय निरीक्षक कोई शिल्पकार थे। उनके लिए उन्होंने विद्यालय की रसोई में स्वयं अपने ही हाथों से भोजन तैयार किया था। शरीर पर मात्र धोती और जनऊ धारण किये हुए ही उन्होंने उनके लिए दाल-भात बनाया था। एक अध्यापक से उन्होंने उन्हें भोजन करने के लिए कहलवाया था।

किंतु उप विद्यालय निरीक्षक महोदय कोट पैंट में ही बिना किसी सूचना के जूते पहने हुए ही रसोई घर में चले आये थे। उनके जातीय दर्प में जोर का उबाल आ गया था। उन्होंने आव देखा न ताव और उनकी ओर जलती हुई लकड़ी लेकर दौड़े थे। वे साहब वहां से भाग खड़े हुए थे। उसी करनी का फल उन्हें आज तक भुगतना पड़ रहा है। तब ऊपर से उनकी जवाबतलबी हुई थी। उनकी सेवा-पुस्तिका में कुछ ऐसी प्रविष्टि कर दी गई थी कि उनका पेंशन का मामला आज तक अधर में ही लटका हुआ है।

गांव की शाला से धमदत्तजी घर आ गये। पत्नी के साथ वे फिर से विचार-विमर्श करने लगे। जैसा बोनी, शिब्बू को किसी स्कूल में ही लगवा देते।

—देखो! धमदत्तजी सिर खुजलाने लगे, नैनीताल जाके अधिकारी से बात करूंगा।

अगली सुबह धमदत्तजी बस से नैनीताल चल दिये। पर चौक पर जाकर दुविधा में पड़ने लगे। कौन जाने, नये अधिकारी उन्हें मुंह लगाये भी या नहीं! हरीराम को कभी उन्होंने ही पढ़ाया था। शिल्पकार जाति का वह किशोर इतने ऊंचे ओहदे पर जा पहुंचेगा, इसकी तो वे कभी कल्पना तक नहीं कर सकते थे।

उन दिनों वे काशीपुर इंटर कालेज में संस्कृत के अध्यापक हुआ करते थे।

—मास्साब! नवीं कक्षा में अपने बेटे को प्रवेश दिलवाने आये हुए जीतराम लोहार ने उनके पांवों पर अपने सिर से टोपी उतारकर रख दी थी, मेरा हरिया अब आपके ही भरोसे है। उसके माता पिता, भाई बंधु सब कुछ अब आप ही हैं।

—अरे रे! वे दो कदम पीछे हट गये थे ऐसा न करो भई! तुम्हारा बेटा होनहार है। तभी तो वह सरकारी वजीफा लेकर इस विद्यालय में आया है।

—हूं! जीतराम सिर खुजाने लगा था, अकेली सरकार ही क्या कर लेगी? हमारा उद्धार तो तभी होगा जब आप जैसे ठाकुर-सयानों का हमारे सिर पर हाथ होगा।

—किधर के रहने वाले हो? उन्होंने पूछा था।

—हम लोग मनस्यारी के हैं। जीतराम ने बताया था, कभी मेरे बोज्यू ने बिना पानी का घट्ट (चक्की) चलाया था।

धमदत्तजी चौंक पड़े थे। अंग्रेजी शासन-काल में कभी मनस्यारी के शिल्पकार बधुवा लोहार ने एक ऐसी चक्की का आविष्कार किया था जिस पर एक

—छोड़ो भी ! जेता न उनकी उदासी पोछनी चाही, क्यो मन खराब करते हो !

पत्नी के साथ धमदत्तजी छज्जे म अन्दर चले दिये । जेता सुबह का कलेवा तैयार कर चुकी थी । चौके म पाल्थी मारे हुए व कलेवा करने लगे । पुत्र को लेकर उनका चिंतन फिर स प्रखर होने लगा । शिव्बू उन्हे कितनी तपस्या के बाद मिला था ! शिव भक्ति के बाद प्रौढावस्था म वह उन्हे प्रसाद के रूप म मिला था। तब उन्हे क्या पता था कि बडा होकर वह उनकी छाती पर मूग दलने लगेगा, कि वह उनका जीना ही हराम करने लगेगा !

—शिव ओम् ! शिव ओम ! धमदत्तजी मन-ही-मन पुत्र के भविष्य को लेकर चिन्तित होने लगे ।

अपने उस इकलौते पुत्र को लेकर वे दोनो ही तो अपनी आखो मे कुछ अनोखे ही सपने पालते आ रहे थे । वह उनकी बुढापे की लाठी जो था । किन्तु अब उन्हे उल्टे लेने-के-देने पड रहे है । बी० ए० के बाद से वह घर म बैठा-बैठा रोटिया तोडता आ रहा है । सगति भी तो उसकी गाव भर के उचक्के-बदमाशो की ही है । उन्होने कई बार उसे किसी नौकरी पर लगाने के भी अनेक जुगाड किये । किन्तु कही भी तो बात नही बन पाई ।

धमदत्तजी कलेवा कर चुके थे । पत्नी ने उन्हे दूध का गिलास थमाकर पूछा, फिर क्या कहते हो ?

—सोचता हू, जलीतान का एक चक्कर और लगा आऊ ! धमदत्तजी बोले, सुनते है, वहा कोई नये शिक्षाधिकारी आये हैं । शिल्पकार बताते है ।

—कुछ-न कुछ तो करना ही होगा । जेता वही परात म हाथ धोने लगी, एसा कब तक चलेगा ?

बच्चा भी जब तक रोता नही, मा उसे दूध नहीं देती । धमदत्तजी इस सिद्धान्त को भली भाति जानते हैं । घर से निकलकर वे गाव की शाला की ओर चल दिये । वहा के प्रधानाध्यापक से पूछताछ करने लगे क्यो हो, शिक्षाधिकारी कोई नये आये है क्या ?

—हा हा । प्रधानाध्यापक ने बताया, कोई हरीराम आये है । सुनते हैं निणय लेने म मिनट भी नही लगाते ।

—फिर तो मेरी पेशन का मामला भी सुलट ही जायेगा । धमदत्तजी का आशावादी स्वर था ।

—क्यो नही । प्रधानाध्यापक मुस्करा दिये, आप जाइये तो सही ।

धमदत्तजी काटाबाग के जूनियर हाई स्कूल की हेड मास्टरी से दो वर्ष पहले ही सेवा निवृत्त हुए हैं । जातीय दर्प जब-तब उनकी सेवाओ म व्यवधान पहुचाता रहा है ।

वर्षों पहले एक बार उनके विद्यालय का निरीक्षण हो रहा था। उप विद्यालय निरीक्षक कोई शिल्पकार थे। उनके लिये उन्होंने विद्यालय की रसोई में स्वयं अपने ही हाथों से भोजन तैयार किया था। शरीर पर मात्र धोती और जनऊ धारण किये हुए ही उन्होंने उनके लिए दाल-भात बनाया था। एक अध्यापक से उन्होंने उन्हें भोजन करने के लिए कहलवाया था।

किन्तु उप विद्यालय निरीक्षक महोदय कोट पैंट में ही बिना किसी सूचना के जूते पहने हुए ही रसोई-घर में चले आये थे। उनके जातीय दर्प में जोर का उबाल आ गया था। उन्होंने आव देखा न ताव और उनकी ओर जलती हुई लकड़ी लेकर दौड़े थे। वे साहब वहां से भाग खड़े हुए थे। उसी करनी का फल उन्हें आज तक भुगतना पड़ रहा है। तब ऊपर से उनकी जवाबतलबी हुई थी। उनकी सेवा-पुस्तिका में कुछ ऐसी प्रविष्टि कर दी गई थी कि उनकी पेंशन का मामला आज तक अधर में ही लटका हुआ है।

गांव की शाला से धर्मदत्तजी घर आ गये। पत्नी के साथ वे फिर से विचार-विमर्श करने लगे। जैंता बोली, शिब्बू को किसी स्कूल में ही लगवा देते!

—देखो! धर्मदत्तजी सिर खुजलाने लगे, नैनीताल जाके अधिकारी से बात करूंगा।

अगली सुबह धर्मदत्तजी बस से नैनीताल चल दिये। पर चौक पर आकर दुविधा में पड़ने लगे। कौन जाने, नये अधिकारी उन्हें मुंह लगायें भी या नहीं! हरीराम को कभी उन्होंने ही पढ़ाया था। शिल्पकार जाति का वह किशोर इतने ऊंचे ओहदे पर जा पहुंचेगा, इसकी तो वे कभी कल्पना तक नहीं कर सकते थे।

उन दिनों वे काशीपुर इंटर कॉलेज में संस्कृत के अध्यापक हुआ करते थे।

—मास्साब! नवीं कक्षा में अपने बेटे को प्रवेश दिलवाने आये हुए जीतराम लोहार ने उनके पांवों पर अपने सिर से टोपी उतारकर रख दी थी, मेरा हरिया अब आपके ही भरोसे है। उसके माता पिता, भाई बंधु सब कुछ अब आप ही हैं।

—अरे रे! वे दो कदम पीछे हट गये थे, ऐसा न करो भई! तुम्हारा बेटा होनहार है। तभी तो वह सरकारी वजीफा लेकर इस विद्यालय में आया है।

—हूं! जीतराम सिर खुजाने लगा था, अकेली सरकार ही क्या कर लेगी? हमारा उद्धार तो तभी होगा जब आप जैसे ठाकुर-सयानों का हमारे सिर पर हाथ होगा।

—किधर के रहने वाले हो? उन्होंने पूछा था।

—हम लोग मनस्यारी के हैं। जीतराम ने बताया था, कभी मेरे बौज्यू ने बिना पानी का घट्ट (चक्की) चलाया था।

धर्मदत्तजी चौंक पड़े थे। अंग्रेजी शासन-काल में कभी मनस्यारी के शिल्पकार बचुवा लोहार ने एक ऐसी चक्की का आविष्कार किया था जिस पर एक

साथ ही उन भी वानी जा मकती थी और अनाज भी पीसा जा मकता था। उन्होंने थूक गटककर पूछा था, तो तुम मचुवा लाहार क बेटे हो ?

—जी सैव ! जीतराम ने उनक लिए हाथ जोड दिए थे।

हरिया सचमुच ही मधावी छात्र था। अध्यापकों क व्याख्यान तो उसके मन मस्तिष्क पर छप ही जाया करते थे। एक सप्ताह बाद वह उनके पास चला आया था।

—कहो भाई ! उन्होंने अपनी जवाहरकट की जेबों मे हाथ ठूमकर उससे हाल चाल पूछे थे।

—सर, मैं संस्कृत लेना चाहता हूं। हरिया ने अपनी इच्छा प्रकट की थी।

—संस्कृत ? उनकी आखें फटी-की फटी रह गई थी। अंदर अंतडियों मे कहीं मरोड-सी उठी थी।

—जी। उसने सफाई दी थी, इससे मेरी अच्छी डिवीजन आ जायगी।

हरिजन मानसिकता से ग्रस्त उस समय भी व कुछ नहीं कह पाये थे।

—सर !

—अच्छा, सोचेंगे। उन्होंने उसे टाल देने की गरज से कहा था।

दो दिन तक वे हरिया के ही बारे में सोचते रहे थे। वे इस बात को नहीं पचा पा रहे थे कि एक शिल्पकार का पुत्र संस्कृत का पठन पाठन करे ! अतत उन्होंने उसे मनाही कर दी थी, हरिया, तुम संस्कृत नहीं ले सकते।

—क्यों सर ?

—हर क्या का उत्तर नहीं दिया जाता हरिया ! वे उस पर कुछ गुस्सा पडे थ, कह जो दिया कि नहीं ले सकते।

—लेकिन सर, मैं तो आपको अपना गुरु मान चुका हू। हरिया भी तो जैसे उनके पीछे हाथ धोकर ही पडा था।

—मानते रहो ! कहकर व वहां से स्टाफ रूम की ओर मुड गये थ।

दसवीं के फॉर्म भरते समय हरिया ने संस्कृत को एक अतिरिक्त विषय के रूप म लिख दिया था। कुंजियों और सहायक पुस्तकों के सहारे ही वह संस्कृत का अध्ययन करता रहा था। अर्द्ध वार्षिक परीक्षा म वह उसमे शत प्रतिशत अक लाया था।

—धर्मदत्तजी ! विद्यालय के प्राचार्य ने उन्हे अपने आफिस मे बुलवा कर कहा था, यह बच्चा तो हीरा है। इसे संस्कृत न देकर आपने अच्छा नहीं किया।

वे वहीं बगलें झाकने लगे थे। मन मारकर उन्हें उसे संस्कृत पढानी ही पडी थी। बोर्ड की परीक्षा म उसने उसमे शत प्रतिशत अक प्राप्त किये थ। यही नहीं बोर्ड म भी उसे पाचवा स्थान प्राप्त हुआ था।

दिन-मास बीतते गये। धर्मदत्तजी भी सब-कुछ भूल चुके थे। सात आठ वर्ष

बाद उनकी पदोन्नति हो गई। उन्हें कोटाबाग के जूनियर हाई स्कूल का प्रधानाध्यापक नियुक्त कर दिया गया था। एक दिन हरिया उन्हें मिलने वहीं आ पहुंचा।

—सर, मुझे पहचान रहे हैं? हरिया ने उन्हें दण्डवत प्रणाम करने के बाद पूछा था।

—अरे भाई! वे सचमुच ही उस गबरू जवान को नहीं पहचान पाये थे, न जाने कितने ही ।

—मैं हरीराम हूं सर। मुस्कराकर उसने स्वयं ही उन्हें अपना परिचय दिया था, कभी आपने ।

—अरे हां। वे ठीक से बैठ गये थे, कहो भई, इन दिनों क्या कर रहे हो?

—जी, मैं पी० सी० एस० में सिलेक्ट हो गया हूं। हरीराम ने बताया था।

—अरे! उनकी कुर्सी थोड़ी-सी हिल उठी थी, आओ, बैठो न!

हरीराम से उन्होंने कुर्सी पर बैठने का बहुत आग्रह किया। किन्तु उसने निवेदन किया था, गुरु के सामने कोई कुर्सी पर कैसे बैठ सकता है सर?

धमदत्तजी एक रिक्शे से टकराते-टकराते रह गये।

—देख के साब! रिक्शे वाला आगे चल दिया।

जिला शिक्षाधिकारी का कार्यालय आ गया था। उसके अहाते में प्रवेश कर फिर से दुविधा में पड़ने लगे।

—क्यों हो! उन्होंने कमरे के बाहर स्टूल पर ऊंघते हुए चपरासी के कंधे पर हाथ रखकर पूछा, साहब है?

—हां, हैं। चपरासी एक बास से स्वर में बोला।

—मुझे उनसे मिलना है। वे अपने सिर की टोपी ठीक करने लगे, कहो कि धमदत्त मास्टर आये हुए हैं।

—आप सीधे चले जाइये। चपरासी बीड़ी सुलगाने लगा, उन्हें बिचौलिये पसंद नहीं हैं।

कमरे की चौखट पर जाकर धमदत्तजी खांस-खखार दिये। अन्दर काम कर रहे हरीराम की निगाह उन पर पड़ी तो वे कुर्सी से उठकर मुस्करा दिये। उन्होंने उनका हार्दिक स्वागत किया, आइये सर, चले आइये!

धमदत्तजी अन्दर कमरे में चल दिये।

—विराजिये! हरीराम ने उनसे सोफे पर बैठने का अनुरोध किया।

उनके बैठने पर हरीराम भी बैठ गये।

हरीराम के उस ठाट-बाट को धमदत्तजी देखते ही रह गये। चमचमाती हुई मेज! बढ़िया किस्म का फर्नीचर! फर्श पर बालिश्त भर मोटी कालीन! उनके सामने वे अपने को एकदम बौना समझने लगे।

—कहिये सर! कैसे आना हुआ? हरीराम उनकी कुशल-क्षेम पूछने लगे,

घर म तो सब कुशल मगल है न ?

—हा। वे अपने मुख्य होठो पर जीभ फेरने लगे, मन कुशल ही ठहरा।

ट्रिन् ट्रिन् । फोन की घटी बजने लगी।

—हैलो ! लपककर हरीराम ने फोन वाला म सटा लिया। व फोन पर बतियाने लगे। इधर, घमदत्तजी को अपनी व्यर्थता का बोध होने लगा।

—ठीक है वो सब हो जायगा। फोन पर बात कर रहे मजन मे कहकर हरीराम ने फोन का चोगा क्रेडिल पर रख दिया। वे घमदत्तजी की ओर घूम गये, हा सर, फिर कैसे कष्ट किया ?

—मेरी पेंशन का मामला दो बरस से अटका पड़ा है। घमदत्तजी उनके आगे अपना दुखड़ा रोने लगे, तुम जानो कि आज की महगाई म ।

—छोडिये भी सर ! हरीराम मुस्करा दिये अब तो आप राम नाम की माला जपा कीजिये। आपकी देख रेख आपके बेटे-बेटी किया करेंगे।

—अरे भइ, यही तो रोना है। घमदत्तजी ने गहरा उच्छ्वास भरा, औलाद के नाम पर मेरा एक ही तो बेटा है। सो वो भी ग्रेज्युएशन के बाद से आवारा हो आया है।

—अरे ! हरीराम चौंक पड़े, आप तो ।

—मैंने कभी उसकी ओर ध्यान ही नही दिया। घमदत्तजी पश्चात्ताप की आग म दहकने लगे, अब इस बुढापे मे हम दोनो ही तो उसकी सजा भुगत रहे हैं।

हरीराम का पाव घटी के बटन पर जा लगा। अगले ही क्षण अन्दर कमरे म चपरासी आ गया।

—बड़े बाबू को भेजो ! हरीराम चपरासी से बोले।

कुछ ही क्षणो मे बड़े बाबू अन्दर आ गये।

—इनकी फाइल लाइये। हरीराम हेड क्लर्क से बोले, पेंडिंग फाइलो म कहा दबी पड़ी होगी।

—जी, आप ? हेड क्लर्क घमदत्तजी को देखने लगे।

—मैं घमदत्त हू। वे धोती के छोर से अपना चश्मा साफ करने लगे, कोटा बाग के जूनियर हाइ स्कूल का ।

—ओ, समझा ! कहकर हेड क्लर्क कमरे से बाहर चल दिया।

—देखिए सर ! हरीराम ने अपनी पीठ कुर्सी की पीठ से सटा ली, आपके मामले म मुझसे जो भी बन पड़ेगा, मैं कोई कसर नही छोड़ूगा।

घमदत्तजी लज्जित होने लगे। उन्होंने गहरी सास छोड़ी, ठीक है बेटे ! कर भला, हो भला ! नेकी कर कुए मे डाल।

—ये लोकोक्तिया तो बहुत पुरानी हो आई हैं। हरीराम मुस्करा दिये, आज तो ।

बडे बाबू उनकी फाइल को हरीराम की मेज पर रखकर बाहर चल दिये। व उस फाइल का अध्ययन करने लगे। एस म उनके चेहरे पर जनक भाव आ-जा रहे थे।

—टेढी खीर है। हरीराम न वह फाइल रेक पर रख दी, आपके वर्षों पहले का दुर्व्यवहार आपकी सेवा-पुस्तिका मे दज है।

—वही तो। वे वही बगलें झाकने लगे, कभी कभी आदमी ।

—देखिये सर ! हरीराम न वह फाइल फिर से उठा ली, मैं अपनी ओर से इस एट्री को दूर करने की कोशिश करूगा। और कोई सेवा बताइये ?

—बताया न कि मेरा इकलौता बेटा घर म बठे मक्खिया मार रहा है। धमदत्तजी के चश्मा पर लालच की परत चिपक आई, उसे अगर किसी स्कूल म ।

—अनट्रेंड टीचर के रूप मे लगा देंगे। हरीराम ने हामी भर ली, आप उसकी ओर से एक आवेदन पत्र भिजवा दीजिये। मैं किसी सहायता प्राप्त विद्यालय में लगवा दूगा।

—धन्यवाद बेटे ! धमदत्तजी कुर्सी से उठ खडे हुए, बठिये न सर। हरीराम भी सीट से उठ खडे हुए। माफ करेंगे। मैं तो आपको जलपान भी नही करवा सकता। क्योकि आप तो ।

—नही नही। उन्होने हाथ हिलाकर मनाही कर दी, इसकी जरूरत नही है।

—ठीक है सर ! आपका काम हो जायगा। हरीराम उन्हे छोडने कार्यालय के गेट तक चल दिये। उन्होने झुककर धमदत्तजी को अभिवादन किया।

—सुखी रहो ! धमदत्तजी उन्हे गदगद भाव स आशीर्वाद देने लगे। फूलो फलो !

जिला शिक्षाधिकारी का कार्यालय ऊपर रह गया था। धमदत्तजी अब माल रोड पर पैदल ही बस स्टैंड की ओर चले जा रहे थ। उनके मन मस्तिष्क पर महाभारतकालीन द्रोणाचाय की छवि उभरने लगी। उसी को विश्लेपित करते हुए वे अपनी नाक की सीध मे चलने लगे। □

# अनवकाश

## मुरलीधर शर्मा 'विमल'

एक दिन प्रात हमारा नया पडोसी किरायदार कहता है—"भाई साब आपके इस मुहल्ले म भी चार रहत हैं।

बात सुन मुझे हसी आ जाती है। मैं कहता हू—"भई इस चोर युग म शायद ही काई एसा घर हो जिसम इस युग धम की अनुपालना करन वाले न रहते हो।

'आप बात तो खरी कह रहे हैं मर घर म चोरी हो जाती ता कोई बात नही थी पर मरी इस सरकारी गाडी म स पट्रोल की चोरी एक गभीर मामला है जो मरी रोटी रोजी स जुडा है।"

'आह ता गाडी म म पट्रोल निकाल लिया किसी ने।"

यही तो बात है। गाडी म स यू पट्रोल निकलता रहा ता मेरे साब कब तक मुझ पर भरोसा करग। भरोसा क्या एक दिन म कमाया जाता है?'

मुझे ड्राइवर अत्यत समझदार लगता है। कुछ और सुनन की मुद्रा म मैं उसका मुह ताकता रहता हू। वह आगे कहता है—'भाई साब, एक निवदन है आपस गाडी आपक कमरे के सामन ही खडी रहा करती है, कृपया आप भी थोडी नजर रखना। मैं ता खैर सतक-सावधान रहूगा ही।

बचार उस सरकारी डाइवर के प्रति मरा मन सहानुभूति स लबालब भर जाता है। चोर को रगे हाथ पकडने म पूरी सावधानी बरतन का मैं उसे आश्वासन दता हू। मन-ही मन अज्ञात चोर को गालिया निकालता हू। मरा मन एक अपराध-बोध म घिर जाता है। मरी नजर मर स्कूटर पर जा टिकती है जिसके लिय पेट्रोल, पट्रोल-पम्प स कभी-कबार ही खरीदना पडता है। ज्यादातर तो पट्रोल बचन वाल घर पर ही द जाया करत है।

उस दिन क बाद गत बिरात जब भी उठना हाता था उसकी गाडी खडी हाने पर मैं अवश्य ही उस ओर चाखी तरह झाक लता था। साचता था किसी

को रगे हाथ पकड लू तो मजा आ जाये, लेकिन कई दिन गुजर जाने पर भी मेरी पकड मे न कोई रग आता है और न ही कोई हाथ !

एक दिन सुबह जब वह गाडी की सफाई कर रहा होता है, मैं ही पूछ लेता हू—"क्या भइ, तुम्हारी गाडी का पेट्रोल फिर तो नही चुराया किसी ने ?"

वह खिला खिला-सा मेरी ओर बढ आता है।

"भाई साब, अब कोइ नही चुरा सकता मेरा पेट्रोल। कल से मैंने एक तरकीब निकाल ली है, वो डाल-डाल तो मैं पात पात। अब रात्रि को गाडी खडी करते ही पेट्रोल मैं स्वय निकाल लेता हू और सुबह जाता हू तब पुन डाल देता हू। बस, न रहेगा बास न बजेगी बासुरी। कौन रातें काली करे। आज से आप भी बेफिक्र रहना-सोना।"

उसकी बात सुन मैं खुश हो जाता हू। पर मेरा अपराध बोध फिर भी कम नही होता। यदि मैं चोर को पकड पाता तो कितना अच्छा रहता ? मैं शका की दृष्टि से न देखा जाता, एक उपकार भी लाद लेता।

एक इतवारी शाम को टी० वी० फिल्म के मध्यातर मे मेरा एक परिचित आ टपकता है।

"तुम्हारे सामने यहा एक ड्राइवर रहता है ना ?"

"हा, कहो क्या बात है ?"

"उसके घर पर ताला लगा है। आये तब यह जरिकन उसे दे देना, कहना जयपुर वाले शर्माजी रख गये थे, बाकी वह सब समझ जायेगा।' इतना कह वह एक रहस्यमयी मुस्कान बिखेरता वहा से चला जाता है।

मै अपने आपको हल्का फुल्का सा महसूसने लगता हू। उस दिन उपजा मेरा अपराध-बोध जाने कहा तिरोहित हो जाता है! मै खुश मूड मे टी० वी० पर आ रहे विज्ञापनो को देखने लगता हू। मेरे दिमाग मे पेट्रोल-चोर के रग और हाथ दोनो उभर आते हैं, जिन्हे पकडने का इरादा त्यागता मैं उन्हे एक निराले अदाज मे निहारने लगता हू। उसी समय वाइफ चाय ले आती है।

चाय पीते समय मेरे अपने रग मुझसे रूबरू होना चाहते है। मैं उन्हे भली प्रकार परख पाऊ इससे पूर्व ही फिल्म का शेष भाग चालू हो जाता है। मजबूरन मैं उन्हे लौटा देता हू अवकाश के क्षण आने तक। □

# अपनी मिट्टी की गध

## अरनी राबट्‌स

प्लेन म प्रवेश होने म पहले अकिता ने एक बार फिर पीछे मुडकर उस ओर देखा जहा उसकी बहुत-सी सहेलिया और दोस्त, मम्मी पापा और सुमित हाथ हिलाकर उसे विदा द रह थ। वह अदर आकर यान परिचारिका द्वारा बताई गई सीट पर आकर बठ गई। बहुत थ्रिलिग लग रहा था उसे। बचपन से ही उसके मन म साध थी कि वह विदश यात्रा पर जाय, प्लेन म उडे—दूर बहुत दूर बादलो के ऊपर और लबे-चौडे समुद्रो को पार कर विदेश म पहुच जाय—नई सस्कृतियो और नए लोगो के बीच। उसे पता नही था कि एक दिन उसका यह सपना सच हो जायेगा। उसे अमरिका की एक यूनिवर्सिटी की ओर स चाइल्ड सायकालोजी म आग की शिक्षा के लिये छात्रवत्ति मिल गई थी। यह महज एक सयोग ही था कि उसने आवेदन पत्र भेजा था और उसे इस एडवास स्टडी का ऑफर मिल गया था।

अकिता एक गल्स कॉलेज म सायकालाजी म व्याख्याता थी। उसने एक वर्ष पूर्व यूनिवर्सिटी टाप की थी और तुरत ही उसे व्याख्याता पद मिल गया था। उन्ही दिनो उसकी मुलाकात डाक्टर परेश स हुई थी। बहुत ही हसमुख और जौली किस्म के डाक्टर परेश न पहली मुलाकात म ही उसे बहुत प्रभावित किया था। परेश स्थानीय अस्पताल म फिजिशियन था। कुछ ही दिनो म परिचय दोस्ती और दोस्ती प्यार म बदल गई थी। अकिता को यह मालूम था कि वह परेश को बेहद मिस करेगी पर किसी तरह मना लिया था उसने स्वय को। हालाकि परेश अकिता के विदेश जाने के प्रति बहुत उत्सुक नही था पर वह अकिता के उत्साह को भग करना भी नही चाहता था।

जिस दिन अकिता ने परेश से विदेश जाने की बात कही थी तो वह भावुक हो उठा था। कुछ देर म सयत होने के बाद उसने कहा था—"म तुम्हारे उत्साह को भग करना नही चाहता पर जिस काम के लिए तुम वहा जाना चाहती हो वह

हमारे देश मे भी हो सकता है और फिर तुम्हे वहा बहुत अच्छा नही लगेगा। मैं जा चुका हू विदेश। यहा जगा अपनापन, आत्मीयता और एडजेस्टमट वहा नही है। सब-कुछ बनावटी और बोझिल सा लगता है।"

"मैं अपने आप को एडजेस्ट कर लूगी परेश। तुम मेरा इतजार करना। तीन वर्ष तो यू ही चुटकी बजाते ही निकल जायेंगे।'

एक बार पुन समझाने का प्रयास किया था परेश ने—"अकिता मैं तुम्हारे स्वभाव को जानता हू। तुम्हे वहा सब-कुछ अजीब और अटपटा लगेगा। वे लोग जिन्दगी को सिर्फ पैसे से तोलते हैं और पैसे से ही परिभाषित करते है। हम लोग जिन्दगी के लिए जिन मानवीय गुणो को आवश्यक समझते हैं—जैसे नैतिकता, चरित्र और सतोष, ये सब बाते उनके लिए अर्थहीन है।"

अकिता ने हसकर कहा—"इसमे मुझे क्या फर्क पडेगा ? तुम चिंतित मत होओ परेश और फिर बहुत कुछ उन लोगो के बारे म अतिशयोक्तिया भी तो हो सकती हैं।' आखिर परेश चुप हो गया था। वह जानता था कि अकिता ने जो कुछ सोच लिया वह उसे जरूर पूरा करेगी—वह स्टेट्स जरूर जायगी। वह अपनी धुन की पक्की थी।

सारे रास्ते अकिता सोचती रही थी अमरिका जैसे भव्य देश के बारे मे। डूबी रही मधुर कल्पनाओ मे। और जब अमेरिका की धरती पर प्लेन उतरा तो उसे लगा वह किसी स्वप्निल और मायावी नगरी मे आ गई है। ढेर सी भीड के बावजद हर जगह अनुशासन और व्यवस्था दिखाई दी। लोगो के बात करने का तरीका बडा शालीन था। कोई ऊचे स्वर म बोलता या झगडता नजर नही आया। सडको और बाजारो की सजावट और सफाई देखते बनती थी। लोगो का कपडे पहनने का तरीका, उनका स्वास्थ्य और उनकी विनम्रता से बहुत प्रभावित हुई।

एयरपोर्ट पर सायकालोजी विभाग के कुछ शोध छात्र छात्रायें और जूनियर प्रोफेसर्स उसे लेने आये थे। उनसे मिलकर वह बेहद प्रसन्न हुई। उसे ठहरने के लिए कॉलेज हॉस्टल मे फ्लैट दिया गया, जहा अधिकाश रिसर्च स्कॉलर्स ही थे। छोटे से फ्लैट म सभी आधुनिक सुविधायें थी। कुकिंग के लिए भी साधन उपलब्ध थे।

दो-एक घटा साथ रहकर उसे रिसीव करने आये लोग चले गये। स्नान आदि से निवृत्त होकर अकिता ने डायनिंग हाल मे जाकर खाना खाया और वापस अपने फ्लैट मे आकर सो गई। लबी यात्रा के कारण वह काफी थक चुकी थी इसलिए वह पूरे पाच घटे सोती रही। जब सोकर उठी तब शाम ढल रही थी—अजीब-सी खामोशी व्याप्त थी पूरे हास्टल म। भारत मे हास्टल्स मे जो शोर-शराबा और रौनक होती है और बात चीत के दौर चलते हैं या खाली समय मे गप्पें मारी जाती हैं—हसी मजाक के दौर चलते हैं। यहा वैसा कुछ दिखाई नही

दे रहा था अंकिता को। शायद अधिकतर लोग बाहर जा चुके थे या अपने-अपने कमरों में बंद थे। उसे बता दिया गया था कि वहां कोई सर्वेंट नहीं था—सब-कुछ अपने ही हाथों करना पड़ता था—सेल्फ सर्विस। इसलिए उसे उठकर केफटेरिया में जाकर काफी पीनी पड़ी। यह काफी उसे एकदम बेस्वाद और बेमजा लगी—सुबह के खाने की तरह। अंकिता को कुछ अटपटा लगा पर उसने सोचा वह जल्दी ही इन सबकी आदी हो जायगी।

दिन-भर लाइब्रेरी में मोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ना और हर तीसरे दिन ग्रुप में डिस्कस करना। शुरू में तो यह काम रोचक लगा पर बाद में यह सब मोनोटोनस लगने लगा। लाइब्रेरी में हो या लान या कारीडोर हो—जहां मौका मिलता अमेरिकन युवक-युवतियां व अन्य यूरोपीय देशों के लोग एक-दूसरे का चुम्बन लेने में नहीं चूकते थे। अंकिता को यह सब बड़ा अटपटा और हास्यास्पद लगता था। भारत में ऐसा कहीं देखने को नहीं मिलता था—यहां आकर उसे महसूस हुआ कि ये प्रगतिशील कहे जाने वाले देश सार्वजनिक शालीनता में कितने पीछे थे। उस दिन तो वह हक्की-बक्की रह गई जब एक नीग्रो युवक ने बात करते-करते उसका हाथ अपने हाथों में लेकर दबा दिया। वह छिटक कर दूर खड़ी हो गई।

वाट हैप्पंड ? दिस इज आल कामन हीयर !"

अंकिता की इच्छा हुई उसका मुंह नोच ले और कहे— भाड़ में जाओ तुम और तुम्हारे तरीके !' प्रत्यक्ष में बोली—"वी इंडियंस डोंट लाइक एंड फालो सच थिंग्स !' उसका मूड आफ हो गया और वह अपने फ्लैट में आकर बिस्तर पर लेट गई। रह रह कर उसे अपना देश भारत याद आ रहा था—जहां हर चीज में अपनापन होता है और इतना दुस्साहस तो किसी में नहीं होता कि किसी का भी हाथ पकड़ ले कोई। एकदम अकेलापन-सा लगा उसे और बेहद बोझिल हो उठा उसका मन।

दोपहर की डाक से परेश का पत्र आया तो अंकिता को लगा जैसे बोझिल वातावरण में ताजगी भरा एक ठंडी हवा का झोंका आ गया हो। उसने फटाफट पत्र खोला—बेहद प्यारा-सा, आत्मीयता और प्यार भरा खत था। ढेरों सलाह दी थीं परेश ने—हर पंक्ति में फिक्र झलकती थी। अंकिता ज्यादा परिश्रम मत करना रात देर गये तक पढ़ाई मत करना सेहत का ख्याल रखना सरदी से अपना बचाव रखना कोई भी प्राब्लम हो तो मेरे मित्र बेंजामिन से सम्पर्क कर लेना वह बोस्टन में डाक्टर हैं ! ढेरों सलाहों और फिक्र वाला वह खत अंकिता को बहुत अच्छा लगा। भावावेश में वह खत को बेतहाशा चूमने लगी फिर सहसा ही उसे अपने इस पागलपन पर हंसी आ गई। पर्स से परेश का एक खूबसूरत फोटो निकाल कर देखने लगी वह। सोचने लगी वह—सचमुच जमीन और आसमान का फर्क है पूरब और पश्चिम में। यहां प्यार का अर्थ कुछ और ही

था। एक परेश है जिसने अपनी सीमा और मर्यादा का उल्लघन करने का प्रयास कभी नही किया।

पत्र उसने लिफाफे मे रखकर बडरूम की खिडकी खोल दी। बाहर बडा सा बगीचा था। तरह-तरह के फूल खिले हुए थे हल्की-सी धूप बिखरी हुई थी सारे माहौल मे। उसकी इच्छा हुई अपने बालो को धोकर बाहर लॉन म जाकर सुखाये। तभी उसकी सहेली मनसी की सलाह याद आ गई जिसने हिदायत दी थी कि वह अपने लबे और घने काले बालो को बाहर न सुखाया करे वरना किसी की नजर लग सकती है। अमेरिका के लिये तो विशेष रूप मे उसने हिदायत दी थी कि वहा अपने खुले बाल किसी को न दिखाये पर विदेशी जल मरेंगे तुम घटाओ जैसे बाल देखकर। अकिता को लगा—अपने देश म पले आये ये छोटे मोटे अधविश्वास भी जिदगी के जैसे अहम हिस्से बन चुके है—यदि इनको निरर्थक समझकर जिदगी से निकाल दिया जाये तो शायद जिदगी का रग कुछ कम हो जाये।

फूलो और पेडो के अलावा नीला आकाश अकिता को अच्छा लगा—पर उसे अनुभव हुआ यह आकाश भी विदेशी है। भारत म अपने कमरे की खिडकी से वहा के नीले आकाश को देखना कितना अच्छा लगता है—वह आकाश आत्मीय लगता है।

कुछ एक लोगो को छोडकर अकिता की घनिष्ठता किसी से नही हुई। पाकिस्तान से आई सुरैया ने उससे घनिष्ठता का प्रयास किया, पर कुछ ही मुलाकातो म अकिता को लगा सुरैया और उसके विचारो म जमीन-आसमान का अन्तर था। उसने सुरैया से किनारा कर लिया। वैसे भी अकिता रिजर्व नेचर की थी। मित्रता के मामले म उसके अपने मानदण्ड थे। उसके विचारो से मेल खाता कोई नही मिलता तो वह रिजर्व रहना ही पसद करती थी।

गहरी नीली आखो वाली सिम्पी वानर अकिता को बहुत अच्छी लगी। शीघ्र ही दोनो म घनिष्ठता हो गई। सिम्पी बहुत भावुक लडकी थी—वह एक मध्यम परिवार स थी। वह अधिकाश पढाई की बातें करती या फिर इडिया की। अकिता का साडी पहनना और सादगी से रहना सिम्पी को बहुत भाया। उसने अकिता को अपने प्रेमी जक रसल शाप के बार मे भी बताया। वह इजीनियर था।

*एक दिन सिम्पी अकिता के फ्लैट मे उदास सी आई। कुछ देर वह शात बैठी* रही फिर सहसा ही अकिता से चिपटकर बच्चो की तरह रोने लगी। "क्या हुआ सिम्पी वाय आर यू वीपिंग ?" अकिता न सात्वना दी तो सहम कर सिम्पी ने बताया कि वह प्रेगनट थी और उसका प्रेमी शाप उससे शादी करने के बजाय चाहता था कि वह एबाशन करा ले। अकिता यह सुनकर सन्न रह गयी। उसे लगा उसका मस्तिष्क काम करना बद कर देगा कैसी अजीब कट्री है यह भी

जहा काम सम्बन्धो की उन्मुक्तता ने सारे समाज को खोखला कर रखा है जहा एबाशन और तलाक रोजमर्रा की जिन्दगी का अंश बन चुके है डेटिंग के बगर वहा किसी के दिल म प्यार पनपता ही नही है । जहा रेप और हत्यायें साधारण सी घटनायें है जहा नतिक मूल्यो का कोई अस्तित्व दिखाई नही देता जहा रिश्ता का कोई धरातल नही है जहा माता पिता और बच्चो म प्रेम नही मात्र चन्द औपचारिकताये ह जिस दिन य औपचारिकतायें टूटती है—सग रिश्ते भी टूट जाते हैं। बहुत तरस आया उस सिम्पी पर । उसे समझ म नही आया कि वह कैसे सिम्पी को सात्वना दे। फिर भी उसने सिम्पी को ढाढस बधाया। लेकिन उसी शाम उसे हृदय विदारक समाचार सुनने को मिला—सिम्पी न जहर पीकर सूसाइड कर लिया। अकिता जड रह गई। उसके मन मे ढेर सारी करुणा उमड आई दिवगत सिम्पी के प्रति। वह सोचने लगी—प्रगतिशीलता के नाम पर नैतिक मूल्यो की कैसी धज्जियां उड रही है यहा पर नारी कितनी टूटी हुई और विवश है! अपने दो-तीन वर्षों के लबे प्रवास के दौरान पता नही क्या-क्या और उसे देखना होगा—ऐसे हादसे घटनायें सभ्यता के नाम पर भोडापन, आधुनिकता के नाम पर पाशविकता कितना अच्छा है अपना देश जहा जीवन के हर क्षेत्र म नैतिक मूल्यो का अस्तित्व ह ! क्या वह यह सब कुछ देखकर पढ पायगी ?

एक प्रोफेसर की लडकी की वडिंग पार्टी म अकिता को जाना पडा। वह यही सोचकर चली गई कि वहा के कुछ सामाजिक तौर तरीको क सम्बन्ध म कुछ जानकारी मिलगी। बडी भव्य पार्टी का आयोजन था। सजावट देखते ही बनती थी। शराब के दौर चल रहे थ। अकिता को उकताहट होन लगी। तभी पाप म्यूजिक पर नृत्य का दौर चलने लगा। नशे म डूबे लोग उल्टे सीधे हाथ पाव फेंककर नाचने लग। कुछ लोगो न अकिता को भी बाहो म लेकर नाचने को विवश की लेकिन वह छिटककर अलग हो गई। लोग उस पर हसने लगे। अकिता की रुलाई फूटने लगी। गुस्से म काप गया उसका शरीर। वह तुरन्त वहा स रवाना हो गई। अपने कमरे मे आकर वह बिस्तर पर गिर पडी और फूट-फूट कर रोने लगी। कितनी बेबस और अकेली थी वह कोई स्नेह का एक शब्द कहने वाला तक नही था। रोते-रोते सोचने लगी क्या बात है लोग अपना देश छोडकर यहा ? क्या मिलता है यहा आकर ? उस रह रह कर अपना घर अपना भारत अपना परिवेश याद आने लग। सहसा उसने एक निर्णय लिया और आसू पोछ दिए।

सप्ताह भर बाद भारत लौट रही थी । छोड आई अकिता अमरिका और वहा की कटु यादें वही। जल्दी ■ अपने देश पहुचकर वह उन्मुक्त सास लेना चाहती

थी, उस नीले आकाश को देखना चाहती थी जो बेहद अपना था और सबसे बढ़कर वह परेश को आश्चर्यचकित कर देना चाहती थी जो उसके अमेरिका जाने के बिलकुल पक्ष में नहीं था। परेश से मिलकर कहना चाहती थी कि वह कितना सही था और वह कितनी गलत थी। जो यहां भारत है वो वहां नहीं है—हो भी नहीं सकता—क्योंकि वे जिंदगी नहीं जीते—केवल घसीटते हैं जिंदगी को भौतिकता के गुलाम बनकर। □

# इस धरती की सन्तान

राधाकिशन चादवानी

मैंने जैसे ही घर म प्रवेश किया कि मेरी बहिन परमजीत ने सूचना दी—"आपका दोस्त अशोक आया है और आपका इन्तजार कर रहा है।'

मैं फौरन ड्राइग रूम मे चला गया। अशोक सोफा पर बठा कोई मैगजीन देखने म व्यस्त था। मुझे देखते ही वह मुस्कराया और उठकर खडा हो गया। मैंने आगे बढकर उसे अपनी बाहो म भर लिया— 'आज कितने वक्त बाद देख रहा हू तुम्हे, अशोक।

हम दोनो सोफा पर बठ गए उसने एक 'इनवीटेशन काड' देते हुए कहा—"मधु की शादी है, तुम्हे 'इनवाइट' करने आया हू, सुरजीत।'

'अच्छा।' मैंने कहा और इनवीटेशन काड लेकर खोलकर देखा, बहुत सुदर था—'मधु इतनी बडी हो गई," मैंने कहा—'मेरी गोद म आकर बठती थी।

"हा सुरजीत, मधु अट्ठारह साल की हो गई है। तुम तो जानते हो बाबूजी के बाद मैंने ही मधु को अपनी लडकी की तरह पाला-पोसा है। मा की इच्छा है कि उनकी आख बन्द होने से पहले ही वे मधु की शादी कर दे।'

"और तुम्हारी।" मैंने पूछा।

'वह भी हो जायेगी यार। तुमने तो घर आना जाना ही छोड दिया है सुरजीत। कुछ समय पहले हुए साम्प्रदायिक दगो के कारण बडी तेजी से बदली हालात ने हिन्दू और सिक्खो के मन म जो जहर का बीज बोया है उसे जड से उखाड फेंकने की कोशिश करने की बजाय कुछ स्वार्थी लोग उसे हिन्दू और सिक्खो के खून म सींच रहे हैं।

'कहते तो तुम ठीक हो अशोक। पर हम भी तो बचपन के दोस्त है। एक ही स्कूल म साथ साथ पढे, कॉलेज म साथ रहे और हॉस्टल म भी एक ही कमरे म भाइयो की तरह रहे। हा, उसके बाद मैं अपने धधे म लग गया और तुमने

नौकरी कर ली। आना जाना एक दूसरे के यहा और मिलना जुलना जरूर कम हो गया, पर हमारी दोस्ती म ता काइ फक नही आया।"

"हा, सुरजीत, वाह गुरु हमारी दोस्ती की तरह सब हिदू और सिक्खा के सम्बध जो सदियो से मधुर रहते आए है सदा कायम रखे। अच्छा, मै चलू।'

"अर! ऐसा कैस होगा? बाता मे ता मैं भूल ही गया।" सुरजीतसिंह ने कहा और अपनी बहन को आवाज दी—"परमजी ओ ए परमजीत!"

"आई वीरजी!" कहते परमजीत रसोई स निकलकर उसके पास आकर खडी हो गई—"क्या है वीरजी?"

"ओ ए परमजीत, अशोक खातर कोई लस्सी वस्सी ल्या भई!"

"अभी लाई वीरजी!" कहकर वह जल्दी से अदर चली गई और थोडी देर मे लस्सी के बडे-बडे दो गिलास लाकर उनके सामने रख दिए।

अशोक कुछ क्षण तो परमजीत को देखता रहा, फिर बोला, "परम भी तो अब बडी हो गई है!"

परम ने अपने सम्बध मे सुना तो एकदम से शरमाकर अन्दर चली गई। दोनो दोस्ता न लस्सी पी और फिर उठ खडे हुए—"चल यार अशोक, मैं भी तुम्हार साथ बाजार तक चलता हू।" और दरवाजे तक पहुचकर सुरजीत सिंह ने आवाज दी—'परमजीत, ओ ए परमजीत, दरवाजा बद कर दना हम जा रहे है।'

परमजीत शायद कमरे के अन्दर दरवाजे के पीछे ही खडी थी। वह एकदम स सामने आकर खडी हो गई और जब तक अशोक न अपना स्कूटर स्टाट नही किया, वह दरवाजे के बीच म खडी उन्हें देखती रही, मुस्कराती रही।

घर वापस आत आत अधेरा हो चुका था। आगन म परमजीत तदूर मे रोटी सेंक रही थी और बेबे सिगडी पर से सरसा के साग की देगची उतार कर उसम लहसुन का छौक लगा रही थी। पापाजी बरामदे म रखे रेडियो क पास बैठे ऑल इण्डिया रेडियो जलधर स पजाबी मे आ रही खबरें सुनने म व्यस्त थे।

मैं आकर बरामदे म पडे एक मुडढे पर बठ गया। परम न मुझे देखते ही कहा—"वीरजी, आज जलधर स चाचाजी की चिट्ठी आई है।"

परम की बात मैंन सुनी और देखा कि बेबे की आखो मे कुछ अधिक चमक आ गई है। मैंने पूछा—'शाम को ता मुझे नही बताया?"

उत्तर परमजीत ने ही दिया—"आप तो वीरजी आए और अपने दोस्त अशोक के साथ बाता म लग गये और फिर उसके साथ ही चले गये, जिसके अब आ रहे हैं।"

"यह अशोक, लाला भगवान दास का ही पुत्तर है न? बेबे पूछती है।'

"हा बेबे। मैं सक्षिप्त सा उत्तर दकर चुप हो जाता हू।

"पर पुत्तर, आज देश म पानी जल रहा है। हिन्दू और सिक्खा के पुरान

सम्बध तो खत्म ही हो गये हैं। तू इस तरह
मैं वब की बात बीच म ही काटकर कहता हू—' नही बब, सम्बध तो वे ही है, सिफ कुछ स्वार्थी लोगो का ही काम है जो आपस म द्वेष पदा करा रहे हैं।'

'लो वीरजी। परमजीत शायद अदर से खत लाकर मुझे दे रही थी।

"पुत्तर।" पापा जी अपना चश्मा ठीक करते हुए कहते है। "तू खत पढ़न, तब तक मैं जलधर से खबरें सुन लू। सुना है, आज फिर वहा पर कुछ हत्याए हुई हैं।"

"ओ हो! एसा भी क्या? आप तो हर वक्त रेडियो स चिपके हुए हैं।" बेबे कुछ नाराज सी होती हुई कहती है "पढ पुत्तर, तू पढ, दख क्या लिखा है तेरे चाचा ने।

पापाजी नाराज होकर रेडियो बद कर देते हैं। म खत पढने लगता हू। खत म दो बाते विशप लिखी है—"परमजीत के लिए अच्छा लडका देखा है, और उन्होने मुझे वहा आकर धधा करने की सलाह दी है।'

"मैं तो यहा दिल्ली मे ही चगी हू मैं पजाब नही जाऊगी।" परमजीत एलान करती है।

यह सुनकर पापाजी एक गहरी सास खीचते है। बब परमजीत की तरफ कुछ शोख नजरो से देखती है। मैं भी अपना ऐलान करता हूँ— 'मैं भी वहा जाकर कोई धधा नही करना चाहता। हम लोग यहा ही रहग दिल्ली म।"

परमजीत मेरा ऐलान सुनकर गुलाब के फूल-सी खिल उठती है और मैं मुस्कराने लगता हू। बेबे कुछ नाराज होकर मुह फुलाकर बैठ जाती है, पर पापाजी कुछ भी नही कहते, वे बिलकुल शात आखें बदकर, कुछ गहरी सोच म डूब जाते हैं।

बेबे कुछ नाराज सी कहने लगती, "इन्हे क्या है, यहा रहगे। यहा किसी दिन वाहगुरु न करें भले ही कुछ हो जाए पर य यही रहेग हुह।' वह रोने लगती है। पर पापाजी शात हैं। पर पापाजी की एक बात समझ म नही आती। एक तरफ पजाब से इतना मोह कि ऑल इण्डिया रेडियो जलधर से पजाबी मे समाचार सुन बिना आराम से बठ भी न सके और पजाब म हिदू और सिक्खो की हत्याओ की बातें सुनकर उनकी आखें आब बहाना शुरू कर दे और प्रात उठकर गुरुद्वारे जाकर मत आत्माओ की शान्ति के लिए प्रार्थना करें। पर अगर बेबे उन्हे पजाब चलने के लिए कहे तो वे चुप्पी साध जाते हैं।

एक दिन मैं उनस पूछता हू तो वे कहते हैं— पुत्तर! पजाब से मुहब्बत इस लिए कि वह हमारे शरीर का टुकडा है। शरीर को अगर कोई सुई भी चुभ जाए तो कितना दद होता है। यह तो स्वार्थी लोगो का रचाया हुआ तमाशा है पर तमाशा बन गय हैं हम हिदू और सिक्ख। हा कुछ परिवार जरूर पजाब चले गए

हैं पर उनके सम्बन्ध क्या यहां रहने वालों से खत्म हो गए ? तो फिर तुम ही बताओ हमें उनकी चिन्ता क्या न होगी ? तुम्हारी बेबे कहती है हम भी पंजाब चलें, पर मैं पूछता हूं आखिर क्या ? आखिर क्या अपना यह शहर और बाप-दादा की जायदाद बेचकर पंजाब चलें ? आखिर क्या ?" वे शायद भावुकता के बहाव में बहते जा रहे थे कि उन्हें खांसी ने आकर तंग किया और उनके शरीर का खून सिमट कर उनके चेहरे पर फैलने लगा।

एक दिन शाम को अशोक अपनी बहन के विवाह की मिठाई देने के लिए हमारे घर आया। मैं ड्राइंगरूम में बैठा उसके साथ बातें कर रहा था कि परमजीत ने चाय और बिस्कुट की ट्रे लाकर मेज पर रख दी और फिर मेरे पीछे आकर खड़ी हो गई।

चाय पीते-पीते मैंने नोट किया कि अशोक बार-बार मेरी तरफ देखकर मुस्करा रहा है। अचानक बिजली के करेण्ट सा एक विचार मेरे मस्तिष्क में कौंध गया—"मेरे पीछे परमजीत खड़ी है, शायद वह भी अशोक को देखकर मुस्करा रही हो!" और यह विचार आते ही मैंने कहा—"परमजीत " पर शायद परमजीत ने सुना नहीं।

मैंने कुछ ऊंची आवाज में कहा—"परमजीत !"

"जी जी वीरजी !" मानो उसने नींद से जागते हुए कहा।

"जा बेबे को बुलाकर ला," मैंने कहा, वह अन्दर चली गई और थोड़ी देर में बेबे को साथ लेकर आई। मैंने मिठाई का डिब्बा बेबे को देते हुए कहा—"बेबे, अशोक अपनी बहन के विवाह की मिठाई लेकर आया है।"

बेबे ने मिठाई के डिब्बे को ऐसे देखा मानो उसमें बिच्छू भरे हुए हों और फिर अशोक की तरफ ऐसे देखा मानो वे उसे जानती ही न हों और पहली बार देख रही हों।

मैंने कहा—"बेबे, यह अशोक है मेरा दोस्त, लाला भगवानदास का लड़का। हम दोनों कॉलिज तक साथ पढ़े हैं। तुम इसे पहचानती नहीं क्या ?"

"हां हां पहचानती हूं।" उसने व्यंग्य से कहा "पहचानती हूं।" उसने दीवान पर बैठते हुए मिठाई का डिब्बा कुछ दूरी पर रख दिया। उसके ललाट पर कुछ रेखाएं उभरीं और अशोक ने बड़ी गहरी नजर से देखते हुए कहा—"अब तो हिन्दू और सिक्खों के पुराने सम्बन्ध ही खत्म हो रहे हैं।"

"ऐसा न कहिए बेबे !" अशोक ने धीरज से कहा, "हिन्दू भी वही हैं तो सिक्ख भी वही हैं कोई फर्क नहीं और न ही फर्क सम्बन्धों में आ सकता है।

"खैर, तुम क्या करते हो ?" बेबे ने पूछा।

"मैं यूनीवर्सिटी में लेक्चरर हूं।" अशोक ने कहा।

"मैं भी इस साल यूनीवर्सिटी म दाखिला लूगी।" परम बोली।

"क्या करोगी इतना पढकर।" ववे न कुछ डाटत हुए स कहा, "बहुत पढ ली, अब घर म रहकर काम-काज सीखो।"

बस उस दिन बात आई गई हो गई।

इस बात का कुछ ही दिन बीते होंगे कि एक दिन शाम के समय अशोक अपनी मा क साथ हमारे घर आया। पापाजी उस समय घर मे नही थे। मैं, बबे और परमजीत थ। हम सब ड्राइग रूम में बैठे बातें कर रहे थे।

कुछ समय से हिन्दू सिक्खो के बीच सम्बन्धो म कसैलापन कुछ अधिक बढने लगा था। बबे के मन पर भी हिन्दुओ क लिए कुछ कडुआपन आने लगा था। वह अनमनी-सी अशोक की मा के साथ बातें कर रही थी।

दरवाजे पर कुछ आहट हुई। लगा कि पापाजी घर म दाखिल हो चुके हैं। थोडी देर बाद पापाजी न खासकर ड्राइग रूम म कदम रखा। अशोक और उसकी मा उठकर खडे हो गये।

अशोक की मा ने सिर का पल्लू ठीक करते हुए दोनो हाथ जोडकर कहा—"नमस्ते भाई साहब।"

पापाजी न ध्यान से देखा "अशोक की मा हैं।" बेबे न कहा।

"लाला भगवानदास की घरवाली ?" पापाजी न पूछा।

"हा।"

"भई लाला के साथ तो हमारे बहुत सोहणे रसूख थ।" उन्होन सोफे पर बठते हुए कहा।

अशोक की मा कहने लगी—"भाई साहब, आज मै आपसे कुछ मागने आई हू पूरे विश्वास क साथ कि आप मुझे नाउम्मीद नही करेंगे।"

मैंने राजभरी दृष्टि स परमजीत की तरफ देखा तो उसने शरमाते हुए मुस्कराकर सिर झुका लिया।

अशोक की मा कहने लगी—"मैं आपसे आपकी परमजीत मागने आई हू।" और उन्होने अपना पल्लू फैला दिया, 'उस मेरी झोली म डालकर मेरी खाली खुशिया म भर दीजिए भाई साहब।"

पापाजी कुछ सोच म डूब गये। बबे की तरफ देखते हुए बोले—"तुम्हारी क्या राय है देवेन्द्र ?

बब भी बहुत विचारमग्न और गम्भीर थी। वह बोली— इस वक्त जबकि हिन्दू और सिक्खो के बीच रंजिश बढ गई है, हम सिक्ख परिवार की लडकी का ब्याह हिन्दू परिवार म करना उचित होगा ?'

पापाजी बब की बात सुनकर बोले—"देवेन्द्र तुम यह क्या भूल जाती हो कि

इस देश की मिट्टी में दुश्मनी का बीज बोने से वह कभी परवान नहीं चढ़ सकता। पगली, इस मिट्टी में वह तासीर है जो विन्षो जातियों की दुश्मनी को भी जड़ों से उखाड़कर अपने में जज्ब कर लेती है। बाकी इस धरती की सन्तान में, एक ही मा के बेटों में कैसा बैर, कैसी दुश्मनी! भाई-भाई का झगड़ा तो पानी के बुलबुले सा होता है। वाहगुरु ने परमजीत के लिए घर बैठे ऐसा योग्य वर भेज दिया है। हमारी परमजीत भागों वाली है!"

इतना सुनते ही परमजीत शरमाकर उठकर अन्दर दौड़ गई। 

# चढते दिन की गिरफ्त

पुष्पलता कश्यप

आज जब वह सोकर उठा तो उसका मूड बहुत अच्छा था। रात उसे अच्छी नींद आई थी। हवा होने से मच्छरों ने भी ज्यादा तंग नहीं किया था। उसका हाजमा भी दुरुस्त था।

तीन साल की सोनू उसे जागा हुआ देखकर उसके पास आ गई। उसने हँस कर 'गुड मार्निंग' करते हुए उसका स्वागत किया और बड़े प्यार से अपने पास बिठा लिया। सोनू ने भी उसका अनुकूल रुख देखा, तो उसको अपनी 'पप्पी नकर' लाड किया और उसके इर्द गिर्द ठुमक-ठुमक कर इतराने लगी। सोनू लगातार कुछ-न-कुछ बतियाती जा रही थी।

'कितनी प्यारी बच्ची है। कैसी प्यारी-प्यारी बातें करती है। कभी तो चंचल चुलबुली और शोख है। कितनी मीठी महीन आवाज में बोलती है—कोयल सरीखी, मधुमिश्रित!' उसने सोचा।

उसने सोनू को पकड़कर उसे ढेर-सा प्यार कर डाला।

'सोनू बेटे चाय बन गई क्या? जाकर अपनी मम्मी से बोल दो!'

सोनू उसकी गिरफ्त से छूटी तो भागकर भीतर सीधी रसोई में पहुँची।

'पापा उठ गए पापा उठ गए!'

सोनू की मम्मी ने कहा "चाय तैयार है। सोनू, पापा को बुला ला। अंगुली पकड़कर लाना!'

सोनू मस्ती में झूमती सी उसके पास आई और उसकी अंगुली पकड़कर रसोई की ओर खींचने लगी। वह भी कच्चे धागे में बंधा सा पीछे-पीछे बढ़ा।

'शुभप्रभात हुजूर!' पत्नी ने कहा।

'शुभप्रभात सरकार!' उसने मौज में आकर प्रत्युत्तर दिया।

'आज तो साहब बड़े मूड में हैं!'

"आपकी दुआ है!'

"सोनू, पापा को गुड मॉर्निंग की बेटे ?"

'यह अदायगी हमम आपसे भी पहले हो चुकी है। आज उठते ही सोनू का मुंह देखा है, दिन बड़ा अच्छा जाएगा। आज बहुत से जरूरी काम निपटाने हैं। सब फतह है। उसने उत्साह से भरकर कहा।

"अच्छा, अब मेरे हाथ की बनी 'चाह' नोश फरमाइये !" पत्नी ने यह कहते हुए चाय की सुवासित प्याली उसके आगे धर दी। उसका दिल बाग-बाग हो गया।

"पत्नी हो तो ऐसी !" उसने मन म सोचा।

"बबलू—बेटी कहां है ?" उसने चाय की चुस्की भरते पूछ लिया।

"नहा धोकर, नाश्ता करके, पढ़ने बैठ गए हैं।"

"कितने सुलक्षण होनहार लड़के हैं !" वह गौरवान्वित हो उठा।

चाय पीकर उसने शरीर को जरा सुस्ताने डाल दिया। उसी दौरान उसने आज का कार्यक्रम भी बना लिया। फिर झटके से उठकर लेट्रिन चला गया। बाहर आकर हाथ मुंह धोये। तब तक गरमा-गरम चाय की दूसरी प्याली सामने आ गई थी।

उसके बाद वह गुनगुनाते हुए बाथरूम मे जा घुसा। और देर तक ठंडे पानी से नहाता रहा। ताजादम होकर बाहर निकला। शरीर हल्का-फुल्का लग रहा था। कुछ ही देर म वह तैयार होकर चौके म पहुंच गया।

पत्नी ने थाली मे सब्जी लगा दी और गरमा-गरम फुलके उतारकर उसे खिलाने लगी।

'सब्जी बहुत स्वादिष्ट बनी है। तुम फुलके बहुत अच्छे सेकती हो, फूले-फूले और करारे। खस्ता कचौरियां का-सा स्वाद देते हैं।'

पत्नी मुदित मन उसे मनुहार से खिलाती रही।

'बस भई, पेट भर गया। बहुत खा लिया आज !"

पत्नी, बबलू—बेटी को खाने के लिए आवाज लगा देती है।

"आकर खा लो दोनों, स्कूल के लिए देर हो जायगी !"

सोनू ने तो उसके साथ ही खा लिया था।

उसे आज बहुत से आवश्यक काम करने हैं। वह बाहर निकलने की तैयारी म जुट जाता है। तभी सोनू पास आकर खड़ी हो जाती है। वह उसे गोद म उठा कर प्यार करता है।

पत्नी भी हाथ पोंछती बाहर निकल आती है। सौंफ साफ कर उसे देती है।

'सोनू, पापा को जाने दे बेटे, देर हो रही है। इसके लिए आप बहुत सारी पापिन्स, टॉफियां और बिस्किट्स लाना !"

"भई, जरूर लेता आऊंगा, अपनी अच्छी-सी, बहुत प्यारी सी, गुड़िया जैसी बेटी के लिए !"

सोनू—'पापा खिलौने और गुब्बारे भी लाना।'

'अच्छा बेटे खिलौने और गुब्बारे भी लाऊंगा।'

फिर 'पप्पी' के आदान प्रदान के साथ अपनी ढेर-सी फरमाइशों पर उससे स्वीकृति लेती सोनू गोद में नीचे उतर आती है।

वह भी पत्नी और बच्चों को टाटा करते साइकिल उठाकर बाहर निकल पड़ता है।

निकलते निकलते वह 'अज्ञात' से दिन अच्छा गुजरने और काम बनने की प्रार्थना भी कर लेता है, संस्कार-वश। मन-ही मन अनायास ही कुछ गुनगुनाता है और आदतन नमन भी करता है। रास्ते में जहां कहीं कोई मन्दिर, मूर्ति, किसी देवी-देवता का थान मुकाम नजर आ जाता है उसका सिर स्वतः झुक जाता है मुंह से कुछ बुदबुदाहट भी फूटती है, संस्कार-वश ही।

सबसे पहले वह जिला कोषाधिकारी (नगर) से मिलने की सोचता है। भवन निर्माण ऋण अग्रिम के आवेदन को दिए पांच साल से ऊपर हो गया। अभी हवा भी न लगी थी। कल उनके एक निकटस्थ के साथ उनसे उनके घर पर मुलाकात की थी। सारी बात को बहुत अच्छी तरह सुनी गई और कार्यालय में आकर मिलने की हिदायत के साथ मुलाकात खत्म हुई थी।

संयोग से आज उनके कमरे के बाहर चपरासी भी नहीं दिखाई पड़ा। लाइन क्लीयर देखकर वह चिक उठाकर नमस्ते कर सीधा अन्दर पहुंच गया।

साहब ने अजनबीपन और रुखाई से उसकी ओर देखा।

"हां, कहिये।"

उनके चेहरे की सख्ती और आंखों का हिंसक भाव देखकर वह हकला गया, "सर, वो लोन के लिए आपसे कल मिला था उसी सिलसिले में हाजिर हुआ हूं।"

"आज नहीं, आज मैं बिजी हूं, फिर कभी आना।' कहकर वे पुनः बाबू से उलझ गए थे।

उसे होश आया तो वह कमरे के बाहर खड़ा था।

आज इनका मूड ठीक नहीं दिखता। किसी बात को लेकर बाबू पर नाराज हो रहे थे। मैं ही गलत वक्त पर आ गया। खैर, फिर देखूंगा। न होगा, तो उन्हीं को दोबारा पकड़ कर लाऊंगा।

वहां से प्रकाशक की दुकान की ओर कदम बढ़ाये। काफी दिनों की टालमटोल के बाद पुस्तक के पारिश्रमिक के बकाया पांच सौ रुपये का चेक आज जरूर दे देने का वायदा था। बहुत-सी जरूरतें वह इस चेक के भुगतान पर टालता आ रहा था। आज चैक का मिलना बहुत लाजमी था।

वहां पहुंचा तो नौकर ने बताया 'सेठ साहब अभी तक पधारे नहीं हैं।'

"घर पर है क्या ?"

घर स तो नौ बजे ही निकल जात है।"

"फिर कहा गये है ?'

' पता नही।"

'सुबह चाबी लान घर गए थे तब तुम्ह कुछ कहा था ?"

"नही, मुझे ता कुछ भी नही बोला !'

वह वहा घण्टा भर से ज्यादा प्रतीक्षारत बैठा रहा। लेकिन प्रकाशक को नही आना था, वह नही आया।

"पुस्तक छापकर रुपया बनाते है लेकिन लखक को पारिश्रमिक देत इनकी नानी मरती ह।"

वह अनमना होकर दुकान मे बाहर आ गया। वहा से रास्ते मे पडन वाले सावजनिक वाचनालय म जा घुसा। एक सरकारी पत्रिका म इसी महीने उसकी कहानी छपनी थी। सूचना मिल गई थी। लेकिन अक अभी तक उसक पास नही पहुचा था।

"अब तक तो अक आ जाना चाहिए था। हो सकता है, डाक म 'मिस' हो गया हो। चलो, यहा दख लेत है। कहानी के पारिश्रमिक का पैसा आ जाएगा, कुछ तो सहारा लगगा।"

पत्रिका का चालू अक मेज पर पडा था। लपककर उसने उठा लिया और पन पलटने लगा। उसकी कहानी नही निकली थी। अगले अक के 'झरोखे मे भी कोई उल्लेख नही था।

"यह क्या हुआ ? सूचना तो इसी अक के लिए थी !—साल भर से पडी है। अपने चहता को तो हर दूसरे महीने छापते रहन हैं। यही हाल आकाशवाणी का भी है !—' वह बुदा गया।

एक लघु-पत्रिका को उठाकर दखने लगा। उसकी बहुत पहले की भेजी एक कहानी प्रकाशित होकर सामन थी। वाचनालय मे अक रजिस्टर होने की तारीख देखी तो चाक पडा, करीब बीस दिन पहले की प्राप्ति दज थी।

वह खीज गया। उसे न तो कहानी प्रकाशित कर देन की सूचना दी गई और न ही पत्रिका की लखकीय प्रति प्राप्त हुई थी।

"पारिश्रमिक नही दे सकते, चलो मान लेत हैं। लेकिन रचनाकार को सम्मान दना तो सीखो !"

वह खिन्न हो चला था।

बबलू-चटी की स्कॉलरशिप के आज ही परिणाम आने हैं। चलकर पता कर लू ! नम्बर आ जाए तो काफी राहत हो जाएगी।

आशंकित मन लिए विपरीत सूचना से डरते डरते, वह उनके विद्यालय पहुंचा। शाला-प्रधान से मिला।

'सॉरी, आपके बच्चों को हम चाहते हुए भी लिस्ट में नहीं ला पाए। स्कालरशिप सिर्फ पांच छात्रों को दी जानी थी। दो हमारे स्टॉफ के लोगों के बच्चे आ गए। एक के लिए डी०ई०ओ० साहब का फोन आ गया। अन्य दो के लिए हमारे मनेजमेंट के सदस्यों की सिफारिश थी। अब बताइए, क्या करें?"

"इस देश का बेड़ा इसी तरह गर्क होकर रहेगा!" उसने सोचा।

उसका मूड अब एकदम ऑफ हो गया था। उद्विग्नता और हताशा बढ़ रही थी। उसने बाकी के सारे काम असफलता की आशंका के रहते आगे के लिए मुल्तवि कर दिए।

वह बेहद उदास हो आया था। इससे निजात पाने के लिए वह पास के सिनेमा थियेटर की ओर मुड़ गया। घर जाने का उसका दिल नहीं कर रहा था।

"क्या लेकर घर जाएगा!"

लेकिन वहां भी उसे निराशा ही हाथ लगनी थी। पिक्चर शायद नई लगी थी, बेशुमार भीड़ पड़ रही थी। उसे टिकट मिलने का कोई सवाल ही नहीं था।

'टिकट खिड़की बंद है। हाउस फुल' का बोर्ड लगा है। उधर सारे टिकट ब्लैक में बिक रहे हैं—पांच का पच्चीस में धड़ल्ले से जा रहा है!—"

अब तक वह बुरी तरह उखड़ चुका था।

घर पहुंचा तो पूरी तरह टूटा निचुड़ा हुआ, थका-हारा और चिड़चिड़ा, बीमार सा। बुरी तरह निढाल और पस्त-पस्त होकर।

उसे आया देखकर सोनू दौड़ी आई और उसके पैरों से लिपटकर अपनी फर माइश की चीजें मांगने लगी। वह बुरी तरह फट पड़ा। इस वक्त उसे सोनू वह शरारती शैतान और हर समय बेबात गिटर पिटर करने वाली बातूनी लड़की लगी थी। उसका चीखना चिल्लाना सुनकर पत्नी बाहर निकल कर उसे देखने लगी। लेकिन इस वक्त उसे वह कोई सलीके की औरत दिखाई नहीं पड़ रही थी जो बच्चों को भी ठीक से सम्भाल कर रख सके।

कमरे में आते-आते पत्नी पर फट ही तो पड़ा वह। वहां पड़ी कुछ पाठ्य पुस्तकों को देखकर उसे लगने लगा—दोनों लड़के बिल्कुल मूर्ख हैं। अपनी पुस्तकें तक तो ठीक से सम्भालकर रख नहीं सकते। कायदे से पढ़ाई क्या करते होंगे!

इस समय तक उसका मूड बुरी तरह उखड़ चुका था। वह कटखने कुत्ते की तरह हर सामने पड़ने वाले को काट खाने को तैयार बैठा था। सोनू डर से कहीं

दुबककर बैठ गई थी। पत्नी भी उसके सामने पडने से कतरा रही थी। वह था कि वठा गुस्से में उबलता, मन ही मन खीजते हलकान हुआ जा रहा था।

कुछ देर बाद उसने सोचा, "आज का दिन बहुत ही मनहूस था। एक दिन की ली गई छुट्टी यो ही बेकार गई। न कोई काम हुआ, न आराम ही हुआ—न खुदा मिला, न विसाले सनम! वक्त बडा खराब चल रहा है। सब जगह गतिरोध है। आजकल कोई काम सलीके से होता ही नही!—रसूख और तौर-तरीके ही बदल गए हैं।" □

# परिवर्तन

## सुदर्शन राघव

"मे आई कम इन ?"

"ओ—यस-यस कम इन । ' इतना कहने के साथ ही मिसज विडवालकर, जो कि छात्रो को ब्लैकबोर्ड पर कुछ लिखकर दे रही थी, एकदम घूम पडी ।

"नमस्कार, दीदी ।

' नमस्कार   नमस्कार । कहो भई आज किधर स रास्ता भूल  गए ? पढाई कैसे चल रही है  तुम्हारी ?"

' जी  आपकी दया से बिलकुल ठीक चल  रहा है । मैं जरा एक काम से—।

' अच्छा, मैं जरा बच्चो का    ।" घडी की ओर निगाह डालती हैं, ' बस पाच मिनट शेष हैं इस पीरियड मे । तुम जरा लायब्रेरी म चलकर बठो  मैं अभी आती हू ।

"जी, म जरा जल्दी म    "

' हा-हा अभी पाच मिनट म आई, नक्स्ट पीरियड वैकन्ट है ।'  और व बिना किसी  उत्तर की प्रतीक्षा  किए एकदम बोड  की ओर घूम  पडी और छात्रो  को कुछ समझाने लगी । घटी बजत ही वे पुस्तकालय की ओर लपकी और नवीन को लेकर आफिस म आ गई ।

"हा भई अब कहो, कसे आने का कष्ट किया तुमने ?

' जी  वो कुछ प्रोग्राम के बारे म कहने आया था । ऐसा है कि  विवेक नाटघ शाला  वालो की ओर से एक ड्रामा खला जा रहा है । आठ तारीख रात को साढ आठ पर शुरू होगा  आप भी आइएगा ।  और  उसने अपने  बैग म से एक रसीद बुक निकाली ।

"ये पाच-पाच रुपये के टिकिट है ।'

' लेकिन नाटघशाला वाले तो    ।

'हा, दीदी आप ठीक कह रही है। मगर इस पसे से तो साहित्यकार मयक का इलाज ।"

"क्यो, क्या हुआ उन्ह ?'

"वाह ! आपको मालूम नही मयकजी लगभग एक माह से हॉस्पिटल मे एडमिट है और उनकी हालत चिन्ताजनक है। उन्हे टी०बी० की शिकायत है।"

"हू, मगर साहित्यकारो को तो सरकार की ।"

"हा दीदी, सरकार की तरफ से मदद मिलती है मगर मयकजी ने मदद लेने स इन्कार कर दिया।"

"ऐसा क्यो ?"

'यह तो उन्होने बताया नही, मगर उनकी धर्मपत्नीजी ने एक बार कहा था कि हम लोग किसी की दया के पात्र ।"

"आह, तब तो व इस ड्रामे स हुई इनकम को भी ।"

"नही दीदी, एसी बात नही। हम लोगो ने इसके लिए राह निकाल ली है। यह ड्रामा जो हम लोग खेलने जा रहे है न, यह असल मे उन्ही का लिखा हुआ है और हम उनकी परमीशन मिल गई है। ऐवज मे हमने उन्हे तीन हजार रुपया देना निश्चित किया है और इसमे उन्हे कोई आपत्ति नही।"

"यह तो बिजनेस है, क्या ?"

"जी।"

"हा, तो इसके लिये मुझे क्या करना होगा ?"

"ये पाच पाच रुपये के टिकिट है, आप इन्ह अपने स्टाफ म बिकवा दें।"

"देखो नवीन, मैं अपने स्टाफ मेम्बर्स से बात कर देखूगी, अगर कोई ।"

"दीदी, आप उनसे आग्रह तो कर ही सकती हैं। आप तो जानती है बात ही कुछ ऐसी है।"

"हा भई, आग्रह तो कर सकती हू लेकिन बाध्य नही कर सकती। क्यो ठीक है न ?"

"जी, सो तो है। अच्छा, तो आपको टिकिट दे दू ?"

"नही, अभी रहने दो ! बाद म ।"

"फिर कब आऊ ?"

"एक-दो दिन म पता नही-नही तुम्हे स्वय ही सूचित कर देंगे।"

"अच्छा तो अब मैं चलू। नमस्कार।"

"नमस्कार !"

नवीन के चले जाने के बाद उन्होने घटी बजाई। सुनते ही चपरासी रामदीन दौडता हुआ चला आया।

'हुक्म साहब।"

'एक गिलास पानी लाओ।"

'लाया साहब!' और बूढ़ा रामदीन अपनी झुकी हुई कमर को जरा तानने की कोशिश करता हुआ एक ओर खिसक गया।

पानी पीकर भी उनके दिल को ठंडक नहीं पहुंची। एक कशमकश सी उनके दिल में पैदा हो गई। वे कभी सोचती नवीन से टिकिट न लेकर अच्छा नहीं किया। वह कितनी आशा से आया था यहां। एक संस्था को प्रधान होकर पांच रुपये के लिए कन्नी काटना अच्छा नहीं रहा। यह तो सरासर अपनी प्रतिष्ठा को अपने हाथों ठेस पहुंचाना हुआ। मयंक जैसे साहित्यसेवी के हित में तो उन्हें कुछ करना ही चाहिये था। वैसे तो उसकी रचनाएं सभी कितने चाव से पढ़ते हैं, उसकी सराहना करते हैं। पर अब जब उस पर मुसीबत आई है? नहीं नहीं, उसे टिकिट ले लेना चाहिये था। वह नवीन की नजरों में कितनी तुच्छ हो गई है। एक नवीन है जो निर्विकार भाव से इतनी तेज गर्मी में मारा मारा फिर रहा है। अगर मेरी ही तरह पांच के नोट के लिए सभी लोग टिकिट खरीदने से इन्कार कर दें तो फिर तीन हजार रुपये ... । पर इतनी रात तक अकेले लौटने में भी तो?

जब जाना ही न था तो फिर टिकिट लेकर ही क्या करती! वे अपने मन को सांत्वना देती हुए उठ खड़ी हुई और कन्धों को यूं झटका मानो वे अपने मन में आए विचारों को झाड़कर साफ कर रही हों।

दिन भर उनका मन काम में नहीं लगा। अन्तिम पीरियड में स्टाफ मीटिंग कॉल की गई। स्कूल सम्बन्धी बातों के दौरान मिसेज विडवास्कर ने साहित्यकार मयंक के ड्रामे की चर्चा छेड़ दी और कहा कि आप लोग अगर जाना चाहें तो टिकिट मंगवा लिये जाएंगे।

काफी देर तक खामोशी रही, अन्त में मिसेज विडवास्कर ने ही चुप्पी को तोड़ा, "आप लोग सोच लीजियेगा अगर प्रोग्राम बन जाये तो कल तक मुझे बता दीजियेगा, मैं टिकिटों का प्रबन्ध करवा दूंगी।'

सभी ने अपने सिरों को थोड़ा-सा हिलाते हुए मुस्कराकर मौन स्वीकृति दे दी और अपनी नजरें झुका लीं। किन्तु खिड़की के पास बैठा रामदीन, जो सारी बातें सुन रहा था एकाएक उठ खड़ा हुआ और बोला—"बणजी, टिकिट म्हारे वास्ते ईज मगा दीजो।" और उसने अपनी जेब में से कई तह किया हुआ पुराना सा नोट मिसेज विडवास्कर को थमा दिया।

'अरे रामू, तू बड़ा शौकीन है रे, नाटक देखने का?

"ना बाईसा, नाटक-फाटक तो म्हं कदे ईज नी देखूं, पण ... ।"

"फिर ये टिकिट!"

"ओ तो मा रिणी विपदा मे पड्योड़े मिनख री मदद रो अनूठो ढग है सा। टिगट लिया कोई फासी नी टूर्वे क पहुचणो ईज पडलो।"

उस वृद्ध चपरासी के विचारो को सुनकर सबकी आखे शरम स झुक गई और मस्तक श्रद्धा से। ओह्, कितना दरिया दिल है यह बुड्ढा।

रामदीन की देखा-देखी सभी के मन म आया कि टिकिट क लिये वह दे पर अब उन्ह कुछ शरम-सी महसूस हो रही थी। मन-ही-मन कल क लिये कुछ निर्णय करके सब उठ खडे हुए और अपने-अपने घर की राह ली।

मिसेज बिडवाल्कर ने स्कूल म निकलकर सीधे हॉस्पीटल की राह ली। मयक के काटेज का नम्बर उन्होन बातो ही बातो मे नवीन स पूछ लिया था। वे चली जा रही थी। एक तूफान-सा उनके दिलो दिमाग मे चल रहा था। न जाने कब उनके कदम सहसा कॉटेज नम्बर चार के आगे आकर रुक गये।

आठ-दस साल का एक बच्चा बरामदे म खेल रहा था। मिसेज बिडवाल्कर को देखते ही वह उठ खडा हुआ और दोनो हाथ जोडकर नमस्ते की। फिर बोला, "आप पापा से मिलने आई है न ?"

'हा, बेटे पर तुम्हे कैसे मालूम ?"

"रोज ही तो कितने लोग उन्हे देखने आते है न ! इसलिये।"

"मैं भी उन्ही को देखने आई हू। आओ अदर चले।"

बेड पर मयकजी को लेटे देखा, कितने बदल गये थे वे। दो साल पूर्व उन्हे किसी सभा मे देखा था। पास ही उनकी धर्मपत्नी बैठी थी। बडी दुबली पतली, तीखे नाक-नक्श और गोरे वर्ण के कारण काफी आकर्षक लग रही थी। पर चिन्ता की वजह से काले धब्बे से उभर आए थे उसकी आखो के नीचे।

वह मिसेज बिडवाल्कर को देखकर शीघ्र ही खडी हो गई और मुस्कराने की कोशिश करते हुए उनको नमस्ते का जवाब दिया।

मयकजी ने भी अपने दुर्बल हाथ जोड दिये। उन लोगो से बातचीत करते हुए मिसेज बिडवाल्कर को ऐसा लगा कि वे लोग कितने विशाल हृदय और स्वाभिमानी हैं। उनकी पत्नी के साहस एव दृढता को देखकर बडी हैरानी हुई पर एक साहित्यकार की यह दशा देखकर मन बडा दुखी हुआ। कुछ देर इधर-उधर की बातें करके व कुशल क्षेम पूछने के बाद जब मिसेज बिडवाल्कर चलने को हुई तो बोली, "मेरे लायक कोई सेवा हो तो बताइये ? अगर आप कुछ सेवा का मौका दें तो हमारे लिये सौभाग्य की बात होगी।"

'अरे बहिनजी, आपके मन मे हमारे लिये इतना स्नेह है, यह कोई कम खुशी की बात है ? हमारे प्रति अपना स्नेह बनाये रखे, यही हमारे लिए सबसे बडी बात है।

मयकजी के स्नेह स परिपूर्ण शब्द श्रीमती बिडवाल्कर के अन्तस तक छू

गये। मन भर आया। हाथ जोड़कर बाहर निकल आई।

बाहर आकर फिर उनका सामना उसी बच्चे से हो गया। वह उन्हें देखते ही कह उठा, 'आण्टी, मेरे पापा अच्छे हो जायेंगे न ?" बालक की भोली सूरत देख कर मन भर आया। उसे अपने से चिपटाते हुए वे बोली, "हां-हां बेटा, तुम्हारे पापा अब जल्दी ही अच्छे हो जायेंगे।' और वे चल दी। उनके कदम अनायास ही नवीन के घर की ओर उठ गए।

दरवाजे पर दस्तक देने के बाद वह जरा देर रुकी, भीतर किसी के चलने की आहट हुई, शायद कोई आ रहा था। दरवाजा खोला एक वृद्धा ने।

"नमस्ते माजी।"

"आओ आओ बेटी, किससे मिलना चाहती हो ? '

"मुझे नवीन से मिलना है ! क्या वह घर पर नहीं है ?"

"नहीं बेटी।"

"अच्छा तो मैं '

"अरे नहीं बेटी, अभी तो आई हो, बैठो, वह अभी आता ही होगा।"

" ।

'आजकल वह बड़ा व्यस्त रहता है बेटी। सच कहूं, सुबह से आज भूखा है, अन्न का दाना '

'अभी कहां गया है ?"

'उसका परिचित कोई लखप है, बेचारा बीमार है उसकी मदद के लिये कोई नाटक-वाटक कर रहे हैं। टिकिट रखी हैं सो उसी का बचन के चक्कर में फिर रहा है। अच्छा है अगर कुछ मेहनत करने से किसी का भला हो जाय। बेचारे की हालत खराब बतावें, घर में बच्चा है जवान पत्नी है। पता नहीं भगवान को क्या ?' और उनकी आखें भीग गयी।

कुछ देर बैठने के बाद मिसेज विटवालकर ने उठते हुए कहा, "अच्छा माजी, मैं चलती हूं। उन्हें कहना मिसेज विटवालकर आई थी, कल स्कूल में मुझसे मिल लें।"

'अच्छा बेटी ठहरो मैं भी चलती हूं। एक कापी मैंने भी ली है उससे। मुहल्ले में टिकटें बेच आऊंगी।' और वह लाठी के सहारे लगड़ा-लगड़ाकर चलने लगी।

मिसेज विटवालकर का दिल भर आया, उन्होंने झट उनके हाथों से टिकिटों की कापी छीन ली।

"लाओ माजी आप आराम करो। ये टिकिट मैं खरीद लेती हूं। आप कल नवीन को भेजकर पैसे मंगवा लें।'

"जीती रहो बेटी, भगवान तुम्हारा भला करें। मुसीबत में किसी के काम

आना सबसे बडा पुण्य है बेटी।" और उन्होंने अपना कांपता हाथ मिसेज विडवाल्कर के सिर पर रख दिया।

मिसेज विडवाल्कर उसके स्नेहिल हाथ के स्पर्श से गद्गद् हो गई। हाथ में थमी टिकिटों को देखकर वे सोचने लगी, यह मन भी कैसा बहुरूपिया है, झट गिरगिट की तरह रंग बदल लेता है। कभी पत्थर से भी कठोर तो कभी मोम से भी नम। कहां तो सुबह एक टिकिट के लिये झिझक रही थी और कहां पूरी बीस टिकिटों की जिम्मेवारी ले ली।

अगले ही दिन स्कूल स्टाफ रूम में सभा बुलाई गई और दखते ही देखते टिकिटें बीस हाथों में बँट गई। बूढा रामदीन उन सबके हृदय में आए परिवर्तन को देख रहा था। वह गद्गद् हो उठा। उसकी आंखों से दो मोती लुढक कर झुर्रियों भरे गालों में विलीन हो गये। □

# पिद्दी-सी लडकी ने सोचा

## रूपा पारीक

उसने रसोई से बाहर निकलकर बरामदे में झांका—दीवार घडी छः बजकर पांच मिनट का समय बता रही है। साढे सात बजे नाटक शुरू हो जायेगा। विशुदा ने कहा था जल्दी ही आ जाना उसे दर्शकों का प्रवेश शुरू होने से पहले ही पहुंचना है। तीन रोटी और बनानी रही है—एक तवे पर, एक चकले पर और तीसरी का लोआ परात में पडा है। वह गुनगुनाने लगती है। पूरे तीन महीने सत्रह दिन बाद मिलेगी सबसे—जगदीश चाचा सुनीता दीदी—ऊंह। उन्हें दीदी कहने का मन नही होता उसका। वह बुरी नकचढी लडकी नही है कि किसी का आदर ही न कर सके—बस, यू ही सुनीता उसे कभी अच्छी नही लगी। उसने मन-ही-मन विश्लेषण शुरू कर दिया—क्या वह सुनीता दीदी से ईर्ष्या करती है? राम जाने क्या सोचने लगी वह भी—तवे की रोटी बुरी तरह जल गयी है। उसने रोटी का कटोरदान टटोला। तीन जन है खाने वाले—पिताजी सुषमा और गुड्डू अन्नू भाई तो शो के बाद घर लौटेंगे या नही कहना मुश्किल है। नाटक के प्रदर्शन के दिन प्राय वे नही लौटते हैं या लौटते है तो इतनी देर से कि तब खाने-पीने का ध्यान नही रहता—शायद वे बाहर से खाकर ही लौटते है। अन्नू भाई भी विचित्र हैं। मां कितना परेशान होती है उन्हें लेकर और वे हैं कि परवाह नही करते। अरे! नाटक करते हो तो ठीक है मगर घर पर तो ठीक से रहा करो—वह सोचती है लेकिन अन्नू भाई हैं कितने अच्छे उनकी आवश्यकताएं कितनी सीमित है। कहीं मां बेकार ही तो परेशान नही होती?

खैर छोडो भी यह झमेला। उसे तैयार हो जाना चाहिये फटाफट। बहुत खुश है वह। सबसे मिलना होगा। मिस्टर अमर को अपनी पत्रकारिता से फुरसत मिली तो वे जरूर आयेंगे नाटक देखने। उनसे तो वह दो बार ही मिली है। पहली बार चाचा के घर मिली थी। विशुदा के साथ बहस कर रही थी कि बीच में टपक पडे — विशु। ये विदुषी कहां से पधारी है? अमर ने कहा था जो दरवाजे

पर खडे उसकी और विशुदा की बहस सुन रहे थे। वह भी नही चूकी थी। पलटते हुए उसने कहा था—'कौन है ये कबाब म हड्डी ?"

"कबाब म हड्डी नही, दाल मे ककर मैं शाकाहारी हू।"

"आओ दादा। दादा ये है कामिनी, ताऊजी की लडकी, आनद की बहन। कामिनी ये हैं अमर दादा।"

"जी हा ! मैं अमर उर्फ दाल मे ककर।" फिर देर तक उनका ठहाका कमरे मे गूजता रहा।

कामिनी को लगा वह तो पिघलकर बह जायेगी। ऐसा ही व्यक्तित्व था अमर का। वह बेचारी सिर झुकाये फर्श ताकने वाली, स्कूली लडकी जिसने स्कूल की सभाओ म रटे रटाय और महापुरुषो की उक्तियो से भरे भाषण तो दिये थे लेकिन जिसकी दुनिया केवल स्कूल और घर-परिवार के सदस्य है।

विशुदा अमर स बात करने लग—'और दादा कैसा चल रहा है अखबार ?'

"एमा।" और अमर ने राकेट उडाने का अभिनय किया।

"और ।" विशुदा ने अटकते हुए और शरारत से पूछा—"अजली ?"

"अजली ?" अमर ने लापरवाही से कहा—"ओ ! अजली रिवर्सिबल रियेक्शन नो गेन नो लास।"

विशुदा कुछ उदास से लग। अमर हस रहे थे और वह बुद्धू-सी सिर झुकाये बैठी थी। कनखियो से अमर दादा को देखते हुए।

पौने सात बज गये ह। देर न हो जाय। वह जल्दी जल्दी बालो पर कघा फेरने लगी। उसे जल्दी ही पहुचना है। कितने अच्छे है विशुदा ! मा तो उसे कही जाने ही नही देती हैं। आज सुबह ही चाची के साथ गगा-स्नान के लिए गयी है। कल सोमवती अमावस्या है। सुबह का स्नान करके कल शाम तक लौट सकेंगे वे लोग। विशुदा न अच्छा अवसर देखकर उस बुला लिया है। पिताजी तो मना करेंगे नही और एक अन्नू भाई हैं कभी अपन साथ नही ले गये। दूसरी बार जायेगी वह नाटक देखन। पहली बार गयी थी तब बहुत छोटी थी। चाचा ले गये थ उस। अब तो वह कॉलेज मे पढती है। क्या समझते हैं सब उसे ? वह भी किसी से कम नही हैं। अन्नू भाई न जाने क्या समझते है अपने आपको ? माना उनके जितनी अक्ल नही है लेकिन नाटक तो देख ही सकती हू—अभिनय तो समझ ही सकती हू। विशुदा तो बडी तारीफ करते हैं अन्नू भाई की। दोपहर को नाटक देखन के लिए बुलाने आये थे तब उसने विशुदा स कह ही दिया था—"आप कितन अच्छे हैं मुझे समझते हैं। अन्नू भाई तो ढग स बात तक नही करते।'

विशुदा मुस्करा दिये—"कामिनी की बच्ची बडी अक्ल वाली हो गयी है स्कूल से निकलते ही।' फिर कुछ रुककर बोले—"मैं भी तो कभी रेखा को

नाटक दिखाने नहीं लाया।' विशुदा दूसरी ओर देख रहे थे।

कामिनी ने सोचा—ठीक ही तो कह रहे हैं विशुदा। मैं ही पागल हूं। कलाकार और उसका जीवन उसके द्वारा जिया जाने वाला पात्र। कितना अन्तर होता होगा स्वयं कलाकार और उसके द्वारा अभिनीत पात्र में। अपने आपको खुद से बाहर निकालकर किसी अमूर्त को मूर्त करना वह सोचती जा रही है। सच, कितना आनन्द होगा अन्नू भाई की दुनिया में। उसने एक कहानी पढ़ी थी बचपन में जादू के गांव वाली कहानी। वैसा ही कोई गांव होगा। मैं कभी उस गांव में पहुंच भी गयी तो मेरे पैरों की अपरिचित और बेसुरी आहट से उस गांव का जादू टूट जाय।

"क्या सोचने लगी?

'मैं बुद्धू हूं?'

'नहीं, बुद्धू कोई नहीं होता। बल्कि तुमसे तो बहुत उम्मीद है।" विशुदा चुप हो गये। कामिनी को क्या लगता है कि विशुदा पहले से कुछ छोटे और वह पहले से कुछ बड़ी हो गयी है? कामिनी मन ही-मन कहती धत्, पगली!

"कामिनी आओगी ना नाटक देखने।'

"हां। उसने गर्दन हिला दी।

कामिनी तैयार हो गयी थी। पिताजी बाजार से लौट आये हैं।

मैं जाऊं?"

"हूं।" पिताजी का ठंडा-सा स्वर सुनायी दिया।

वह जल्दी से रिक्शा करके थियेटर पहुंच गयी। सबसे पहले विशुदा से, फिर चाचा से मिलूंगी, उसने सोचा। शाम का हल्का अंधेरा फैल रहा था। गेट के ऊपर लगी बत्ती जल रही थी। इसी से रोशनी के थकु से बाहर अंधेरा और गहरा गया था। वह हाल में दाखिल हो गयी। बिल्कुल खाली हाल, गहरी शान्ति, मगर फिर भी एक गंज क्या आखिर क्या फुसफुसा रही है हवा? वह ठिठकी खड़ी रही और सोचा कि किसी से नहीं मिलूंगी।

दो पल रुककर वह अपने जाने एक अच्छी कुर्सी की ओर बढ़ गयी—जहां से उसका अन्दाजा था कि सब कुछ साफ और अच्छा दिखायी देगा। हाल का दरवाजा चरमरा उठा, वह पलटी। दर्शक आने लगे हैं। उसे लगा कि पिछली अंधेरे में डूबी कुर्सियों की तरफ से एक छाया गैलरी से होते हुए मंच के पीछे की ओर जा रही है। शायद विशुदा हैं। वह आवाज दे उसका मन हुआ। मगर तब छाया तभी से उसके बहुत पास वाले खम्भे के पीछे से होती हुई उससे दूर हो गयी थी। अचानक उदासी हो गयी वह—कितनी अकेली हूं मैं। उसे क्या लगा कि वह छाया। उसे अच्छा नहीं लग रहा है—शायद इसे ही उदासी या दुख की छाया। वह खम्भे से सबसे पास वाली कुर्सी पर बैठ गयी।

हाल मे अब पहले सी फुसफुसाहट नही थी न ही शाति। अब कुछ आवाज सरसरा रही थी। धीरे धीरे सीटें भरने लगी। उसने घडी देखी—सवा सात। अभी पन्द्रह मिनट है।

"दी दी ! एई !

उसने सिर उठाकर देखा। ये सुधीर हैं। चाचा का छोटा लडका। उसका हम उम्र ही है शायद दो-तीन महीने छोटा। कामिनी को उसका आना अच्छा लगा।

"थोडी देर यही बठना।"

"नही, मैं भी काम कर रहा हू, अमर दादा इधर ही आ रहे है। आप आयी हैं विशुदा ने अभी बताया।"

कामिनी का मन हुआ पूछे— 'उन्हे क्या हुआ ?"

"ये आनन्द की बहन है ना ?" तब तक अमर आ गये थे।

"आनन्द भाई की ही नही, मेरी भी, विशुदा की भी लेकिन आप इसे बहन मत बना लेना वरना बुरा मान जायेगी।"

यह सुधीर का बच्चा भी कैसी बेहूदी बातें करता है—कामिनी बौखला-सी गयी। सुधीर जानता था कि अब यहा ठहरा तो उसकी खर नही।

"अच्छा दादा चलू, शो के बाद मिलत है।" कहकर सुधीर भाग लिया।

कामिनी चुप बठी रही। अमर हस रहे थे—"ए लडकी ! मुह लटकाकर मत बैठो।"

नाटक शुरू हाने का सकेत मिला। हॉल भर चुका था। मच पर रोशनी हुई और गणेश वन्दना के साथ नाटक शुरू हो गया। सुनीता जीजी को तो पहचान गयी वह लेकिन आनन्द भाई की तो आवाज से ही पता चला। लगता ही नही था आनन्द भाई हैं।

कामिनी ने तो पूछ ही लिया—"ये अन्नू भाई है न अमर दा ?"

उन्होंने कहा—"हू।" शायद उन्हे कामिनी का बीच मे बोलना अच्छा नही लगा। वह चुपचाप बठ गयी। सुनीता जीजी का अभिनय बहुत बढिया है तभी तो चाचा इतना मानत हैं इनको। सुना है, बहुत पैसे वाला के घर की हैं लेकिन घर छोडकर इलाहाबाद आ गयी हैं। कस छोडा होगा घर कामिनी को, सोचकर अजीब-सा लगता है। अन्नू भाई तो बहुत ही अच्छे लग रहे हैं। पर विशुदा ? इन्हे क्या हो गया है ? कामिनी को पूरा नाटक समझ म नही आ रहा है, पर चुपचाप सब कुछ देखना अच्छा लग रहा है। वह लगभग बौना-सा, कूबड वाला अष्टावक्र नाटक म फकीर बना है। चाचा इन्हे कुम्भ के मेले से साथ ले आये थे। नाम भी चाचा का दिया हुआ है अष्टावक्र। कामिनी को उनकी बातें खूब अच्छी लगती हैं। चाचा के घर ही रहत हैं ये। चाचा की भी अजीब कहानी है—साझे मे धन्धा शुरू किया था दादाजी के कहने पर। लेकिन व्यापार की बुद्धि कहा थी। सच्चा कला

बार नाटक रहा कर पाता है वास्तविक जीवन म । साथदार न वो थामा दिया कि चाचा तो वैरागी हो गय। विश्वास उठ गया दुनिया स। दादाजी समझा बुझाकर, मनाकर वापस घर लिवा लाये— 'चल जगदीश मर्जी, आय जस रहना। लेकिन रह घर पर हो—बच्चो के साथ, बहू क साथ।" बड़ी मुश्किल से लौट थे चाचा वरना आज कहीं धूनी रमाये बैठे होते।

नाटक खत्म हो गया था। वह चुप बैठी रही। हॉल धीरे धीरे खाली हो गया।

'कैसा लगा ?" अमर दादा न पूछा।

वह कुछ बोल ही नहीं पाई।

'तुम पहली बार आयी हो ?

'एक तरह से पहली बार। अनू भाई कभी लाते ही नहीं।'

अमर मुस्करा दिए। कामिनी को ध्यान आया विशुदा न कहा था—अमर ने बी० एस-सी० और एम० ए० दोनो म गोल्ड मेडल लिया है जरूर अफसर बनगा। कामिनी का मन हुआ कुछ बात करे उनस।

"तुम आना चाहती हो यहा ?"

"हा ! उसने सिर हिला दिया।

अमर फिर मुस्करा दिये। इस बार कुछ अलग तरह स। उनके ओठ कुछ इस तरह से खुले जैसे कोई रहस्य खोलने वाले हो। फिर इस तरह बोले जस कोई चेतावनी द रहे हो—"नाटक देखकर नाटक क पात्रो का जीने की इच्छा नही होनी चाहिए।"

"मतलब ?"

"नाटक देखना एक बात है और एक पात्र को जीना एक दूसरी—बिल्कुल अलग बात है।" वे धीरे से बोले।

कामिनी बुद्धू-सी देखती रही।

"एक पात्र को जीना—मतलब रोना। आप चाह हस रहे हो अपनी भूमिका मे लेकिन यह अहसास कि कोई एक है जिसकी पीड़ा ही बहुतो की हसी का बीज है, अमर मुस्कराये "खर छोडो।'

"क्या मैं नहीं समझूगी ? आप एसा समझते हैं ?"

अमर चुप रहे। कामिनी जसे अपने दिमाग म घूमती किसी पहेली के हल तक पहुचने वाली है। अभिनय कला यह सुख महसूस करती है हॉल की चुप्पी का फुसफुसाहट का रहस्य खुलने-खुलने को है। अमर उठ गय है। सुधीर बुलाने आया है।

'आप भी चलिय दीदी। चाचा बुला रहे हैं। व लोग मच के पीछे वाले कक्ष म आ गय। सब यहीं हैं। खान का सामान पास ही रखा था।

"आज बिटिया भी देखने आयी थी।"

वह चाचा के पास बैठ गयी। लेकिन यह क्या—सब यू मुह लटकाये बैठे है जैसे दशको की चप्पलो और सडे टमाटरो का सामना करना पडा हो। विशुदा तो जैसे रोने ही वाले हैं। कामिनी को लगा कि विशुदा के छोटे और उसके बडे होने का सिलसिला जो दोपहर को शुरू हुआ था। अब तक जारी है। क्या उदासी म आदमी छोटा लगने लगता है? उदासी—उसने यह क्यो सोचा?

एक अजीब तनाव था कमरे में। चाचा कुछ अतिरिक्त उत्साह से बोले—"आज सुनीता ने तो कमाल ही कर दिया।" सुनीता जीजी ने हसने की कोशिश की—ऐसी भरपूर कोशिश की कि कामिनी आतकित हो उठी। चाचा सकपका गये और सुनीता जीजी । क्या हो गया है इन्हें? व चाचा की गोद म सिर रखकर बिलख रही है। लगता था, उडते हुए परिंदे छत से जा चिपके है और शेष है उनकी निरीह फडफडाहट का अहसास। कामिनी की धडकनें रुक-रुककर चल रही है। उसने सुधीर को देखा। सुधीर उठा और बाहर निकल गया। कामिनी भी धीरे-से उठकर बाहर आ गयी।

"मुझे घर जाना है सुधीर।'

"साथ ही चलियेगा। बाबा ने आपके घर कहलवा दिया है।" सुधीर बाहर खुली जगह म पसर कर बठ गया।

"सुधीर आज क्या हुआ? कुछ बताओगे?"

"बताने जैसा कुछ है भी या नही—पता नही ।" सुधीर दो क्षण बाद बोला—"आप !"

कामिनी को लगा यह भी यही कहने वाला है—"आप नही समझेंगी '—क्या मैं सचमुच इतनी बुद्धू हू? वह सोचती है।

"आप प्रोफेसर सिन्हा को जानती हैं? आप कसे जानेंगी? विशुदा के पी-एच० डी० के गाइड है—उन्होने ही कुछ उल्टा-सीधा कह दिया है यही कि कहा-कहा से चले आते है पी-एच० डी० करने—और विशुदा के सारे नोटस हथिया लिए हैं—आप समझ रही है?"

कामिनी इतना जरूर समझी कि विशुदा के साथ बुरा हुआ। उनका विश्वास टूट गया है। "और सुनीता दीदी एक सज्जन हैं इसी शहर म—कलाप्रेमी बनते फिरते थे। सुनीताजी ने सब कुछ उन्हें ही ' सुधीर चुप हो गया। कामिनी को अच्छा नही लग रहा है। अब सुधीर कुछ न बोले तो ठीक रहे। सुधीर चुप ही रहा। फिर अन्दर चलने के लिए खडा हो गया—"उनकी सगाई हो गयी है, काफी पैसा मिलेगा दहेज म सुनीता दीदी को नौटकी वाली कहकर चलते बने।" सुधीर ने लाचारी से हाथ झटके—"अजीब-अजीब लोग होते है। सुनीता दीदी क्या जानती थी कि हम तो स्टेज पर ही नाटक करते हैं और दुनिया हर कदम

पर नाटक करती है।'

कामिनी सुधीर के साथ अदर चली आयी। चाचा खाना तश्तरियो म लगा रहे थ। विनुता और आनन्द भाई मकअप उतार चुके थे। अष्टावक्र चाचा की सहायता कर रह थे। सुनीता जीजी अनमनी बैठी थी। अमर कही नही दिखे। कहा होगे? उसन सोचा और पानी लाने क बहाने बाहर आ गयी। इधर-उधर अमर दा को ढूढा। फिर खाली हाल की तरफ चली गयी। उसका अनुमान सही था। अमर हाल की अधेरी कुर्सी पर बठे थे। उस देखकर सीधे बैठ गय और धीमे-स हस पड। 'आप हस रह हैं?" कामिनी ने कहा। अमर ने मुह फेर लिया। उनकी पीठ काप रही थी। कामिनी वही खडी रही, फिर अमर क कधे पर हाथ रखकर बोली— चलिय अदर सब इतजारकर रहे हैं। अमर उठे और तेजी से चल गये। कामिनी न मुडकर खाली हाल को देखा। मन हुआ चीखे— अजली! रिव सिवल रियेक्शन नो गेन नो लास। लास। लास!! क्या यह सही है?' उस लगा हवा सरसरायी

वह भीतर आकर चाचा के पास बठ गयी। उसने उदास चेहरा पर नजर डाली। जी होता है सबको एक एक थप्पड लगाय। वह चुपचाप कौर निगलती रही धोखा उदासी कितने कमजोर हैं सब और मैं? वह आगे सोच नही पायी। सब सामान्य हो रहे है लेकिन वह—उसने फिर इधर-उधर नजर दौडायी —अष्टावक्र—इतनी कुरूपता लकिन है यह सच्चाई और सच्चाई क्या कुरूप हो हो सकती है? सुरूप मुखौटो के जजाल ।

चाचा मुझे घर जाना है उसने अचानक कहा और किसी की ओर भी देखे बिना वह बाहर निकल गयी। सुधीर उठा और उस चुपचाप घर पहुचा आया।

कामिनी न कपडे बदलकर हाथ-मुह धोये। पिछवाडे का और सामने का दरवाजा ठीक स बद किया। घर की बत्तिया बुझाकर वह सोने के लिए कमरे म आ गयी। पिताजी सुषमा और गुड्डू सो चुके थे। उसने चादर ली और बत्ती बद करके बिस्तर म घुस गयी। कामिनी न महसूस किया उसकी टागो म हल्का दर्द है कधे की नस भी खिच रही हैं। मा आज घर पर नही है। वह सुबह से काम म लगी है। मा भी रोज इतना ही थक जाती होगी—उसन सोचा। उसे याद आया कि वह दूध गम करना भूल गयी है। दही भी जमाना है। वह फिर रसोई म पहुचकर काम म लग गयी। वापस सोने लौटी तो देर तक चित लेटी छत पर घूमन पख को देखती रही। दिमाग म थियेटर की घटनायें घूमन लगी—आज सब दु खी थ। क्या कभी वह भी दु खी हुई है? वह याद करने की कोशिश करती है। कितना सरल है उसका जीवन। उसन बाहर कुछ देखा ही कहा है अब तक। क्या रो रह थे सब?

सुख ? और सुख भी क्या उसे कभी हुआ ? उसे लगा वह सुख-दु ख कुछ भी नही जानती। वह बुद्धू है बिल्कुल कमजोर, मरगिल्ली-सी लडकी । उसे झपकी आ गयी। थोडी देर म नीद खुल गयी। बदन पसीने से चिपचिपा रहा था। वह उठ बैठी। सब बेखबर सो रहे थे। वह उठकर बैठक वाले कमरे मे आ गयी। टेबिल लैम्प जलाकर उसने दराज म से एक डिब्बा निकाला। इसमे वह दूसरो मे मिले छुटपुट उपहार रखा करती है। बालो मे लगाने की पिनें, बढाई के रूमाल, कान क बुदे और इन सबके बीच एक छोटी सुनहरे कवर वाली डायरी भी पडी थी। कामिनी को चाचाजी ने दी थी यह डायरी। तब कामिनी को यह सबसे बेकार चीज लगी थी। उसने डायरी निकालकर मेज पर रखी और पहला कोरा पन्ना सहलाकर लिखना शुरू किया—

बाहर भीतर

19 मई

प्रत्यक व्यक्ति के जीवन म दो दुनिया होती है। बाहरी दुनिया मे दिखावा है। भीतरी दुनिया मे हम अकेले होते हैं। वहा हम क्या है ? यह बाहर वाला नही जान पाता। हम चाहत है कि भीतरी दुनिया म भी कोई हमारे साथ हो और इस लिए हम बाहर जाते हैं जहा बहुत-से लोग मुखौटे लगाकर घूमत हैं। विशुदा, चाचा, सुनीता जीजी, अमर दादा इन सबकी तरह ही कइ बार हम मुखौटो पर विश्वास करन लगत है और उन्ही से प्यार करत हैं। मै एक पिद्दी सी लडकी हू। शायद मेरा जीवन बहुत सादा-सा और निरुद्देश्य होगा—हा ! निरर्थक भी, ऐसा मुझे लगता है। लेकिन आज मैंन एक अच्छी बात सोची है—

मनुष्य अपनी सरलता के कारण सबसे प्यार करता है। लेकिन कोई भी मुखौटा अधिक समय तक टिकने वाला नही है। आखिर कभी-न कभी तो मुखौटे के पीछे छुपे चेहरे पर पसीना आयगा ही, खुजली मचगी ही तब ? तब मुखौटा उतारना पडता है। जब हम सामने किसी का असली चेहरा देखत हैं तो दु खी होते है—सोचत है कि हमारे साथ धोखा हुआ है। लेकिन धोखा तो उन्ह हुआ जिन्होने मुखौटा पहनकर प्यार और विश्वास पाया। मुखौटा उतरने पर वे अपना सच्चा साथी खो दत हैं जैसे अमर दादा, सुनीता जीजी, चाचा और विशुदा का सच्चा प्यार उनके नकली साथियो न खो दिया। हा ! चाचा ये सब बुद्धू हैं ना, इन्हे दु खी नही होना चाहिए। अच्छा ही तो है मुखौटे जल्दी ही उतर गये।

उसके लेखन म पिता के स्वर न खलल डाला।

"कामिनी ! क्या कर रही है बेटा ?" पिताजी न आवाज दी।

कामिनी हडबडा गयी—"कुछ नहीं पिताजी। अभी आयी। और उसन जल्दी-जल्दी लिखा—

"मैंने यह सब डायरी म लिख लिया है। कही एगा न हो कि समय आन पर मैं इसे ज्यो त्यो विशुदा को समझा नही पाऊ। मेरे प्यार विशुदा अब कभा रोना नही। ईश्वर! मैं अच्छी लडकी बनन की कोशिश तो कर ही सकता हू—भले ही मरा जीवन सादा सा, निरुद्देश्य और निरथक हो। मुझ जैसी घरलू पिढ़ी लडकी कर भी क्या सकती है भला।

फिर कामिनी बत्ती बद करके विस्तर म घुस गयी। उसका दिल बहुत तजी से धडक रहा था।

□

# कफनचोर

सत्य शकुन

पतित पावनी गगा का घाट इस वक्त सूना था। ठड अपनी पूरी जवानी पर थी। कलुआ गठरी बना हुआ बीडी के गहरे गहरे कश खीच रहा था। उसकी हड्डिया कपकपा रही थी। नजरें गगा पर दूर दूर तक टोह लेकर पुन घाट पर आ टिकती। आज तीसरा दिन था। क्या आज भी खाली हाथ लौटना होगा? कुछ भी हो, आज वह खाली हाथ घर नही जाएगा। भूख से कुलबुलाते बच्चो का रोना बिलखना उसे कुछ भी करने को प्रेरित कर रहा था। रात भी तो जाने वाली थी। सुबह कलुआ के लिए अभिशाप थी। दूर से इसी ओर आती पदचापो ने कलुआ का ध्यान भग किया। वह बडबडाया—

"इसे भी अभी मरना था। ठड मे भी साले को चन नही।"

पडित हरिसुख 'हर राम, हरे कृष्ण, हर हर गग' गुनगुनाते हुए क्षण भर के लिए कलुआ के निकट रुके और बोले।

"कौन है रे!"

"कलुआ हू—सरकार।" कलुआ ने धीमे स्वर मे जवाब दिया।

"अरे! कफनचोर। इस ठड म तेरी मति भी सठिया गई रे। यहा कब से बैठा है रे?'

"पूरी रात भर स।" कलुआ ने निरपेक्ष भाव से उत्तर दिया।

"राम राम हरे कृष्ण हर कृष्ण!" करते हुए हरिसुख घाट की ओर बढ गये। कलुआ एक बार फिर से जीवित लाश म बदल गया। पडितजी कब नहा धोकर वापस निकल गये कलुआ को पता नही लगा। प्रात रश्मिया उदित होने को थी। पक्षी नीड से उड-उडकर घाटो की ओर आने लगे थे। कलुआ मन मार कर उठा। एक बीडी निकाल कर मुह म लगाई और जलाने को ही था कि दूर से से बहती आती एक वस्तु पर नजर पडी। उसने कयास लगाया कि बहती हुई वस्तु लाश ही होनी चाहिए। वह तेजी से घाट के ऊपरी ओर बढा। उधर अभी कोई

नहीं होता।

वस्तु साफ-साफ दिखने लगी थी। लाश ही थी। वह फुर्ती से गंगा में कूदकर लाश की ओर तैरने लगा और तेजी से उसे खींचकर किनारे पर ले आया। इस समय उसकी आंखों में एक चमक थी और हाथों में एक नई शक्ति। वह लाश पर बंधी रस्सियों को खोलने में जुट गया। उसने लाश पर से कफन हटाकर उसे पुनः गंगा में ढकेल दिया और हल्के कदमों से कफन बगल में दबा मुड़ा ही था कि सामने से रामसिंह आता दिख गया। रामसिंह पुलिस का सिपाही था। उसकी ड्यूटी घाट पर व्यवस्था की थी। रामसिंह पूरी ठसक के साथ कलुआ की ओर बढ़ रहा था।

"कलुआ, कर दी लाश नंगी। हरामजादे तू नरक में जाएगा। अरे! अब तो बस कर यह पाप करना।" रामसिंह ने कलुआ की बगल में दबे कफन पर दृष्टि डाली।

"कफन तो कोरा है। कम से कम बीस रुपये में जाएगा।" कहते हुए रामसिंह की ललचाई निगाह कलुआ के चेहरे पर टिक गई। कलुआ ने कफन को अपनी बगल में और भी जोर से भींच लिया। रामसिंह खोखली हंसी हंसा।

"लो, हवलदार साहब बीड़ी सुलगाओ।" कलुआ ने एक हाथ से बीड़ी का बंडल निकाल कर रामसिंह की ओर बढ़ा दिया।

"ला-कुछ तो ठंड दूर हो। ओवरकोट में भी सर्दी घुसी जा रही है।"

रामसिंह ने बंडल से एक बीड़ी निकालकर सुलगा ली। कलुआ धीमे स्वर में बोला। "मैं चलूं हुजूर।"

"अबे बीड़ी नहीं लगाएगा।" रामसिंह ने कलुआ को टोका।

"अभी पी है हुजूर। बंडल भी तो महंगा हो गया है।" कलुआ ने बहाना बनाया।

"महंगाई का तुझ पर क्या असर पड़ता है। एक बार में बीस रुपये हाथ लग गये। महंगाई तो हम जैसे बंधी-बंधाई पगार वालों के लिए है। तभी तो तेरे जैसों के आगे भी हाथ पसारना पड़ता है।

'अरे! हुजूर, कहां आप और कहां मैं।' कलुआ ने खीसें निपोर दी।

"कलुआ, इस दुनिया में कौन छोटा और कौन बड़ा। सब बराबर हैं।' बीड़ी का धुआं हवा में छोड़ते हुए रामसिंह बोला। कलुआ को जाने की जल्दी थी। उसने एक बार फिर से जाने की अनुमति मांगी।

तो मैं चलूं हुजूर। बच्चों की रोटी का कुछ जुगाड़ करूं।"

"ला—एक बीड़ी और दे। मेरी रोटी का भी ख्याल रखना। लाशों के कफन उतारने में ही लगा रहेगा या उन्हें ढकने की भी सोचेगा।

'वही कर रहा हूं हुजूर।' रामसिंह से बीड़ी का बंडल वापस लेता हुआ

कलुआ बोला।

"जा।" कलुआ के पैरो पर पख लग गए। उसने मुडकर पीछे नही देखा। कफन के सामान बचने वाले ने दुकान खोल ली थी। कलुआ ने वही आकर सास ली। रत्तीराम दुकान का सामान जमाने मे व्यस्त था। पदचाप सुनकर उसने दुकान के बाहर नजर डाली। कलुआ खडा था। रत्तीराम बोला—

"मैं समझा कि कोई ग्राहक है। तीन चार दिन हो गये। आस पडोस म कभी चूल्हा भी तो बद नही हो रहा है।"

"मर यहा दो दिन हो गए चूल्हा नही जला।" कलुआ दीन स्वर म बोला।

"कही चूल्हा बुझे, तो तेरा और मेरा चूल्हा जले।" रत्तीराम ने कलुआ के स्वर म स्वर मिलाया। कलुआ को जल्दी थी सो उसने बगल से कपडा निकाल कर रत्तीराम के आग फेंक दिया और बोला।

"जो देना हो दे दे। मुझे जल्दी घर पहुचना है।"

"बैठ तो सही, इतनी भी क्या जल्दी है। आज बीडी नही पिलाएगा!"

"बीडी है कहा?" कलुआ अपनी एक बीडी बेकार नही करना चाहता था।

"कलुआ तू झूठ बोल रहा है। खैर! तेरी मर्जी, ले।" रत्तीराम ने गल्ले से पाच रुपए का नोट निकाल कर कलुआ की ओर फेंक दिया।

"बस! इतने से क्या होगा?"

"तो सारा गल्ला तुझे सौप दू। देख कलुआ, किसी ग्राहक को उतरा हुआ कफन बेचना पाप है। मुझे भी दूसरी दुनिया मे जाना है।" रत्तीराम ने दाव मारा।

"तू चिता न कर। मरे हुए पर इसका कोई असर नही पडता कि कफन कैसा है।"

"वह तो ठीक है पर उसके रिश्तेदारो की तो आखें होती है न। जीवन भर चाहे उसकी सेवा न की हो किंतु "

"अच्छा बहस न कर। तुझे नही लेना है तो ठीक है। कतरे का दिखाता हू। यहा जिंदे मुर्दों मे बदल रहे हैं और तुझे मुर्दों की पडी है। तुझे मेरे सिवाय सारी दुनिया धर्मात्मा नजर आ रही है।" कलुआ आवेश मे बोला।

"कलुआ तू गरम मत हो। चल दो रुपए और ले ले—बस!" रत्तीराम सहज स्वर मे बोला।

"चल दस रुपये दे दे।" कलुआ ने सौदा कुछ आगे बढाया।

"दस बहुत ज्यादा है। रत्तीराम ने विवशता व्यक्त की।

"दस रुपये से कम मे काम नही चलेगा। पाच रुपये का आटा घर ले जाऊगा, दो रुपये का ठर्रा पीऊगा और तीन रुपये अपने बाप रामसिंह को दूगा। मैंने तुझे सारा हिसाब खोलकर बता दिया।" कलुआ के स्वर मे दृढता थी।

"ले मर। पाँच रुपये का एक और नोट रत्तीराम ने कलुआ की ओर फेंक दिया। कलुआ ने पाँच रुपये का दूसरा नोट उठाकर जेब के हवाले किया और दुकान से बाहर निकल आया। वह कुछ देर असमंजस में पड़ा रहा कि कफ़न आग लेकर घर जाय या ठेके की दुकान पर पहुँचे। वह खड़ा विचार ही कर रहा था कि उसका दोस्त रघुआ आता दिखाई दिया। रघुआ भी कलुआ की तरह ठेके में चलता रहता था। कलुआ ने तुरंत आँख बचाकर निकलने की सोची कि आवाज़ आ पड़ी। कलुआ का रुकना विवशता हो गई।

'छमिया की हालत अब कैसी है रे?' कलुआ ने मन मारकर पूछा। छमिया रघुआ की बेटी थी और काफी दिनों से बीमार चल रही थी।

भैया पीछा छूटा। कफ़न का सामान लेने आया हूँ। देखूँ, रत्तीराम उधार दे देता।' रघुआ का स्वर दर्द से लरज रहा था।

"देगा कैसे नहीं? ऐसे मौके पर जरूर देगा। कलुआ ने रघुआ को आश्वासन देते हुए कहा।

मेरे पास तो कौड़ी भी नहीं है। मुझे तो छमिया बिल्कुल कंगाल कर गई।" रघुआ की आँख भर आई।

छमिया को क्यों दोष देता है। तू कौन-सा करोड़पति था। करोड़पति होता भी तो छमिया को जाना ही था। उसकी बीमारी पर खर्च करने के लिए तेरे पास पैसे थे ही कहाँ? और होते भी तो क्या वह बच जाती। देख, बचना होता है न तो दवा-दारू के नाम पर पानी पीकर भी बच जाता है। मेरी धन्नू को देख ले। मैं चाहता था, वह मर जाय तो ठीक है पर जी गई। दूसरी ओर हरिसुख बामन को देख ले। अपने बेटे को जिलाने के लिए उसने क्या नहीं किया? जो होना है, होता ही है। आ मेरे साथ आ।" कलुआ, रघुआ को दिलासा देकर अपने साथ लेकर रत्तीराम की दुकान पर आ गया। रत्तीराम ने उनकी ओर प्रश्नात्मक मुद्रा में देखा।

"रत्तीराम इसकी छोरी मर गयी।" कलुआ सपाट स्वर में बोला।

'अच्छा!" रत्तीराम ने अपना हार्दिक उल्लास छिपाते हुए कहा।

"इसे कफ़न का सामान चाहिए। पैसे इसके पास हैं नहीं। कलुआ स्थिर स्वर में बोला।

'इसकी औरत के पास बुन्दे तो हैं न। जा उन्हें ले आ। ऐसे वक्त पर मैं अड़ी नहीं करूँगा। एक दिन मुझे भी आखिर जाना है।" रत्तीराम ने सदाशयता दिखाई।

'बुन्दे तो हरिसुख बामन भी ले लेगा। तुझमें और उसमें क्या फर्क हुआ?" शिकायत भरे स्वर में कलुआ बोला।

मैं तुम्हारे चुराए गये कफ़नों को खरीदता हूँ। यह कम फर्क है क्या? तुमने बुंदे

दूसरे को दिए तो मेरी दोस्ती खतम समझना।" रत्तीराम अडिग रहा।

"हम तुझसे कुछ नही लेना। चल, रघुआ चतरे म बात करेंगे। हां, तू अपने दस रुपय ले और मेरा दिया कफन वापस दे। उसके तो पैसे बचेंग।" कलुआ ने जेब से दस रुपये निकाल कर, रत्तीराम के आगे फेंक दिए।

"ऐसा कभी हुआ है। मैं बिकी हुई चीज वापस नही करने का।" रत्तीराम अड गया।

"वापस कैसे नही करगा।' कलुआ तैश मे आ गया। दो चार लोग वहा और एकत्रित हो गये। कहा-सुनी बढ चुकी थी। लाला को जस ही दूर से रामसिंह डडा हिलाता हुआ इसी ओर आता नजर आया कि वे एक-एक कर खिसक लिए। रामसिंह रत्तीराम की दुकान पर रुक गया। कलुआ ने अपनी आपबीती रामसिंह को सुना दी। रामसिंह ने रत्तीराम की ओर देखा और कडक कर बोला।

"तुम चोरी का माल खरीदते हो। थाने बात पहुच गई तो कही के न रहोगे, कानून की सख्ती जानते हो न ?'

"जानता हू, हुजूर।" रत्तीराम मुर्दे स्वर म बोला।

"क्या रे! यही दस रुपय है जो इसने तुझे दिए थे?' रामसिंह, रत्तीराम के निकट पडे दोनो नोटो को उठाते-लहराते हुए बोला।

"हा, हुजूर।" कलुआ ने हामी भरी।

"इसका दिया गया कफन निकालो।' रत्तीराम को आदेश मिला। रत्तीराम न आदेश का पालन किया।

'क्या? यही है रे?" रत्तीराम के हाथ मे पकडे कपडे की ओर इशारा करते हुए रामसिंह ने कलुआ से पूछा।

"जी, हुजूर यही है। आपन भी तो सुबह देखा था।" कलुआ विनीत स्वर मे बोला।

"चोप मैं इन लफडो म नही पडता। अबे साले! शर्म नही आती, कफन के लिए लडते हुए। लोग क्या सोचते होग! छि छि" रामसिंह ने दोनो नोट अपनी जेब म डाल लिए और अहसान भरे शब्दो म बोला।

"पकड अपने माल को। इन छोटे छोटे झगडो से ही तो दगे हो जाते हैं।"

कलुआ ने आगे बढकर कफन अपने हाथो म थाम लिया।

"हुजूर। रत्तीराम गिडगिडाते स्वर मे बोला।

'क्या है?' कटखने कुत्ते की तरह रामसिंह ने मुद्रा बनाई।

'इसकी छोरी मर गई है। यह कफन का सामान लेने आया था। मैं बोला कि अगर इसके पास कुछ गिरवी रखने को है तो ले आये। मैं फौरन सारा सामान दे दूगा।" रत्तीराम ने अपना रोना रोया।

इनके पास कुछ होता तो क्या ये दूसरो का कफन उतारते?' रामसिंह न

अपनी दलील दी।

"है रघुआ की बीवी के पाना म युन्न है।" रत्तीराम प्रत्युत्तर म बोला।

'तुझे इससे क्या ? चोट्टा कहीं का। रामसिंह न रत्तीराम को झाड पिलाई। रत्तीराम का मुह उतर गया। रामसिंह उसकी दुकान म बाहर निकल पडा और उसके पीछे-पीछे कलुआ और रघुआ भी बाहर आ गये। रामसिंह बिना पीछे मुडे बोला। 'साला, बडा बदमाश है। पाजी कहीं का। इसे तो जैसे कभी मरना ही नहीं है। अरे! आदमी की मदद आदमी नहीं करेंगे तो गाय-कुत्ते करेंगे क्या! रघुआ तेरी छोरी के दाग के लिए कुछ-न-कुछ करना होगा। घर म लाश कब तक पडी रहेगी भला? कफन तो मुफ्त म आ ही गया। अब बाकी बात रही अन्य सामान की। चल तेरे घर चलता हू। अपनी बीवी के बुन्दे ले आ। चतरे के पास रखवा देता हू। तुम दोनो को तो वह ठग लेगा, हरामी है न।

रामसिंह उन दोनो के साथ रघुआ के घर पहुचा। रघुआ घर म घुसा और जल्दी ही बाहर आ गया।

"क्या? काम बना?" रामसिंह के स्वर म उत्सुकता थी।

"हा, उसने बिना किसी हुज्जत के दे दिये। छोरी की दवा-दारू के लिए तो दिए नहीं थे। अब पत्थर बनी बैठी है।' रघुआ के स्वर म वेदना थी।

"धीरज रख रघुआ। जो होना होता है, वह होकर रहता है।" रामसिंह के पीछे डग भरता हुआ कलुआ बोला।

चतरे की दुकान म घुसते ही रामसिंह बोला—"चतरे, इसके बुन्दे रखकर जो सामान यह मागे दे दे।

रघुआ ने बुन्दो की जोडी चतरे के हाथ म रख दी। चतरे ने बुन्दे जाचे परखे और फटाफट सारा सामान दे दिया।

'जाओ, देर न करो।' रामसिंह बोला।

कलुआ और रघुआ ने सामान उठाया और तेजी से घर की ओर लौटे। रामसिंह की फैली हुई हथेली म चतरे ने मुस्कराते हुए बीस रुपये का नोट रख दिया। दोनो सन्तुष्ट थे। □

# पेंडुलम

**दीनदयाल शर्मा**

उम्र लगभग पच्चीस वर्ष । आधी बाजू की खादी की कमीज । खाकी रंग की पेंट । पैरों में हवाई चप्पल । वह हमेशा इसी पोशाक में रहता । भीखू नाम था उसका । जैसा नाम वैसे दिन । भीखू रामू काका के ढाबे पर रोज हाजिरी देता और वहां आते ही सबसे पहले उसकी आंखें अखबार में रिक्तियों के विज्ञापन देखने के लिए लालायित हो उठती ।

आज भी वह रामू काका के ढाबे पर एक कोने में रखे मुड्ढे पर बैठा अखबार पढ़ रहा था । वैसे अखबार पढ़ने की न तो उसे कोई आदत थी और न ही कोई शौक । बस, यह समझिये कि काफी अर्से से अखबार उसकी दिनचर्या का एक विशेष अंग बन चुका था । वह अखबार हाथ में लेते ही उसके दूसरे पृष्ठ पर अपनी नजरें बिछा देता । इस दूसरे पृष्ठ से उसे बहुत लगाव था । ढेर सारे विज्ञापन-ही-विज्ञापन और वह विज्ञापन की दुनिया में खो जाता । इतना कि आस पास बैठे आदमी क्या बातें कर रहे हैं, उसे कत्तई ध्यान नहीं रहता । विज्ञापन में पद, योग्यता, आयु देखकर तो वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न होता, लेकिन "अनुभवी को प्राथमिकता' की बात पढ़ता तो एक लम्बी सांस लेकर रह जाता और सरकार की नीतियों को लेकर अंदर-ही-अंदर जलता रहता ।

"भीखू ।" रामू काका ने आवाज दी ।

"क्या काका ?" भीखू अखबार से नजर हटाकर बोला ।

"चा बणाऊं बेटा ?'

"हां काका ।"

और रामू काका चाय बनाने लगे । उन्होंने भीखू के चेहरे को एक पल में ही पढ़ लिया था । आज भीखू कुछ ज्यादा ही उदास लगा था उन्हें । भीखू की आंखों में निराशा और जिज्ञासा का उतार चढ़ाव देखकर रामू काका के चेहरे पर भी उदासी छा गई । उनकी गुनगुनाहट बंद हो गई और दिलोदिमाग में एक अंतर्द्वन्द्व-

सा छिड गया। रामू काका सोचने लगे कि मेरे बस म क्या है। चाय से ज्यादा और हैसियत भी कितनीक है मेरी।

कुछ ही देर म रगीन कपड पहने एक दादा टाइप आदमी ढावे म घुसा। उसने आते ही भीखू के हाथो से अखबार झपट लिया। भीखू देखता ही रह गया। उसे गुस्सा तो बहुत आया, लकिन लडाई करना उसे अच्छा नही लगता था।

'अब जोय पिद्दी के सोरवे, क्या ताक रहा है मेरी तरफ खायेगा क्या ?' इतना कहकर वह आदमी अखबार को उलटने पलटने लगा। भीखू खून का घूट पीकर रह गया। गम लोहे पर चोट करने की बजाय भीखू न शालीनता स कहा, "प्लीज एक मिनट भाई साहब कोई जरूरी न्यूज देखनी थी बस।' ठण्डी जल रूपी शालीनता ने मानो गम लोहे की सारी गर्मी अपने म समेट ली हो। उस आदमी ने अखबार को बेतरतीब ढग से इकट्ठा करके भीखू की ओर फक दिया। भीखू ने अखबार उठाया और फिर विज्ञापन पढने म खो गया।

"बेटे ! क्या रखा है अखबारों म। सब बासी-ही बासी भरे पड़े है।" उस आदमी ने कहा। भीखू ने उस आदमी की बात सुनकर भी अनसुनी कर दी तो वह पुन अखबार की ओर सरसरी दृष्टि डालता हुआ बोला, 'वाह बेटे ! विज्ञापन पढ रहा है तो य है जरूरी न्यूज अरे क्या धरा है विज्ञापनो मे। बैंक वाली खबर पढ, जिस कुछ लोगो ने पिस्तौल की नोक पर लूट लिया था ।" वह आदमी बोले ही जा रहा था और भीखू अखबार क विज्ञापनो म खोया रहा। कुछ ही देर बाद भीखू ने उस आदमी से नम्रतापूर्वक पूछा, चाय पीयेंगे आप ?

इतना पूछने ही उस आदमी के चेहरे पर पश्चाताप की रेखाए उभर कर स्पष्ट हो आइ। वह बठ न सका और उठ कर चल दिया। भीखू के इन तीन शब्दो न उसकी आत्मा को झकझोर डाला था।

'काका, चाय नही बनी क्या ?' भीखू ने आवाज लगाई।

"बस अभी ल्याओ बेटा।

रामू काका ने भीखू के सामन रखे मुड्डे पर चाय का गिलास रख दिया और धीरे स पूछा, "इटर्व्यू दकर आया है बेटे ?

हा काका।'

"नौकरी मिली ?

"नौकरी नौकरी कहा है काका अपन जैसो के नसीब म।'

'भीखू बटा, नौकरी की खातर इत्ती जल्दी हार मत मानै। अर फेर दुनिया म नौकरी ही तो सौ की कोनी। मैं जद तन उदास देखू तो मेरो दिल रो पड़ै। आदमी न हिम्मत स्यू काम लणो चईजे बेटा। मैं रोजीना दखू क कई बार अखबार नी आव पण तू जरूर आव। तू कदे नी चूक। फाम भरणो अर इण्टरव्यू देवण म्हें ही गारो सरीर गाळ दियो। इतणी मिणत करण आळ री भगवान जरूर सुणसी।

"भगवान ! उह   कहा सुनता है काका। क्या भगवान को यह पता नहीं कि मेरे बूढे मा-बाप कितनी आस लगाये बैठे है। कौन  है उनके  बुढाप का सहारा ? क्यो काका   उनके बुढापे का सहारा मैं ही हू ना ?"

"हा बेटा आ बात तो तू ठीक कहै है, पण तू पढ्यो कितो ?"

'क्या पढ गया काका   चार साल पहले एम० ए० किया था   जानत हो ना काका, मैंने सोलह क्लासें पास की है। अपनी  जिंदगी के सोलह वसन्त इसी पढाई पर लगाये हैं मैंने। क्या दिया है मुझे इस पढाई ने ? केवल ठोकरें ही दी हैं काका। बस ठोकरे। मुझे आज कोई चपरासी भी नही लगाता। जहा भी इटरव्यू देता हू, पूछते हैं—किसी की सिफारिश लाये हो ? तो किस का नाम लू मैं ? कौन है मेरा ? काका इस स्वार्थी दुनिया मे आज कोई नही है मेरा।'

"छाती राख   भली करगा भगवान। धीरज स्यू सब काम बण।"

"धीरज रखू, मैंने जितना धीरज रखा है ना, उतना तो शायद ही किसी ने रखा हो। धीरज की भी तो कोई सीमा होती होगी काका   नात रिश्तेदारो म कही भी इज्जत नही होती मेरी। सब मुझे बेकार का आदमी मानने है और मा मा कहती है—"सरकारी खजाने मे सीर होता तो मेरा बेटा जरूर नौकरी लगेगा।" मा कई बार कृष्ण के उपदेश देती है कि—"भीखू बेटा, कम किये जा फल की इच्छा मत कर।' काका, आज इस दुनिया मे कोई ऐसा आदमी है क्या, जो कम करता है, लेकिन फल की इच्छा नही रखता ? मैंने बहुत देखे हैं इस छोटी सी जिंदगी म   ।"

"अरे बेटा, अभी के देख्यो है।"

"नही काका मैंने बहुत कुछ देखा है   आज बिना मतलब के कोई नमस्ते भी नही करता। कितनी स्वार्थी है ये दुनिया   लोग सोचत हैं कि हम बहुत आगे बढ गये हैं, पर मैं कहता हू कि लाग आगे नही बढे है, बल्कि जमीन म धसते धसते बौन होते जा रहे हैं। जिससे काम लना हाता है, उसकी प्रशसा के पुल बाधते है और मतलब पूरा हो जाने पर दूध से मक्खी की भाति निकाल फेंक देते है।"

"आ दुनिया। दुनिया माय सौ की चाल बेटा। भीखू   तू काल कयो नी कै म्हे एक बडी परीक्षा म पास होग्यो।

'हा काका, पास ता हो गया। उसका ही ता इटरव्यू था आज।"

"काइ पूछ्या बेटा इटरू माय ?"

"पूछना क्या है काका   जो मन मे आया वही पूछ लिया बस।"

"फेर भी केरो तो लाग   बता नी।"

'क्या बताऊ काका   कोई बात हो तो बताऊ   पहले पूछा, 'तुम्हारा नाम ?' फिर पूछा—'पिता का नाम ? इसके बाद बोले, जाओ।'

"बस इत्तोई ?"

'हा काका ।"

'सब ने आ ई पूछ्या ?'

'नही ता किसी का पूछा, ताजमहल कहा ह ? तुम्हारी कमीज क बटन कितन है ? भैंस के उपर वाल दात कितन हाते हैं ?"

"कमाल है बडा उटपटाग सवाल पूछ ?

'और क्या अब क्या तैयारी करें एम सवाला की । क्या व्यावहारिक जीवन म काम आती है ऐसी चीजें ?"

'के बताऊ वेटा, आजकल पढाई भौत ऊची होयगी । पली ता इण तर नी हाती । अर, चा ठण्डी होगी भीखू । वाता वाता माय नेरो इ नी लाग्या । चल छोड हू दूसरी चा वणा'र ल्याऊ तू एकर अखबार देख ।' इतना कहकर रामू काका गिलास उठाकर चल दिय और भीखू शून्य म झाकता हुआ अतीत की अथाह गहराइया म खो गया । उसे अच्छी तरह याद आ रहे थ व दिन जब उसने दसवा कक्षा म फस्ट पोजीशन ली थी । कितने सारे पत्रकार उसका इण्टरव्यू लन आये थे । वो भी तो एक इण्टरव्यू था । कितना खुश था वह उस दिन । पत्रकार लोग बैठक म आये हुए थे । मा रसोई म चाय बनान लगी थी और पिताजी मना करने पर भी मिठाई लेन चले गये थे । वह कितना सुखद अनुभव कर रहा था उस दिन क इण्टरव्यू म । उसकी छोटी छोटी बातो को कितनी गहराई स सुना था उन लोगा ने । एक पत्रकार पढाई क बारे म पूछ रहा था ता दूसरा उसकी अन्य रुचियो के सम्बन्ध म और दूसरे दिन अनक अखबारो म जब उसका फोटो सहित इण्टरव्यू छपा था तो ढेर सार प्रशसका के पत्र पाकर कितना खुश था वह ।

अचानक ही पास के रेलवे क्रासिग पर धडाम घर की आवाज के साथ ही भीखू की तद्रा टूटी ।

"अर ये क्या हो गया ?' किसी ने कहा । ढाबे के बाहर खडे लोगा ने विस्मित नेत्रो म रेलव क्रासिग की ओर देखा और उधर दौड पडे । भीखू भी बाहर चला आया । उसन रामू काका की ओर प्रश्न भरी निगाहा स देखा । फिर तज कदमा म वह भी उधर चल पडा । रामू काका न जल्दी जल्दी गल्ले म पडे नोटा को जेब म ठूम लिया और व भी उधर ही चल पड ।

गाडी रुक चुकी थी । सवारिया उतर कर इजिन की तरफ बढने लगी । आम पास क्षत्र के सभी लोग उधर ही दौड रहे थ । इजिन क चारा ओर अच्छी खासी भीड जमा हो चुकी थी ।

सब दख रहे थ कि एक युवक रेल म कटकर टुकडे-टुकडे हा चुका था । सब की आख उधर ही लगी हुई थी । भीखू की आखें भी उधर ही थी लेकिन कान लागा की वाता की तरफ थ ।

'अर क्या हो गया कोई आदमी गाडी क नीच आ गया लगता है । किसी

'अब तो मिनेगी क नौकरी ? आदमी गो उद्देश्य पढ़ाइ कर'र नौकरी करनी ही तो नी है। इत्ती बड़ी दुनिया म्हे काइ और काम नी है ? आज जगहा-जगहा स्कूल कॉलिज खुलर्‌या हे। पढण आळागी भीड लागरी है। आनँ सारा नँ ज नौकरी नी मिली तो क ए सारा आत्महत्या कर ल्यगा ? मरणे आळा आ नी सोच'क बा तो चलोज्य, पण वेर आण रे बाद वाला बूढा मा बापा गै कँ हाल होसी। पली थारी मान आस तो रहन। अब कठै जै। कँगे म्हारे जियगा।' रामू काका बोलन हो जा रहे थे और भीखू गदन झुकाए सुनता रहा। वह डूबी हुई आवाज म बोला, चलो काका। फिर रामू काका और भीखू ढाबे की ओर चल पड़े।

पुलिस मतक नौजवान की लाश के टुकडा को इकट्ठा करके जीप म डालकर ले गई। अब भीड खत्म हो चुकी थी। सवारिया गाडी मे पुन बठ गइ। गाडी चल पडी।

थोडी देर बाद लोग अपने-अपने काम म लग गय। उस समय ऐसा लग रहा था मानो कुछ दर पहले यहा कुछ हुआ ही नही हो।

"भीखू।'

"हा काका।"

"बेटा, नौकरी नी मिलै ता जिंदगी स्यू हार मान अर मरणा नी चहीजे। मिनख रा जनम बार-बार नी आवे। आ तो जिका आच्छो कम करै। बानँ मिल। तू मरी बात ध्यान सू सुणै नी ?'

"हा काका।

'बटा मन छोटा ना कर तू आज मरी कणो मान'र मन माय सकल्प म ल, कै जै नौकरी नी मिली ता एक कायर री तरहा अपनी जिंदगी खतम नीं करैगो।"

"ठीक काका।" एक लम्बी मी साम लेकर भीखू न कहा।

"बेटा, ज्यान है ता जहान है। आदमी न की बणन वास्त भौत कुछ त्याग करना पड।' रामू काका बोल ता रह थ और भीखू गदन झुकाए धीरे धीरे चलता हुआ सब कुछ सुनता जा रहा था।

दूसर दिन सुबह-सुबह ही भीखू अखबारा का बडल लिए रामू काका के ढाबे पर आया और चेहर पर हल्की-सी मुस्कान लाते हुए बोला—"काका, य लो आज का ताजा अखबार। रामू काका विस्मित नजरा म भीखू की तरफ देख रह थ और भीखू साईकिल क पडल मारता हुआ आग बढ गया। □

## चारपाई

### गोपाल प्रसाद मुद्गल

सावन का महीना था। बादल घिरे थे। बरसात हो रही थी।

खुले मे पडी थी एक चारपाई। वह भी मूज के बान से बुनी हुई। उस पर बराबर बरसातें होती रही। चारपाई भीग गई। हवा लगत ही बान अकड गया। थाना ऊपर उठ गया। बान से न रहा गया। तनकर बोला, "मैं सबस ऊपर। चारपाइ म मेर दम मे दम है। मैं न रहू ता सब गुड गोबर हो जाए। सचमुच मेरे ही दम का जमूडा है। और सब घास-फूडा है। मेरे ताने-बान पर ही चारपाई, चारपाई है। मुझसे ही चारपाई की पूछ है। मैं न रहू तो बिछावन किस पर हो? लोग कहा सोए? नीद कहा निकालें। वाह मेरा सानी कोई नही।"

दोना लबी पाटिया न बान की शखी सुनी। वे भनभना उठी। उनस न रहा गया। तुनककर बाली, वाह भाई बान, खूब रही। तुम ता अपने मुह मिया मिट्ठू बन रह हो। तुमको सभालने वाली हम ही तो है। हम नही सभालें ता तुम कहा टिकोग। हवा म झूलत रहोग। अधर म लटकत रहोगे। फिर तुम्हे कौन पूछगा? कौन तुम्हारा नाम लेगा। सारा दारोमदार तो हम पर है। हम पर ही तो चारपाई क हाथ हैं। हाथ न रह तो भला क्या रह जाएगा? दुनिया मे जितने भी खेल है सब भुजाओ के हैं। भुजा न हो तो सब बेकार ह इसलिए हम ही सिरमौर हैं। हमारी बराबरी कौन कर सकता है।"

दोना छोटी पाटिया (सेर) न दोना की बात सुनी। वे बिगड उठी। तमतमा कर बोली, "हमने तुम दोना की बात सुन ली है। तुम दोनो अपनी अपनी हाक रह हो। अपनी-अपनी शेखी बघार रह हो। बडी पाटियो सुनो, तुम दो हो तो हम भी दो है। तुम बडी आकार मे हो। इसस क्या हुआ। इसी पर बडे बोल बोल रही हो। हमम से एक ने सिरहाने को सभाल रखा है। दूसरी न आखिरी छोर। एक छोर मैं थामू एक छोर तुम थामो, हमने ही ता सिखाया है। हम आकार म

छोटी है पर है बड़े काम की। हम न हो तो तुम दोनों को कौन पूछे। कान कहा पर टिके। सच मानो हम छोटी होते हुए भी बड़ी है। हमारा मुकाबला कौन कर सकता है।'

तभी पाए बोल पड़े, "हमने तुम तीनों की बातें सुन ली हैं। तुम तीनों बढ़-बढ़कर क्यों बोल रहे हो ? तुम सबको तो हमने संभाल रखा है। हम चारों सतरी की तरह डटे हैं। बिना हिले-डुले। टस से मस नहीं होते। सबका भार हमारे कंधों पर है। हम उफ् तक नहीं करते। हम न हों तो तुम कहां टिको। सब धूल चाटने लग जाए। सब माटी में मिल जाए। सब गुड़-गोबर हो जाए। हमारी पूछ दुनिया भर में है। हर कुरसी हम पर टिकी है। हर तख्त हम पर टिका है। क्या छोटा क्या बड़ा हर मकान हम पर टिका है। सारा संसार हम पर टिका है। सुना नहीं पाए मजबूत हो तो हर काम मजबूत। हमारी बराबरी कौन कर सकता है। हम दुनिया में सबसे बड़े हैं।"

तभी चारपाई चरमराती हुई बोल पड़ी, "तुम सब अपनी-अपनी हांक रहे हो। अपनी अपनी डफली अपना-अपना राग अलाप रहे हो। तुम्हें पता है तुम्हें यह रूप किसने दिया ? रूप देने वाले को तो मत भूलो। कान तुम ही सुनो। मूंज को जंगल से काटकर नहीं लाते। उसे कूट पीटकर बान नहीं बनाते तो तुम कहां होते। वहीं जंगल में ही पड़े रहते। जंगल में मोर नाचता कौन देखता। बान भी बन जाते तो क्या होता। उस चारपाई बुनने वाले को भी तो याद करो। उसने मेहनत की। पसीना बहाया। तुम्हारे ताने-बाने पूरे किए। फिर कहीं तुम इस रूप में आए उस आदमी का एहसान मानो। बढ़-बढ़कर मत बोलो। ऊपर को मत थूको।

"लम्बी छोटी पाटियो, तुम भी सुन लो। तुम भी लम्बी-लम्बी तान रही हो। याद करो तुम कहां थी। कहां से कहां आ गयी। तुम अपने आप नहीं आयी। न जाने कितने हाथों ने तुम्हें संवारा है। न जाने कितने लोगों ने तुम्हें यह रूप दिया है। सहयोग न मिलता तो तुम निरी काठ होती। तुम्हें कौन पूछता। अब तुम भुजा बन रही हो। तुममें से दो सिरहाना और आधार बन रही हो। तुम्हें अपने ऊपर बड़ा गुमान है। गुमान मत करो। आभार मानो रूप संवारने वालों का।"

'पाए तुम भी सुन लो। तुम तो संसार के आधार बन रहे हो। बड़े गाल बजा रहे हो। जमीन पर रहो। ज्यादा मत इतराओ। तुम भी तो कभी जंगल में पड़े थे। निरे काठ थे। तुमको भी काट-पीटकर बनाया है। खराद पर चढ़ाकर संवारा है। किसी ने साधना की है। नाम तुमको मिला है। मेहनत किसी ने की है। कमाई तुम खा रहे हो। किसी की मेहनत को तुम भोग रहे हो। भाई, तुम्हें

जिसने यह रूप दिया है उसे मत भूलो।"

चारपाइ ने फिर सभी को समझाया। तुम चारो मिले हो तो यह रूप बना है। जब तक चारो मिले रहोगे, यह रूप रहेगा। अगर अलग-अलग हुए तो कोइ कही का नही रहेगा।

सबन सोचा, सबने जाना, सबने माना। हम सब मिलते हैं तो हमारा एक रूप बनता है। 

# धुधलाई पहचान

सलीम खाँ फरीद

बडी कठिनाई स सडक पार कर बिरजू हाफने लगा। चिलचिलाती घाम और सिर पर गठरी का बोझ दोनो उसे पसीना बहाने को काफी थे। वाहनो की चिल्ल-पों और भीड का कोहराम उसे अटपटा और उबाऊ लग रहा था। लोग अपनी ही धुन म चल जा रहे थे निर्लिप्त, निहायत अपने ही म खोये स।

पता भी तो याद नही रहा बिरजू को। इतने बडे शहर म उसके किशन का घर कौन बता सकता था ? किससे पूछे यही दुविधा उस साल रही थी। आखिर हिम्मत करके उसन एक भले से आदमी स पूछ ही लिया—"सुनना भाई साब ! ये किशन कुमार का घर कहा मिलगा ?"

कौन किशन कुमार ? कुछ पता-वता है तुम्हार पास ? मोहल्ला, गली, मकान नम्बर इनक बिना तो मुश्किल है बाबा घर मिलना। वस ये किशन कुमार क्या करत हैं ? आदमी न बिरजू से महयोग करन क अदाज म पूछा।

'भाई साब अच्छी तरह ता मालूम नही। हा ! कुछ दिन पहल उसन लिखा था कि वह कलक्टर बन गया है। म उसका पिता हू।' बिरजू ने तनिक सीना फुलात हुए कहा।

इतनी ही जानकारी पर्याप्त थी उस आदमी के लिये। वह अति शिष्ट हो चला और बोला 'ओ हो, तो आप कलक्टर साहव के पिताजी ह। मैं भी वही पर काटू हू। लाइये ये गठरी मुझे दे दीजिय मैं पहुचा दूगा आपको। और उसन घूम कर आवाज दी—ए रिक्शा वाल।

बिरजू ने आनाकानी की—'नही नही मैं पदल ही चला जाऊगा। तुम तो मुझे रास्ता बता दो बस। तब आदमी ने बिरजू को सारा रास्ता समझा दिया और बिरजू चल पडा उसकी बताई सडक पर।

बिरजू के कई दिना स पत्नी न कुचरणी लगा रखी थी कि किशन स मिन

आओ। क्योंकि किशन का पत्र आये साल भर से ज्यादा समय हो गया था और न ही वह खुद गाव आया। यो किशन कालज मे पढता था तब भी गाव कम ही आता था। बिरजू न फौज की नौकरी छोडी और किशन को उसकी अनिच्छा के बाद भी पढाया। और किशन ऐसा पढा कि पढते पढते ही जाने किसस शादी कर बठा और बिरज अपना-सा मुह लेकर रह गया था। वह तो पत्नी ने हाथ पाव जोडकर उसे मना लिया था कि पढा लिखा है छोरा अपनी पसद म ब्याह किया है तो अच्छा ही है।

जैसा है अपना है। या दुत्कारने स तो वह और भी परे हो जाएगा। वसे बिरजू को उसकी कमाई की कोई परवाह न थी। दोना पति-पत्नी का गुजारा ता उसकी पेशन से ही हो जाता था। जो जमीन थी वह किशन की आगे की पढाई क भेट हो गई। अब गाव म सिफ कच्चा घर भर बचा था।

बिरजू न टालने मे कसर न छोडी थी, लेकिन पत्नी ने रो रोकर आशकाओ मे डाल दिया कि न जाने उसका किशन कैसा है? कोई पत्र भी नही दे रहा। बहू को तो कुछ हो नही गया? आखिर बिरजू को हथियार डालने पडे और पत्नी ने देशी घी म गाद क लडडू शीघ्र ही बना दिय। पोते के लिए कुरते सिल कर बाध दिये। एक तौलिया रख दिया यह कहकर कि किशन को कधे पर तौलिया रखने का बहुत शौक है। चलत चलत उसने कहा था बहू से कहना एक बार तो अपने पुरखो क घर भी आए उनकी आशीष स ही परिवार फूलता फलता है। और कहा था कि किशन से कहना तरी मा तुझे बहुत याद करती है अबकी दीवाली पर यही लक्ष्मी पूजना, आदि आदि बातो को याद करता हुआ बिरजू एक बगले के आगे जाकर ठिठक गया।

बगले पर सतरी पहरा दे रहा था। बिरजू उससे पूछने लगा मगर सतरी को कम सुनता था सो बिरजू को इशारे से उसन पास बुलाया।

बिरजू ने तनिक ऊची आवाज मे कहा—"मुझे किशन के घर जाना है। मैं उसका पिता हू।' सुनते ही सतरी ठठाकर हसा और बिरजू को आपाद मस्तक घूरन लगा तथा अगले बगले की तरफ सकेत कर दिया। बिरजू समझ नहीं पाया उसकी हसी का कारण।

सतरी तो अगले बगले पर भी था मगर उसने बिरजू को कुछ नही कहा। फुलवारी के पास स जाता हुआ बिरजू एक नन्हे से बालक को दखकर रुक गया। पोते की झलक नजर आई उसम। एकाएक उमडे वात्सल्य से विह्वल हो आया और उसने बालक को गोदी म लेकर भीच लिया। कुनमुनाकर बालक, ठिनकने लगा और मचलकर बिरजू की गोदी स नीचे उतर पडा। बालक ने आखें तरेरी और "छि छि गदा भिखारी कहते हुए कुत्ते के पिल्ले को उठाकर भीतर

चला गया। बिरजू भीतर से टूटकर भी अधरो पर फीकी मुस्कान ले आया।

किशन के सचिव ने बिरजू को देखा तो माथे पर त्यौरियां ले आया। वह कुछ पूछना उससे पहले ही बिरजू ने बता दिया—"मैं किशन का पिता हूं। क्या किशन घर पर है?" सचिव चौंका। किशन ने तो कभी नहीं बताया उसकि उसका कोई बाप जीवित है। फिर यह बाप कहा से प्रकट हो गया। उसने सोचा कोई गाव का होगा मिलने वाला गवार जो ठहरा। न ढग के कपडे न बोलने का शऊर।

उसने कोन मे बरामदे की ओर हाथ कर दिया यह कहते हुए—'अभी क्लेक्टर साहब जरूरी बात कह रहे हैं, आप वहा बठिये।"

बिरजू मुडकर बैठने को हुआ तो सहसा बगले का भीतर का मुख्य द्वार खुला और एक मोटी सी महिला के साथ बात करते हुए किशन बाहर निकल आया। पहले से बठे कुछ लोगो ने "सर, हुजूर, हुकुम। जी साहब" कहकर किशन का अभिवादन किया और बिरजू ने गव से मूछें मरोडते हुए सचिव को देखा कि देख मेरे किशन का रुतबा। रोक अब मुझे कैसे रोकेगा? बिरजू सोच रहा था किशन अभी सपत्नीक चरण स्पश करेगा और मैं उसे गले लगा लूगा। ज्यो ही पलटकर किशन ने बिरजू को देखा तो उसकी वेशभूषा और मूछो पर द रहे ताव को देखकर कट-सा गया। लेकिन तत्काल ही सभलकर वह आखो म अपरिचय का भाव ले आया और स्वाभाविक रूप से पूछ उठा—"कहिये, क्या काम है?"

बिरजू का नीचे का सास नीचे और ऊपर का ऊपर रह गया। कुछ उत्तर देते न बन पडा। गला रुध गया। सोचने लगा मेरे सिर पर चढकर मेरे बाल नोचकर खुश होने वाला मेरा किशन चरण छूने के बजाय यह पूछ रहा है कि कहो, क्या क्या काम है?

भर आये गले को खखार कर उसने चपलता से दोनो हाथ जोड दिए और बोला—"कोई काम नही है जी! बस आपके दशन करने चला आया।' और गठरी सिर पर धरकर गेट से बाहर निकल गया। उसे अब गठरी मे बहुत वजन लग रहा था।

क्रोध से दात चबाते हुए बिरजू कभी कभी भावावेश म रोने को हो आता लेकिन रो नही सकता। उल्टे पावो गाव लौट आया। घर पहुचते-पहुचते रात हो गई थी। बिरजू को वापस आया देखकर पत्नी विस्मय मे पड गई और घबराकर बोली—"क्योजी, क्या किशन नही मिला? वो ठीक तो है ना? बहू कसी है?'

गठरी को जोर स धरती पर पटककर बिरजू बरस पडा—"अरे, गली औरत,

अब वो अपना किसना नही है। वो कलेक्टर बन गया है। कलेक्टर किशन कुमार !

मुझे देखकर पोता बोला छि गदा भिखारी ! और तेरे सपूत न, जानती है क्या कहा ? कहा कि कहिये क्या काम है ? अब उसे तेरे तौलिए की कोई जरूरत नहीं। उसके कंधे पर उस मोटी लुगाई का हाथ रहता है। मैंने तुझे मना किया था ना पर तुझे ज्यादा हेत आता है।" और बिरजू फफक फफककर रो पडा। पत्नी एकटक धरती को दखने लगी थी। दूर कही वट वक्ष पर मोरनी आत्तनाद कर उठी, उसके बच्चे खो गए थे। □

# नियति

## श्याम मनोहर व्यास

अधरात्रि का समय था। कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। हवा में मानो बर्फ घोल दी हो। अधरात्रि की उस ठंड में हवा की लहरें छुरी की तरह चुभ रही थीं। ठंड के उस मौसम में हरिराम की देह कपकपा रही थी। वह चौधरी रतनसिंह के कुएं पर पानी के पम्प के पास बैठा चौकसी कर रहा था। वह बंधुआ मजदूर था। बिजली रात में ही मिलने से खेत को पानी भी रात्रि में ही मिलता था।

आज तीन दिन से वह निरन्तर इसी तरह रात रात भर खेत की मेड़ पर टहलते हुए हथेलियां रगड़-रगड़ कर बिता रहा था।

तीन दिन की करारी ठंड उसके अन्दर प्रवेश कर गयी। उसे बुखार ने आ दबोचा।

रातभर वह कराहता रहा। सुबह चौधरी खेत पर आया। उसका रोबीला चेहरा व अलसाई आंखें देखकर हरिराम ने डरते डरते कहा—"चौधरीजी, आज तबीयत ठीक नहीं है। मैं दवा लेने जाता हूं, आज रात्रि के लिए कोई दूसरा आदमी रख लीजिए।"

हरिराम के स्वर में कातरता थी, विवशता थी। चौधरी का पारा चढ़ गया। कस कर उसे एक थप्पड़ लगाते हुए बोला—"साले हरामजादे! काम से जी चुराता है। किसी तरह पानी मिला है तो तू हजार बहाने बना रहा है। तुम मेरे बंधुआ मजदूर हो। मैं कुछ नहीं जानता। तेरा बाप भी मेरा कर्जा नहीं उतार सका। तू क्या उतारेगा? जब तक तू जिन्दा है मैं दूसरा आदमी नहीं रखूंगा। चल उठ, जा फौरन खेत पर।

लाचार, विवश हरिराम फिर काम पर आ जुटा। यही उसकी *नियति* था। पुरखों से विरासत में इसे यही मिला था। बुखार तेज हो गया था। सिर दर्द से मारे फटा जा रहा था। उधर ट्यूब वेल चालू था। वह क्यारियों में पानी भर रहा था। एक हाथ से सिर को दबाता वह विचार सागर में गोते लगाने लगा। वह

अतीत म खो गया।

न जान किसने चौधरी के पुरखा से कर्जा लिया था। जो द्रौपदी के चीर की तरह बढता ही गया, बढता ही गया। उसके शराबी बाप ने उसम बढोतरी ही की। मा तो पति के दु ख से दु खी होकर पहले ही स्वग सिधार गई जब वह मात्र आठ वप का था। वह चौथी क्लास से अधिक पढ नही पाया। एक दिन चौधरी ने उसके पिता को बुलाकर साफ-साफ कहा—"चुनी लाल, तुम तो अब बूढे हो चले हो, क्या पता कब चल बसो ? तुम ऐसा करो कि अपनी जगह अब अपने बेट को रख दो। कल से तुम्हारी जगह पर हरीराम मेरे यहा बधक है।"

मरा पिता कुछ बोला नही उसने स्वीकृति मे केवल सिर हिला दिया। दूसरे दिन से मै पिता के स्थान पर चौधरी के घर काम जाने लगा। चौधरी का गाव मे बडा दबदबा था। कहने को तो कहा जाता है कि अग्रेजा का राज गया, राजा-महाराजा समाप्त हो गय ! रजवाडे खत्म हो गये पर लोकतन्त्र की आड मे नया राजतन्त्र आ गया। चौधरी गाव का सरपच बना, सत्तारुढ दल का सक्रिय कायकर्ता। हर दुगुण उसमे मौजूद था। भल घर की बहू बेटिया कभी उसक घर अकेले मे जान का साहस नही करती। समय बीतता गया।

मैं बालक स किशोर बना, किशोर से नौजवान। बिरादरी वालो की राय लेकर मेरे पिता न मेरी सगाई पास गाव के एक किसान की बेटी स कर दी। धूम-धाम से मेरा विवाह हो गया। पत्नी चम्पा वास्तव मे चम्पा ही थी। खूबसूरत एव घर गृहस्थी के काम मे पारगत। मेरी पत्नी भी कभी-कभी चौधरी के घर किसी काम से चली जाती।

चौधरी ने एक दिन मेरी पत्नी चम्पा को किसी काम के बहाने कमरे के अदर बुलाया और उसके साथ छीना झपटी शुरू करदी। उसके चिल्लाने पर जब उस छोडा था, तब वह हाफती हुई आकर मेरे ऊपर गिरकर रोने लगी थी। सारी बात सुनकर मेरा खून खौल उठा था। घर आकर मैंने चौधरी की हरकत का जब पिता से जिक्र किया और चौधरी को सबक सिखाना चाहा तो पिता ने मुझे रोकत हुए कहा—"क्या करते हो ? जल मे रहकर कही मगर से बर किया जाता है ? उससे दुश्मनी मोल लेकर तुम कहा रहोग ? यह कच्चा घर भी उसी का दिया है। चम्पा के साथ जो बात हुई वह नई नही है। ऐसा होता आया है। हम बधक मजदूरा का अपना कुछ नही है। हम तो चौधरी की सम्पत्ति है। भला इसी म है कि जो कुछ ऊपर गुजरे, उस चुपचाप सह ल। शोर करने पर हमारी ही बिरादरी के लोग हम पर हसेंग।

पिता की बात सुनकर मुझे लगा कि मैं हरीराम नही बल्कि चौधरी के कुत्ते से भी नीचे दर्जे का प्राणी हू। स्वाभिमान का स्थान कायरता ने ले लिया। मरी आत्म-सम्मान की भावना नष्ट हो गई। पिता की बात चम्पा भीतर बैठी सुन रही

थी। उसने धीरे से मुझे अन्दर बुलाया। मैंने देखा, उसकी आखो मे अब आसू के स्थान पर अगारे निकल रहे थे। उसने—"अब मैं यहा नही रहूगी।"

"तब कहा जाओगी?" मैंने पूछा।

वह बोली—'यहा बेइज्जती से रहना अब ठीक नही है। मेरी माता तो गाव छोडकर भाग चली।

"कहा?' मैंने फिर पूछा।

"इतनी बडी दुनिया मे कही भी रह लेंगे। मेहनत मजदूरी कर पेट भर लेंगे। जो रोटी मिलेगी वह इज्जत की होगी, लज्जा के मूल्य की नही। मैं कुछ बोल न सका और सोचने लगा कि क्या करू। अगर इसके साथ भाग जाता हू, तो पिता को कौन देखेगा? बूढे पिता को अकेला छोडने पर बिरादरी वाले मुंह पर थू-थू करेंगे। कहेगे कि कैसा बेटा है जो अपनी सुख-सुविधा के लिए बूढे बाप को निराश्रित छोड गया।

मैं इसी ऊहापोह मे था कि चम्पा फिर बोली—"डर गये? हिम्मत नही पड रही है न? तुम आदमी कहलाने के योग्य नहीं हो। पीढियो से तुममे वही कायर खून है लेकिन मे तुम्हारी जैसी नही और यहा अब मैं एक पल भी नही रहूगी। इस तरह इज्जत गवा कर रहने से तो चुल्लू भर पानी मे डूब मरना अच्छा। या तो तुम मुझे मेरे पिताजी के घर पहुचा दो, या जाकर उन्हें बुला लाओ।"

मैं अपनी पराजय स्वीकार करते हुए बोला—"हा चम्पा तुम ठीक कहती हो। सचमुच हम लोग आदमी नहीं रह गये हैं। हमारी रगो मे गुलामी का खून इस तरह घुल गया है कि अब हम आजादी का ख्याल ही नही कर पाते। लेकिन अपने जीते जी तुम्हारे साथ ऐसा नही होने दूगा। जानता हू कि यह मेरी कायरता है, लेकिन इसके सिवा कोई दूसरा चारा भी तो नही है।

मैंने दूसरे दिन उसके पिता को बुलाकर सारी बात बता दी। वे अपनी बेटी को लिवा ले गये। जाते समय चम्पा की आखो मे आसू थे। मैंने रुधे कठ कहा—"रो मत चम्पा।'

"मैं तुम्हारा रास्ता देखती रहूगी। तुम जल्दी ही इस नरक से छुटकारा पाने की कोशिश करना। जाते-जाते वह बोली।

एक वर्ष पश्चात् मुझे पता चला कि चम्पा की सगाई किसी और के साथ कर दी गई। मैं दुख का घूट पीकर रह गया। मेरे पिता ने पचायत बिठाने का फैसला किया। पति के जीवित रहते औरत की दूसरी सगाई कैसे सम्भव है? पर मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया—"मैं इस मामले मे आपको कुछ भी सहयोग नही दूगा। आप स्वय ही विचार करें कि एक नपुसक के साथ कोई स्त्री कैसे रह सकती है?"

मेरी इस बात का पिताजी या पचो ने कोई जवाब नही दिया। कुछ दिनो म चम्पा का दूसरा विवाह हो गया। वह अपने पति के साथ किसी नगर मे चली गई। पिता भी चल बसे। मरते समय उन्होने कहा था—"बेटा, मुझे अपनी विरासत म जो चीज मिली थी वही मैं तुम्ह द रहा हू—बधक मजदूरी। तभी से मैं घाणी के बैल की तरह उसी चक्कर मे घूम रहा हू।"

और तभी चौधरी की ककश आवाज ने उसका ध्यान भग कर दिया—"देखते रहना हरिया, कोई क्यारी छूट न पावे।" □

# अकाल के बाद

## रामकुमार ओझा

वर्षों बाद झमाझम मेह बरसा। अलसायी धरती सरसाई। खेत बुलाने लगे। पर कृषक, हलवाहे सूखा मार से बैठ रहे। किसी के पास बीज नहीं, तो किसी का हल दीमक चाट चुकी। बैल मर गया। धरती गिरवी में चली गयी। त्रिकाल बड़ा विकराल और भूखा था। तृण-घास चाट गया ढोर डगर डकार गया। पनघट सूखे। पनिहारिन कजला गयी। लाज बचाने को तन पर काचली-कुरती तक न रह पायी।

मरा को फिर मारा। पहली पुरवा के साथ मेह आया। पर अगले दिन पिछवाई चली, ओले गिरे। रेवड़ के रेवड़ मरे। भेड़-बकरिया मिमिया भी न पायी कि पाव पाव भर ओलो की मार से मर गयी।

हाल में आदमी को हजार मौतें आने लगी हैं। पहले प्रकृति ने मारा। मेह के साथ नई आशा बरसी तो साहूकार मारने लगा। बड़ा हंगामा हुआ। प्रचार की सुर-ताल गांव-ढाणियों तक पहुंची। बैंक लोन देगी, राज तकावी बांटेगा।

गांवों में अभी साहूकारा चलता है। साहूकारे का दस्तूर बड़ा सीधा है। कोरे कागज पर अंगूठा लगाओ और रोकड़ी (नकद) गिनकर ले जाओ। हारे-मारे किसान साहूकार के द्वारे इकट्ठा होने लगे। नरसा के गांव में भी एक साहूकार है, जैसा कि हर गांव में होता है। वह साहूकार इसलिए है कि सत्तरह गांव सत्ताइस ढाणियों में उसके साहूकारे की साख है। साख इसलिए है कि इलाके का नेता उसके साथ है। गांव के तीन तिलंगे उसके ताबेदार हैं।

साहूकार धरती पर धर्मावतार है। धर्मावतार इसलिए है कि उसने जयपुर के शिल्प बाजार से एक भोला-सा भगवान मंगवाया है, उसकी खातिरदारी और रखवाली के लिए धर्मा पण्डित को तैनात किया है। धर्मा आरती भगवान की उतारता है, गुणगान साहूकार का करता है। लोगों की सुरता जगाता है। साहूकार की बही में गणेशजी का वासा, जो लिखा सरब साचा। उस पर जो शक कर

उसका लेखा जमराज भरे। जमराज किन किन पापी पिराणी (प्राणी) का लेखा भरे। पिराणी आपकी करणी आप नरक म पडे।

पर साहूकार के लेखे सुरग की सडक साफ। वह मरी माटी को कफन दे। गंगा-तारन को नकदी दे। प्राणी को लख चौरासी की भुगती से छुटकारा मिले उत्तराधिकारी की जात बिरादरी मे नाक बनी रहे, इसलिए मौसर काज के लिए कर्जा दे। जब पिराणी मुक्ति पा जाये तो साहूकार अपना खाता खोले। जो भी बाकी वारिश हो वह हाथ बांधे हुंकार भरे, कज सिकारे और इस प्रकार मृतक की जोत साहूकारे की वास्त म चली जाये।

साहूकार धमदास है, वैसे बाप का दिया नाम धनदास है। बडा सरल स्वभाव है। हुक्का पीता है, ही-ही कर हसता है। तीन तिलगे उसके हाजरिये हैं। वैद्यजी को उसकी सहत की चिन्ता है। दुकाल-त्रिकाल मे चर्बी कुछ ज्यादा ही चढती है। जब आदमी भूखा मरने लगत हैं तो साहूकार के घर मे चूहा की ज्योनार चलती है। पटवारी नौकर राज का है। पर वफादार साहूकार का है। किस किसान के नाम कितनी जोत बच रही है, इसका तखमीना साहूकार के लिए करता है। गिरवी और सूद का लेखा साहू आप याद रखता है। खाता तो उसका नही, गनेश जी का है।

धर्मा पण्डित काटे पर बीज तोल-तोलकर दिये जा रहा है। वह जितना खुद एंचाताना है, तराजू मे उतनी ही कान है। पसेरी पीछे एक सेर मदिर का लागा है। आधा किलो यगूय (यज्ञ) भगवान के लिए दान है।

मह कोई यू ही सेंत मत म नही बरसा। धर्मा ने यज्ञ किया। धनदास ने आहुति दी तो इन्द्र भगवान को पसेव छूटा, टपटपकर मह बरसा। तब गाव वालो के पास क्या था ? और अब भी तो कुछ नही। धरती आज गीली है। दस दिन न बरसे तो पपडी पपडी सूख जाये, कोख म पडा बीज खाकर मुह बाध ले। साहूकार को तो जूॅ का नशा है सो खेल रहा है। भाग भरोसे खेती है। दो खेप बादल बिन बरसे उड जाये तो दुष्काल पड जाय।

पर अभी तो आकाश तीतर-पखी बादलियो से भरा है। लोग अगूठा लगा रहे हैं। बीज उठा रहे है। नकदी पा रह है। नरसा की बारी आयी तो हुक्के की निगाली बडी देर तक न बोली। नरसा साहूकार की नजर मे हरामी है। उसका बाप जिंदगी मे केवल एक ही बार मरा और उसन भी अपनी पैदाइश के बाद बस एक ही बार कज लिया, वह भी बिरादरी के दबाव पर मरे बाप का किरिया-करम करने के लिए और सुपूत ने पहली फसल पर ही सूद समेत कज चुका दिया। विवाह भी अपनी धरती के बलबूते पर ही कर लिया।

उसकी जोत मदिर के पास है। भगवान की ध्वजा की छाव उसके खेत पर पडती है तो धरती सोना उगलती है। पर वह है कि मदिर की परिक्रमा टेढी

रहने दी, पर अपनी धरती का दस गज टुकड़ा न दिया। उसके आगन म शाख पात भरा जवान नीम खड़ा लहरा है और भगवान का सिंहासन बनाने के लिए एक डाल तक न दी। एक न बाप म सत्तर बासी धरती पर अकाल पड गया।

आज द्वार पर आया है तो सुरता जागेगी या भोगया। सूदखोर हसकर हलार करता है। साहू भी ठी-ही कर हसा। निगाली ने अतिरिक्त सम्मान दर्शाते पूछा—'कहो भाई नरसाराम, तुम कसे आय ? शायद किसी गरीब गुरब की सिफारिश करनी है ? बोलो किसकी जमानत देना चाहते हो ?'

उसकी अपनी धरती परती पडी थी, बैल मर चुका था। पर जानता नहीं था कि गज लने आया आदमी कैसे बाते, क्या कहे ? अत हाथ मूछा पर ही अटके रहे। बाप मरा तब उसन एक बार मूछ मुडवायी थी, पर फिर से इतनी गहरा गयी कि हर समय ताव देते रहने पर ही ताबे रहती है। पर साहूकार की मुळक (मुस्कान) म ऐसी खारिश भरी थी कि हाथ लटक गय और मूछें ढरक गयीं।

रेशमा ने समझाकर भेजा था गज का मारा किसी के दरवाजे पर जाये तो मछें नीची करके जाना चाहिये, घरवाली की सीख एन वक्त पर साथ दे गयी। हवलात हवलात जरूरत आप अपने मुह बोल पटी। साहू ने सुना तो तन गया।

"ना भई ना। राम दुहाई। नगे को दिया कज नहीं डूबता पर दबग आदमी को तो देकर भूल जाना पडता है।

सच्चा हुजूरिया वह जो वक्त पर बात सम्भाल, वधजी न गेंद हवा म लपक ली—'नहा नरसाराम ऐसा आदमी नहीं, मूछवाला है, आज धर्मावतार के द्वार आया है तो धम भी जागा होगा।"

वधजी धरम तो राम आसरे। मन्दर ढहा रह गया ठाकुरजी पर चढाने के लिए पत्र पुष्प भी नहीं मिलते, धरती हो तो बागीची बने। ठाकुरजी पत्थर की पाटी पर सन करत हैं सतवन्ती नार के हाथा सिचाई खाय नीम का काठ मिले तो ठाकुरजी मोढे।' 'ए लो इत्ती-सी बात हमारी रशमो बहू से सतवती और कौन ? इस तरह गाव की मस्तारस डाणिया उसक सत की साख भरे। आप बस खरीदी के कागज तयार कीजिय।" वधजी जैसे जमानतदारी का जिम्मा लत बोल। नरसा को बोलने का मौका ही न मिला। बात तय हो गयी। मिडिल स्कूल का मास्टर बोला।

"नरसा अपनी जोत का एक टुकडा हरी-अपणा करेगा। धरमादे खाते से कीमत ल या न ल। पर ठाकुरजी की सेवकाइ का मोल ले नरसा ऐसा आदमी नहीं, नीम कटगा, ठाकुरजी का सिंहासन बनगा। साख भरी गयी। कागज पत्तर तैयार हुए। पटवारी न कागज पर पैमाइश की, नक्शा बनाया। फन्द तैयार की और ठाकुरजी के हिस्से का टुकडा काट दिया। नरसा काठ मारा-सा टुकुर-टुकुर देखता रहा तिलको ने "सही" कर दिया। कल भोर होत ही नीम कट जाय और

नरसा रकम ले जाये।

घर लौट आने तक रात हो गयी। सौदे की बात सुनी तो रेशमो अहिल्या के समान पथरा गयी। उस रात घर में चूल्हा न जला। नीम तले माची डाल पड़ा नरसा गम तवे पर भुनता रहा। रेशमो की छाती जलती रही। नीम उसका देवर और नरसा का भाई था। नरसा के बाप ने अपनी जिन्दगी में दो पुरुषार्थ के काम किये थे। एक नरसा को पैदा कर और दूसरा उसकी पैदाइश के बाद तुरन्त नीम का बिरवा रोपकर! इस प्रकार सन्तान पैदाकर और हरा वृक्ष लगाकर उसने अपनी समझ से इहलोक और परलोक दोनों बना लिए थे।

नीम और नरसा साथ साथ बढ़े। तरुण हुए। दोनों पर जवानी चढ़ी। नरसा ने कभी दातोन के लिए भी नीम की डाली न तोड़ी, घाव धोने के लिए पत्ती न नोची। नीम पर हाथ डालते उसके अपने बदन में पीर होने लगती। उसी नीम भाई पर भोर होने से पहले कुल्हाड़े चलेंगे, जिसके संरक्षण में रेशमा को छोड़कर वह अकाल के समय नहरियल प्रदेश में दिहाड़ी करने गया था और लौट आने पर रेशमो को उसी की छांव तले बैठे पाया था।

चौदस की चांदनी रात। बड़े वेग से पछवाही चल रही थी। नीम को जैसे आगत का आभास मिल चुका है, वह स्वरक्षा में सन्नद्ध होकर सनसना रहा था। उसकी हर शाख, हर पत्ती फुंकार रही थी। उस पर रैन-बसेरा करते पाखी असमंजस में थे, दूसरा बसेरा तलाश करें कि यहीं बने रहें। नरसा उस रिसाये नीम भाई के तेवर देख रहा था, पर उसे कोई न आ रहा था। सनसनाते नीम के आवेग भरे स्वर ने उसे उठ बैठने पर मजबूर कर दिया। रेशमो तो औंधी भी न हो पायी थी। दोनों ने तीन पहर आंखों में ही काटे थे।

रात के चौथे पहर कुत्ते भौंकने लगे। कुत्ते खोटे आदमियों पर भौंकते हैं। जरूर वे आ रहे हैं। सांकल से बंधे मोती के कान सीधे खड़े थे, वह जबड़ों में ही गुर्रा रहा था। जंजीर तुड़ाने को उतावला हो रहा था।

नरसा नीम की परिक्रमा देने लगा। जैसे कोई अपने मृतबन्धु के गिर्द देता है। रेशमो ने बीच में रोका, पूछा—

'क्या तुम्हारे हीये में हूक नहीं उठ रही? भाई हलाक होने जा रहा है।"

"हीया तो आदमी का होता है। बार-बार के अकाल ने हमें तो जानवर बना दिया है।"

"तो जानवर खरीदने के लिए कर्ज लेने की क्या जरूरत?' रेशमो ने पलट कर पूछा।

'पर और उपाय भी तो नहीं।'

"है, जब हम जानवर बन ही चुके तो जानवर के समान जीना सीखें या फिर एक साल जानवर के अन्दाज में काम कर नये सिरे से आदमी बनकर जीने का

आयोजन करें।'

नरसा कुछ न समझा। पर रेशमो उसकी पुतलिया म तैरत प्रश्न का अथ समझकर फिर बोली—'हम बारी-बारी स हल खींचत, बीज टानत खत की जुताई कर ता अगल साल फिर आदमी बन जायेंग।'

नरसा न रेशमो को भर नजर घूरा। औरत की लगदाद है। सुख म भामिनी बनकर और दुःख मे सहयोगिनी बनकर साथ देती है।

कुछ लोगो के परो की धमक साफ सुनाई दन लगी थी। आकृतिया स्पष्ट होने लगी थी। उनके सान चढे कुल्हाडा क फाल कन्धो पर झूल रहे थ। चान्दनी म चमक रह थे।

रेशमो मुळकी। उसन लपक कर मोती की जजीर खोल दी। साकन खुली हो जानवर जल्लादो पर भों भों कर झपटा। उनक कुल्हाडे सधान पर रेशमो की ललकार पर उनके फाल झुक गये। इधर स मोती न खदेडा, उधर से गली भर के कुत्त गाल बाधकर भौंकत, झपटत आ पहुचे। पेड-नगारे बीच म फसकर रह गये।

□

# नयी सुबह

**कमर मेवाड़ी**

रात के नौ बजे हैं। अंधेरा कितना गहरा गया है। ऐसा लगता है जैसे बहुत रात हो गई। दरअस्ल सर्दी की रातें होती ही ऐसी हैं। सूर्यास्त हुआ नहीं कि अंधेरा अपनी चादर फैलाने लगता है।

और इस कस्बे का तो यह हाल है कि आठ बजते-बजते बाजार बंद। व्यावसायिक कस्बे की यही तो समस्या है। यार दोस्त भी जल्दी-से जल्दी घर पहुंच कर अपने अपने गर्म बिस्तरों में दुबक जाना चाहते हैं। अब मेरे जैसे अकेले और बाहरी लोग जायें-तो-जायें कहां।

वैसे मैं अपने घर की ओर रवाना हो गया हूं। पर सोचता हूं इतना जल्द घर पहुंचकर भी करूंगा क्या? आज सर्दी बहुत तेज है। लगता है मौसम की सबसे तेज सर्दी आज ही पड़ने वाली है। संभव है बर्फ भी गिरे। पुराने लोग अक्सर चर्चा करते हैं। एक बार इतनी भयंकर बर्फ गिरी कि पूरे कस्बे में बर्फ-ही-बर्फ हो गई। लोग मकानों में कैद होकर रह गये। तीन दिन बाद रास्तों से बर्फ हटाई गई। तब जाकर कहीं आवागमन शुरू हुआ।

सर्दी से बचने के लिए मैंने मफलर को गले और सिर से कसकर बांध लिया है और हाथों को कोट की दोनों जेबों में डाल दिया है। देखता हूं अब सर्दी मुझ तक किस रास्ते से पहुंचती है।

धीरे धीरे टहलता मैं गोल मार्केट तक आ पहुंचा हूं। पूरे मार्केट में सन्नाटा पसरा पड़ा है। कहीं कोई हलचल नहीं। आज कुत्ते भी गायब हैं। वर्ना इतनी रात गये कुत्तों को सलामी दिये बिना मार्केट से गुजरना कोई आसान काम नहीं।

यहां से मेरा घर एक फर्लांग दूर है।

गोल मार्केट पहुंचने पर लगता है जैसे घर पहुंच गये। उसी तरह जिस तरह दिल्ली या जयपुर से लौटते हुए बस जैसे ही गोमती चौराहे पर पहुंचती है तो लगता है—घर आ गये।

गोल मार्केट इस कस्बे की शान है। कहते हैं जिसने इस गोल मार्केट का निर्माण कराया उसने देश के एक प्रसिद्ध डिजाइनर से इसका नक्शा बनवाया था।

जैसे ही मैं गोल मार्केट को पार कर अपने घर जाने वाली सड़क पर पहुंचा कि पीछे से एक आवाज आई—' सुनिये साहब। ' मैं आवाज को अनसुना कर अपनी मस्ती में चलता रहा कि इस वक्त मुझे पुकारने वाला यहां कौन हो सकता है लेकिन वही आवाज मुझे काफी निकट से फिर सुनाई दी।

मैंने मुड़कर देखा तो सामने एक अपरिचित-सा आदमी नमस्ते की मुद्रा में खड़ा था। मैंने उसे ऊपर से नीचे तक देखा। कपड़ों से लगा शायद कोई ड्राइवर है। मैंने उससे कहा— कहिये पहचाना नहीं आपको। '

उसने एक जोरदार कहकहा लगाया फिर बोला।

''आप कैसे पहचानेंगे साहब। यह साला वक्त ही मारू है। कोई किसी को नहीं पहचानता। हर एक को अपनी पहचान बनानी पड़ती है। लगता है आप यहां नये हैं ? वरना साला पीटर को इधर कौन नहीं जानता ?

तुमने ठीक कहा पीटर। वाकई मैं यहां नया हूं ' मैंने कहा तब तो मजा आ गया साहब, खूब जमेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो। चलिये, चलिए साहब होटल में चलकर बैठते हैं उसने बड़े उत्साह से कहा।

पीटर पहले मुझे बावला या दीवाना लगा था। पर उसकी बेलौस बात ने मुझे खरीद लिया। मुझे घर पहुंचने की जल्दी नहीं थी। फिर पीटर के व्यक्तित्व ने मुझे काफी प्रभावित किया था। इसलिए मैं उसके साथ चल दिया। मैंने सोचा जाड़े की यह दांत किटकिटा देने वाली रात शायद पीटर के साथ गप शप में बीत जाये।

होटल के नाम पर पीटर मुझे जहां लेकर गया वह एक ढाबा था, जो कस्बे से कुछ दूरी पर बना था। ढाबे के बाहर कई खाट पड़ी थी। और उन खाटों पर ट्रक ड्राइवर और खलासी बैठे खाना खा रहे थे या फिर गपबाजी कर रहे थे।

एक खाली खाट देखकर हम उस पर बैठ गये। यह खाट भट्टी के नजदीक थी इसलिए शरीर को एक हद तक सर्दी से निजात मिल गयी थी।

मैं मन-ही मन पीटर को धन्यवाद दे रहा था।

पीटर मेरे काफी मना करने के बावजूद भी नहीं माना और उसने मेरे लिए भी खाना मंगवा लिया।

खाना खा चुकने के बाद पीटर ने मेरी ओर देखा और हंसा।

उसके दांत सफेद मोतियों की मानिन्द दमक रहे थे और उसकी आंखों में एक विशेष प्रकार की चमक थी।

ऐसी चमक मैंने किसी की आंखों में बरसों बाद देखी थी।

अब पीटर काफी खुश दिख रहा था। और मुंह से कोई अंग्रेजी धुन बजा रहा था। उसने जेब से एक सिगरेट निकाली और उसे ज[illegible] के [illegible] खींचने लगा।

मैंने कहा—"पीटर, आज सर्दी बहुत तेज है। [illegible] चलो जायें या सोने का इरादा नही ?"

वह बोला—"साहब आज नीद नही आयेगी। आज मैं बहुत खुश हू। मेरी खुशी मे आपने साथ दिया, आपका बहुत-बहुत शुक्रिया। आज तो मेरे लिए जश्न की रात है।"

"जश्न की रात ! वह कैसे ?" मैंने जानना चाहा।

उसने मेरी आखो मे झाका। जैसे कुछ पढ रहा हो। वह मुस्कराया और कहने लगा।

"मैं धीगडा साहब के यहा ड्राइवर था। सप्ताह भर पहले वहा से मुझे नौकरी से निकाल दिया। धीगडा साहब बडे अच्छे आदमी थे। उन्होने मुझे कभी अलिफ से बे नही कहा। पर उनकी औलाद साली बडी फटीचर निकली साहब ! अच्छा हुआ समय रहते बेचारे चले गये वरना ये उनके मुह पर किसी दिन जरूर झाड़ू मार देते।"

"लेकिन पीटर तुम्हे निकाला क्यो ?" मैंने पूछा।

"क्या बताऊ साहब, बहुत गडबड झाला करते थे उनके लडके। शराब, गाजा, चरस और न जाने क्या क्या। मैंने उन्हे समझाने की कोशिश की तो उन्होने मुझे निकाल बाहर किया। मैं दस साल से उनकी गाडी चला रहा हू और एक भी छोटे से छोटा एक्सीडेंट नही किया। लेकिन अब मैं चाहता हू, ईश्वर करे उनकी गाडी का एक्सीडेंट हो जाय और सब मर जाये। कम से कम धीगडा साहब की आत्मा को तो शाति मिलेगी। उनके नाम पर कलक नही लगेगा और लोगो को भी नशे से मुक्ति मिलेगी।" उसने कहा और एक गहरी निश्वास छोडी।

"धीगडा साहब अच्छा रखते थे तुम्हे पीटर ?" मैंने उससे पूछा।

"अच्छा ही नही, बहुत अच्छा रखते थे धीगडा साहब मुझे। कहते थे—अरे पीटर, तेरे आने से अपना बिजनेस जम गया। बहुत खुश रहते थे मुझसे। शादी त्योहार पर इनाम इकराम भी देते थे। उन्होने खुश होकर मेरी पगार तीन सौ रुपये कर दी थी। वक्त सस्ता जमाना था साहब। खूब मस्ती से रहता था। लेकिन अब दस रुपये रोज मे गुजारा नही होता। आप तो जानते ही है मस्टररोल काम करने वाले मजदूर को भी सरकार चौदह रुपये रोज देती है। अच्छा हुआ उन नालायको ने मुझे निकाल दिया वरना मैं खुद छोड देता एक दिन।"

पता ही नही चला पीटर की गपशप मे और काफी रात गुजर गयी। सर्दी तेज हो गयी। खाटें खाली हो गयी। कई ट्रक रवाना हो चुके थे और कुछ रवाना होने की तैयारी मे थे। हम खाट से उतरकर भट्टी के पास आकर बैठ गये और

शरीर सकने लगे।

कुछ देर माहौल में चुप्पी छाई रही। फिर मैंने जिज्ञासा व्यक्त की—"लेकिन पीटर, अब क्या करोगे तुम?"

"ड्राइवरी करूंगा साहब, ड्राइवरी! आपको यह सुनकर खुशी होगी कि मुझे आज ही अडूक्या साहब ने अपनी नई गाड़ी पर ड्राइवर रख लिया है। पगार भी पूरे पांच सौ रुपये महीना। एडवांस भी दिया दो सौ रुपया। साथ ही कहा, पीटर खुश हो ना। अगर कम हो तो मुझे बोल देना। राजा आदमी हैं अडूक्या साहब, ईश्वर उनका भला करे।"

पीटर की बात सुनकर मुझे बेहद खुशी हुई और सुकून मिला कि वह बेकार नहीं है जैसा कि मैं कुछ देर पहले उसके बारे में सोच रहा था।

पीटर जैसे नेक इन्सान के लिए मेरे अन्दर एक विशेष आत्मीयता पैदा हुई। मैंने मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना की कि पीटर हमेशा खुश रहे। मैंने पीटर की ओर देखा तथा मुस्कराया।

पीटर के चेहरे पर एक लम्बी मुस्कान थी। उसकी आंखों में खुशी के आंसू डबडबा रहे थे। दूर पूरब दिशा में आकाश लाल हो गया था। एक खूबसूरत नयी सुबह धरती पर उतरने की तैयारी कर रही थी। □

# जिम्मेदारी का बोध

**श्यामसुन्दर तिवाड़ी**

रोहित सुबह-सुबह ही जेब मे कचे लेकर खेलने निकल गया। मनीष, मनोज, पकज और अरुण सभी उसकी प्रतीक्षा म खडे थ। खेल जमा तो एसा जमा कि व सभी उसी मे खो गये। स्कूल जाने का समय भी होने को आया पर किसी को कोई चिन्ता ही नही।

"बेटा रोहित, क्या खेलत ही रहोगे। चलो स्कूल का समय हो गया', मा की झुझल भरी आवाज आई।

रोहित न वही स उत्तर दिया—"आया मा', कहकर कचे समेटने लगा।

तभी शानू ने उसका हाथ पकड लिया, "जाता कहा है? यू जीतकर थोडे ही जाने दूगा, यह बाजी तो पूरी करनी पडेगी, हा।"

रोहित न हाथ झटककर कहा, "जा-जा तर जैसे बहुत देख है। देखता हू कौन रोकने वाला है मुझे?" और रोहित तो यह जा, वह जा।

कचो से पट भर गया लाट साहब का। घडी देख साढे नौ बजे हैं। जल्दी से हाथ मुह धो ले, खाना तयार है।

घडी देखत ही उसकी भूख ही गायब हो गई। नही मा, मैं खाना नही खाऊगा, आज बहुत देर हो गई है। दा चार किताबे ली हाथ मे, और वह तो स्कूल की ओर भागा।

रोहित के पापा बाजार से सब्जी लेकर घर मे घुसे तो रोहित की मा को उदास देखा। पूछा—आज उदास क्या हो?

रुआस स्वर मे ही वह बोली—"आज आपका लाडला खाना खाय बिना ही स्कूल चला गया।'

"अरे तो इसम चिन्ता करने की क्या बात है? शाम को आकर खा लेगा। दिन भर तो कुछ-न-कुछ खाता ही रहता है।'

"हा-हा, आपके तो कुछ भी फक नही पडता। परतु मरे से तो नही रहा

जाता कहती रहती ही गुजर पड़ी।

"अब खाना तो लगाओ। दफ्तर का समय हो गया है। खाना खाकर वे भी दफ्तर को चले गये।

मां ने भी दिन भर का खाना शाम को रोहित के साथ ही खाया। मां और बेटे में आए दिन नोक झोंक, लड़ाई झगड़ा चलता ही रहता। कभी कहता—आज मेरा पेन खो गया, पैसे दो। कभी ज्योमेट्री बाक्स, तो कभी ड्राइंग कापी की जरूरत आ पड़ती।

ऐसी बातों पर पिताजी ध्यान नहीं देते। एक दिन रोहित की मां ने ही उसके पापा को कहा—"तनख्वाह पर दस-बीस रुपये मुझे भी दे दिया करो, ताकि रोहित की मांगें पूरी कर सकूं।'

इस पर पिताजी को गुस्सा आ गया—"तुमने ही इसको सिर पर बिठा रखा है। इकलौता पुत्र होने का मतलब यह तो नहीं कि तुम हर समय उसकी ढाल बनो।

तुमने कभी उसकी पढ़ाई के बारे में भी पूछा। बस तुम्हें तो हर समय उसकी इच्छाएं पूरी करने की पड़ी रहती है।

कभी इस बात का भी पता लगाया है कि वास्तव में उसका सामान खोया है या पैसे लेने के बहाने ही बनाता है। शायद इसका जवाब तेरे पास नहीं है क्यों?'

"हां हां, मैं ही बुरी हूं। सारा बुरा भला आप मुझे ही कह जा रहे हो। आपका भी तो फर्ज कुछ बनता होगा बेटे के प्रति। कभी स्कूल में जाकर भी सम्भाला है, आपने।

जवाब सुनकर पिताजी की भी सिट्टी पिट्टी गुम हो गई। सोचा इस तरह जिम्मेदारी एक दूजे के सिर थोपने से तो रोहित की आदत सुधरने वाली नहीं है। कुछ और उपाय सोचना पड़ेगा।

एक दिन पिताजी रोहित को साथ लेकर घूमने [illegible] । पार्क में बैठकर उसको बड़े ही प्रेम से समझाया—बेटा मैं मानता हूं कि [illegible] उम्र अभी खेलने कूदने की है। इस सुनहरे समय [illegible] खा [illegible] लना जीवन में निराशा के अलावा कुछ नहीं मि[illegible] । मैं [illegible] को समझता हूं। प्रतिमाह तुम्हारे लिए [illegible] रुपये भी बचाता हूं। मुझे मालूम है ए[illegible] था, मां, पिताजी को कहकर मेरे लिए ए[illegible]

बातों ही बातों में रात्रि के आठ [illegible]

किया।

एक दिन की बात। रोहित अपने क[illegible]

शुक्लाजी अन्दर हैं? रोहित बाहर आया

गये हैं।

"आ जाय तो बोल देना कि चार-पाच महीनो से मकान का किराया नही पहुच रहा है। यदि इस तनखाह पर हिसाब चुक्ता नही किया तो कोई दूसरा मकान तलाश लें", कहता हुआ मकान मालिक पग पटकता हुआ चला गया।

उसके जाते ही रोहित के मन मे विचारो की बाढ आने लगी। उसके दिमाग म बार बार वही विचार आने लगे कि पिताजी न उस दिन केवल मुझे ही खुश करने के लिए झूठ क्यो बोला—इसका मतलब वे मुझे घरेलू परिस्थिति से दूर रखना चाहते थे।

शाम को जब रोहित विद्यालय मे घर आ रहा था तभी एक दुकानदार ने उसको पुकारा—'रोहित बेटे, आजकल तेरे पापा यहा नही है क्या? उनका स्वास्थ्य तो ठीक है न। दस पद्रह दिन मे नजर नही आये, वैसे दफ्तर जाते समय हमेशा इधर से ही निकला करते थे।'

क्यो क्या बात है? रोहित ने पूछा।

कुछ नही बेटा—"घर जाकर उनको कहना कि किराने वाले मेहताजी ने याद किया है। कल दफ्तर जाते समय मिलते हुए जाए।"

सेठजी की बात को रोहित मन-ही मन समझ गया। आज उसे मालूम पडा कि उसके कधे पर भी जिम्मेदारी का बोझ आने वाला है। पापा न जाने कैसे हमारा पालन-पोषण कर रहे है। आज दिन तक उन्होने कभी कोई कमी महसूस नही होने दी। बल्कि हर परिस्थितियो मे हम खुश ही रखा। एक मैं हू जिसने हर समय पापा व मम्मी को राहत के बजाय कष्ट ही दिया।

शाम को खाना खाने के बाद रोहित के पापा आराम कर रहे थ। रोहित कमरे म आया और उनके पास बैठ गया।

पिताजी ने अखबार से नजर हटाते हुए कहा—"रोहित बेटे, आज किस चीज की जरूरत है।' अपनी मा से ही कह देते।

"नही पापा—आज मुझे कुछ नही चाहिए। बल्कि मैं तो आपको यह कहने आया कि इस तनख्वाह पर सबसे पहले मकान मालिक का हिसाब चुकता कर दो, बाद म उस बनिये का भी।"

पिताजी को यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि रोहित आज क्या कह रहा है।

"मुझे माफ कर दो पापा—अब मैं कभी आपको व्यर्थ मे परेशान नही करूगा, बल्कि आपके काम म हाथ बटाऊगा।"

छोटे मुह से बडी बात सुनकर पिता की आखो म भी आसू छलक पडे और उन्होने रोहित को सीने से लगा लिया। □

# अन्तर्दहन

जगदीश प्रसाद सैनी

खा पीकर सो जाता हू। सोना क्या है यो ही बिस्तर पर पडा करवटें बदलता हुआ बीडी फूक जा रहा हू। पत्नी पहले से ही सोई हुई है। नीद शायद उसे भी नही आई है। या ही पडी है। हा, बच्चे जरूर सो गय हैं। सोये हुए कम निरीह लग रहे है। आज सहमे-सहमे से थे। बिना कोई हा-हल्ला किए, बिना किसी जिद के जैसा भी मिला खा लिया था और चुपचाप चारपाई पर जा लेटे थे। जरूर आज इन्हे पीटा गया है। सारा गुस्सा इन्ही पर उतरता है। जान क्या हो जाता है इसे। जब मर्जी होती है मुह फुला कर पड रहती है। लाख पूछो, बोलेगी नही। जब बोलेगी तो उल्टी-सीधी पहेलिया बुझाएगी। शरीर सूख कर काटा होता जा रहा है। मुह निकल आया है। जान कौन-सी आग मे फुकी जा रही है।

हर तरह का इलाज करा लिया मगर इसकी सेहत म कोई फक नही आया। उस रोज खाना खाने बैठा तो कहन लगी—"आज बच ही गयी, नही तो खाना कोई और ही खिलाती। दोपहर मे बाल्टी माजकर खडी हुई थी कि ऐसा चक्कर आया कि धडाम स गिर पडी। थोडी-सी ही बच गयी नही तो आज कुए मे धमका लग जाता।"

'कुए मे डूबन जित्ता पानी थोडे ही है।' मैं विनोद मे कह गया। वह बिफर उठी, "हा-हा, डूबने जित्ता नही है तो किसी डूबने वाले म पटक आओ सो पाप कटे। खुद ही चाहत हो कि मर जाऊ तो पीछा छूटे। तुम्हे जहर लगती हू तो मर जाऊगी फिर घी के जो लेना' उस समय कितनी मुश्किल स पीछा छुडाया था, मैं ही जानता हू।

एक रात बोली— एजी, धानी माजी कहती हैं कि तेरे पेट की गरमी गस बनकर माथे मे चढ गयी है सो बादाम मिश्री पीस कर गाय के कच्चे दूध मे सुबह सुबह पीओ।

वह इतजाम भी हुआ पर नतीजा वही ढाक के तीन पात। फिर एक दिन

कहने लगी— 'सुनो जी, तुम मेरा 'अक्सरा' क्यों नहीं करा देते ? धापा मौसीजी कहती हैं 'अक्सरा करा लेने से तुरत फायदा आता है। उनकी चन्दा को भी ऐसी ही बीमारी थी। 'अक्सरा' कराया तो ठीक हो गयी।"

मैंने उसे समझाने की कोशिश की—'देखो एक्सरे से बीमारी दूर नहीं होती, उससे तो बीमारी का पता चलता है। हड्डी वगैरह टूट-टाट जाय तो पता चल जाता है।"

"हां-हां, तुमको मालूम है। वो धापा मौसीजी जो कहती हैं गलत कहती हैं? 'अक्सरा' के साथ सारी बीमारी बाहर आ जाती है। आदमी भला चंगा हो जाता है। चंदा जो हो गयी। पिछली बार आई थी तो मेरे से भी बुरी थी। अब मोटी घोटी हो रही है। कल मैंने अपनी आंखों से देखा है।'

"मगर डाक्टर कहता है एक्सरे की जरूरत नहीं है।"

'डॉक्टर की मां राण्ड का सिर! उसे क्यों जरूरत होने लगी। कौन-सी उसकी राण्ड मर रही है? जिसकी मर रही है उसी को परवा नहीं है तो उसे क्यों होने लगी? पैसा जो खर्च होता है। मेरी खातिर कौन पैसा खर्च करे? कौन होती हूं मैं? मर ही तो जाऊंगी। मारना तो चाहते ही हो ना तुम। फिर जो लेना घी ये ।'

फिर दो दिन तक मुंह फूला रहा तो हार कर एक्सरे कराना पड़ा। मगर उसस क्या होना जाना था? डाक्टर ने टैस्ट करके बता दिया कि एक्सरे में कोई गडबडी नहीं है।

साझे परिवार में रहा तब तक न कभी ठण्डा पानी पिया न पीने दिया। रात-दिन कमल को बहू को लेकर झीकती रहती। कमल की शादी नहीं हुई थी तब मुख्य निशाना कमल रहता। 'अब और कब तक पढ़ता रहेगा यह 'साडा', कोई काम धंधा नहीं करेगा क्या? पर वह क्यों करने लगा? तुम हो ना, कान पकड़ी छोली! कमा-कमा कर इसकी छाती में देते रहो। यह गुलछर्रे उडाता रहेगा। ठेका ले लिया है जिन्दगी भर का।"

मैं समझाने की कोशिश करता, "भई, बी० एस-सी० से पहले पढ़ाई छुड़ाने से फायदा क्या होगा? दो साल का करा धरा "

"भाड़ में गयी तुम्हारी बस्सी। तुमको तो नहीं कराया मां-बाप ने 'बेस्सी'। उसकी ही पीड ज्यादा चली थी क्या? मां-बाप दोनों छतरी हो रहे हैं उसी पर। इसका कहीं 'भुलसेड़ा कर करा देते तो पिण्ड छूटता मेरा तो। बाज आयी इनसे।"

'पर कमल कहता है, वह अभी शादी नहीं करेगा।"

"हां-हां, क्यों करेगा वो शादी? मैं हूं ना उसके बाप-दादा की बादी-गोली। करती रहूंगी चाकरी। जाने कित्ते काले तिल चाबे हैं इनके। नासपिटो का 'खोरसेड़ा करत-करत गोडे टूट गये मेरे तो। सास राड खाने-पीने की चीजों पर

साप हो रही है। कभी दूध घी की बूद नही दिखाती। दिखाये कहा स, 'बके' का चरा रही है। पढ लिखकर 'कलट्टर' बनगा तो करेगा शादी। 'सुरग की परी लायेगा कोई चीलगाडी म बठा कर।'

कमल की शादी हुई। सोचा था कुछ दिन राहत मिलेगी मगर सब बेकार। पहले दिन ही मुह फूल गया। रात को बडी मुश्किल स बोली तो पहेलिया बुझाने लगी—

'देखो जी, पाचो उगली बराबर तो नही होती।'

"नही होती।"

पर काटने पर दद तो बराबर होता है।'

'जरूर होता है।'

"कहा होता है? तुम्हारी मा को तो होता नही। देखा नही बहू को मुह दिखाई म एक सौ एक दिये है। मैं भी तो बेटे की बहू ही थी। कोई 'उदल कर' थोडे ही आयी थी। मुझे पाके पाच रुपय दिखाये थे। पर वह मालदार की बेटी है। घणा सारा माल लायी है। मैं ठहरी कगल फकीर की जाई। मो कौन ज्ञान-गणित करता? कीडे पडेंगे राड के कीडे। दुभात करती है। ऊपर चढा भगवान देखता है। हा।'

और य। शिकवे शिकायता का एक नया सिलसिला चल पडा—"क्या जी, ऐसी 'बरी' मरे लिए तो नही लाये थे। जाने कहा से कफन के टूक सिला ले गये थे। एक बार धोते ही साप की काचली बन गये। और गहना देखा? सारा का सारा नयी 'डिजान' का है। मैंने ही कौन काजर सासी के घर जन्म लिया था सो डाल दी परो म बेडिया। वो सठानी की बच्ची पाजेब पहनने वाली? मैं नही पहन सकती पाजेब? है?'

देखो भई जेवर तोल मे बराबर है। तीन ठाव उसके बाप न दिय हैं जिनमे पाजेब भी है।

'देखो जी, मरे बाप को अडाया तो ठीक बात नही रहेगी। उसके बाप ने तो जुग लुटा दिया और मेरा बाप ल के खा गया। वो हस का बण्ड-बाजा बजाया था, वो भी उसके बाप न ही किया होगा। महारानी जी जिस कार म बठ कर आयी थी सो भी उसके बाप ने ही भेजी होगी। व्याह बाद म किया पहल साहब लोगो की खातिर पोढ़ने के लिए ऊपर हवादार चौबारा बना, वो भी उसका बाप ही बना गया होगा। मैं भी सात फेरे खाकर ही आयी थी। कोई 'नाता करके' थोडे ही लाये थे जो मूयाण जाने वाला की तरह चुपचाप चले गय—न धोडी, न बाजा, न नाच-गाण। उस टूटे स 'टेक्टर' म डालकर ल आये और इस घुडसाल म पटक दिया। दुख तो घणा ही उठता है। कुत्ते बिल्ली की गत हो ता इस घर मे मेरी गत हो। तुम तो चमगूग हो रहे हो। बोलत ही नही। मुझ राड की कौन

सुन ?"

मैं उसे कैसे समझाता कि हमारी शादी हुए पन्द्रह साल हो गये और इन पन्द्रह सालों में दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गयी। नये-नये रीति रिवाज चल पड़े हैं। फिर यदि उसे वह सब कुछ दे भी दिया जाये जो कमल की बहू के पास है तो भी जिंदगी के वे पन्द्रह साल कहाँ से लायगी जो वह खो चुकी है। वातावरण को सामान्य बनाने की गर्ज से हल्का-सा विनोद किया—"अब तुम बुढ़ापे में चौबारे में सोकर क्या करोगी?'

मगर वह और भी ज्यादा पीछे पड़ गयी—"अच्छा! तो यह बात है। मैं बूढ़ी हो गयी बूढ़ी। तो क्या अब मारने आते हो मेरे पास? कोई मेरी सौत गाबरू हो उसके पास जाओ ना। या फिर और ले आओ कोई नयी नवेली बींनणी। खूब दूध मलाई खिलाते हो ना, नादान बनाने के लिए। नासपीटे नीचे भी ठम जायें, बचा-खुचा जग भर कर ऊपर चौबारे में ले जायें। मैं बची हूँ कोर मार टुकड़े सूखे टुकड़े बचाने को। एक तो मरी बीमारी पिण्ड नहीं छोड़ती, ऊपर से सारा घर चून बाँध गैल हो रहा है। इलाज कराना तो दूर, तुम भी कलेजे में सेल निकाल रहे हो। बूढ़ी क्या हो गयी, कभी-न-कभी अरथी कौन-सी नहीं निकल जायगी। पर किसको दुख होगा? मारना तो सब चाहते ही हो ना। कुएँ में धक्का क्यों नहीं मार देते? एक दिन में पाप कट जाय। फिर ले आना नादान। मेरे टाबरों की खोटी होनी है सो हो जाएगी। बेचारे माँ के बिना बिल्लायेंगे।"

फिर जो पंचम स्वर में रुदन चालू हुआ तो थमने का नाम नहीं।

कमल की बहू आती जाती हुई तो रोज कोई-न-कोई किस्सा तैयार मिलता।

—"देखो जी, मेरा क्या जमाना आया है। सरम हया रही ही नहीं। जब देखो कमरे में घुसे रहते हैं। कुत्ते बिल्ली भी नहीं रहे। ये बूढ़े-बूढ़ी भी अब सास नहीं निकालते। नहीं तो सुबह चार बजे ही आसमान सिर पर उठा लेते थे—'दिन दोपहर आ गये, अब तो उठ जाओ।' तब तो आधी रात में ही दोपहर हो जाते थे। अब दोपहर में भी नाम नहीं लेते। आँख फूट गयी क्या इनकी?"

—"आज लाडली बहू के ससुर बोले— भई, बड़ी और लेंगे। बड़ी उम्दा बनी है। छोटी बहू ने बनाई दीखे।' अब बोलो, कितो दुख उठने वाली बात है। मैं तो जैसे जहर बना के खिलाती हूँ। इस कान सुनो चाहे उस कान सुनो, इस घर में मेरा गुजारा नहीं होगा।"

—'दोपहर में दोनों मियाँ-बीबी अमरस बना कर पी रहे थे। मेरा छोरा चला गया तो दो झापड़ मार दिये। क्या मार दिये? उनका कुछ उठा लिया था क्या? कहा तो लड़ने को तैयार हो गये—'टेलीवीजन खराब कर दिया।' इनके ब्याह का सामान तो इन्हीं का हो गया। फिर मेरे सामान का क्या हुआ? मेरे टाबर तो इनको फूटी आँखों नहीं सुहाते। राँड बाझड़ी-बजोवड़ी मुँह देखने का

धरम नहीं।

इस तरह करते-करते दो साल और घिसट गये। इस बीच वह कुछ और दुबली कुछ और बूढ़ी कुछ और तीखी और चिड़चिड़ी हो गयी। बीच बीच में बीमारी की शिकायत और तरह-तरह के इलाज चलते रहे।

एक दिन कमल की बहू को बुखार आ गया। डॉक्टर आया। दवा-दारू की गयी। रात कहने लगी—"देखा तुमने? थोड़े से सिरदर्द का बहाना क्या बनाया कि सारे घर में हड़बड़ी मच गयी। माहबजादी की खातिर घर पर ही डाक्टर आ रहा है, कोई दवा ला रहा है, कोई पानी गर्म कर रहा है। और मेरे लिए सबका माथा ठनकता है। "यह तो यों ही करती रहती है। आदत पड़ गयी है। काम करते जोर आता है। खाने की लाय लग रही है सो बीमारी का बहाना बना रखा है। बड़े का नहीं देखा? कैसे आसमान सिर पर उठा रखा था—"तुमसे किसने कहा था सुबह-सुबह सर्दी में इसे गोबर पाथने भेजो। इसकी आदत है क्या?' मेरी है आदत। मैं हूं इनकी नौकरानी। सो करती रहूंगी जिन्दगी भर इनका पानी पसीना गोबर झाड़ू। पटरानी जी सोई रहेंगी महल में पलंग पर। अभी तो इसके पैर और दबाऊंगी पंखा और झलूंगी। सठानी थी तो गयी होती कहीं सेठ साहूकारों के या कोई बांदी-गोली लाती साथ। रोड़ का मुंह देखने में तो धरम नहीं। बाझड़ी-बझोकड़ी। मेरे टाबरों को और खायगी।"

लगता था, प्रतिपक्षी की तमाम श्रेष्ठताओं के बावजूद उसे परास्त करने के लिए इसके हाथ में हथियार आ गया था। एकमात्र हथियार, मगर एकदम मारक—"बाझड़ी-बझोकड़ी।

पांच छह महीने और गुजरे। एक दिन शाम को आफिस से लौटा तो भरी बैठी थी। छूटते ही बोली—"तुम्हें सुवाद हो तो झक मारते रहो इनके माथे पर मेरा चूल्हा अलग रख दो। बस आज ही, अबकी सात ही नहीं तो किसी कुएं-जोहड़ में धक्का दे आओ। दुख भी मत उठो। हर काम में दुराचारी।"

"बात क्या हुई?"

"बात क्या हुई? तुम न कुछ देखते न कुछ कहते। कमा कमा कर देते जाओ, ये बत्ती लगाते जायेंगे। आज बीजणी का बीरना आया था। एक दढ़ियल मुसण्डा साथ था। मक्टर' दिखाने आये थे यहां। देखा नहीं, सब कम छनरी हुए जा रहे थे। कभी 'खोवा-खाला' की बोतल मंगाते हैं कभी नींबू की सिकंजी बनाते हैं तो कभी मौसमी का ठोंगा भर कर लाते हैं। सूजी का सीरा, खीर पराठे, दो-दो सब्जी, आम का आचार पोदीने की चटनी, भुजिया पापड़ जाने क्या-क्या उड़ा। मैं कहती हूं मेरे पीहर से कोई आता है तो यह सब कहां जल जाता है? उस दिन मेरा चाचा आया तो यह खूसट बोतल लेकर हॉस्पीटल चल दिया और यह निगोड़ी बुढ़िया सिमका वड़िया के यहां चावल बीनने निकल गई। भण्डार की

ताली कमर म लटका ले गई राड। सूखी-सूखी रोटी देनी पडी। गुवार फली का साग और प्याज, बस। क्या सोचेगा मन म ? कौन रोज रोज आता है ? पर मैं और मेरे आदमी तो इनका फूटी आखा भी नहीं सुहात। ये दोना राड रडुवा ही निकालेंगे क्या इनकी वकुटी ?"

और फिर एक दिन जब इसन 'अपन टाबरो' को लेकर कुए मे कूद जाने की धमकी दे डाली तो मेरे पास कोई चारा नही रह गया। कमल को बस स्टेण्ड पर पान-बीडी की दुकान करा कर अपना चूल्हा अलग रख लिया। सोचा इसकी भी बीमारी मिटगी और मेरे भी जी म शान्ति रहगी।

मगर बीमारी इसके स्वभाव मे थी, सो नही गई। इसका मन दुखी होने का कोई-न-कोई बहाना ढूंढता रहा।

कमल के ससुराल म उसकी साली की शादी थी। उसके ससुर का विशेष आग्रह था। आफिस मे आकर सौग ध दिला गये, सो जाना पडा। लौटा तो यह तलवार खीचकर तैयार थी—'मैं पूछती हू तुम क्यो गये वहा झक मारन ?"

"देखा, तुम्ह ऐसा नही सोचना चाहिए। अलग हो गय तो सम्ब ध थोडे ही टूट गये। रिश्तदारी म जाना भी पडता है।'

"चूल्हे मे गया रिस्ता और भाड मे गयी रिस्तेदारी ! क्या लगते है वे हमार ? भाग भाग कर फिर उन्ही म घुसे जा रहे हो। कल को वो राड बामडी ताने मारगी—'मर पीहर के बिना तो काम नही चला ना तुम्हारा।' मेरी न भतीजी का ब्याह था। गया था वह मुहझौंसा ? तुम ही हो, जो कमीण की तरह भाग भाग कर चले जात हो।

"भई, तुम समझती क्या नही ? उस दिन कमल का इण्टरव्यू था।"

"था 'इण्टरव्यू'। जाना ही होता तो छोड नही सकता था 'इण्टरव्यू ? अब तो बन गया ना 'कलट्टर, 'इण्टरव्यू' देकर ? मेरे पीहर वाले तो गये बीते है न। कौन जाय वहा ? घणा सारा माल मिलता है वहा सब जाते है। तुम्हार भी लाय लग रही है।"

आज भी सुबह से ही वातावरण तनावपूण है। अस्पताल से लौटत-लौटते नौ बज गये थे। जल्दी जल्दी नहा-खाकर आफिस चला गया। इस बीच कोई सीधी बातचीत नही हुइ। बच्चो के माध्यम से ही सब कुछ चलता रहा। फुसत भी नही थी कुछ कहन सुनन की। सोचा था शाम तक स्थिति सामान्य हो जायेगी।

शाम लौटा तो खाट पकडे थी। दो-तीन बार तबीयत पूछी पर होठ जैस सिल गए हा। चाय रीता न बनाई। पीकर बाहर निकल गया। खान के वक्त उठकर जो कुछ बना था, सामन रख कर फिर खाट पर जा पडी। अब भी वसे ही पडी है निस्तब्ध, निश्चेष्ट। मैं बगल की चारपाई पर पडा पडा सोच रहा हू और बीडी पर बीडी फूक रहा हू।

यह तो तय है इसे नीद नही आइ है। समझ म नही आ रहा यात कहा स शुरू करू। हाथ बढा कर झिझोडता हू— 'सो गई क्या ?" कोई हरकत नही। फिर झिझोडता हू—"तबियत ज्यादा खराब है क्या ?"

हाती रह तुम्हारी बला स। आज भी रुक जाते अस्पताल म। मैं कौन हाती हू ?

अच्छा! तो यह बात है। कल आफिस से लौट रहा था कि दखता हू कि मा और पडोस की धानी मा कमल की बहू को तागे म लिटा कर लिए जा रही हैं। पीछ-पीछ साइकिल पर कमल था। मालूम हुआ अचानक तबीयत खराब हो गई। कण्डीशन सीरियस है। अस्पताल ले जा रहे हैं। मैं भी साथ हो लिया। जरूरी था। रात कमल बोला— दादा तुम भी यही रहा। जाने कब क्या जरूरत पड जाय। घर खबर भिजवा देता हू।

मैं समझान की कोशिश करता हू—"देखो हारी-बीमारी म मदद करना इसान का फज है ।

हा-हा, तुम्हारा ही है फज। मैं अपनी बात पूरी करू इससे पहले ही वह शुरू हो जाती है, 'उनका थाडे ही है। इतनी इतनी बीमार पडी, कभी कोइ बात पूछन भी आया ? दम-दस दिन तक अस्पताल म मरती रही। वह निगोडा एक दिन भी जान जागा नही हुआ।'

कहना बकार था कि उन दिनो कमल की परीक्षा चल रही थी और मैंन जान बूझकर उम खबर नही दी थी।

'तुम बान को समझा करो। उसकी हालत बहुत खराब थी। कुछ हो-हवा जाता ता दुनिया धूल डालती।

वह और भी भडक उठती है 'और मरी तो तबियत ठीक ही थी। मैं तो सैर-सपाट करन गई थी अस्पताल। तबियत ता उस साहबजादी की ही खराब हाती ह। राड झूठ-मूठ क चरित्र करती फिर। क्या खाता है उस ? इस राम स तो मग्न स रही। मर जाती ता पिण्ड ना छूटता। सुबह-सुबह दशन ता नही हात राड बाझडी क। पर भगवान भी डरता है उसस।

मुझे उम पर गुस्सा नही रहम आता है। क्या उसन अपनी स्मति म इतनी सारी स्थितिया का इस तुलनात्मक ढग स सजो रखा है जिसम उम हरदम अपनी उपक्षा का अहसास हाता रह ? क्या वह मकडी की तरह अपन ही लिए जाल बुनती रहती है ? क्या अपन ही द्वारा पैदा की हुई आग म जलती रहती है ? किसी ने ठीक ही कहा है—सुखद स्थितिया नही दुखद विचार दुखी करत हैं। यह बात इसकी समझ म आ जाय ता इसक सब कष्ट कट जायें। मगर समस्या यह है कि न इसक पास उम समझन लायक दिमाग है और न मर पास इस समझान लायक भाषा। फिर भी कोशिश कर दखता हू।

"अब छोड़ो इन बातों को। यह बताओ, तबियत तो ठीक है न ?"

"ठीक है मेरा सिर। खड़ा तो नहीं हुआ जाता। सिर में चक्की-सी चल रही है। हाथ-पैरों में 'बोधण' लग रही है जैसे घुन लग रहा हो।"

'तो कल चलना। और दिखा देंगे डाक्टर को।'

"डॉक्टर के बस का रोग नहीं है। किसी ने कुछ करा रखा है। पीर बाबा ने बूझा निकाल कर बताया है। इसी राड बाझड़ी की कारस्तानी है।"

"देखो, असली बात तो यह है कि तुम्हें कोई बीमारी नहीं है। तुम ।"

"झूठ-मूठ के 'फैंवट' रच रही हो यही कहना चाहते हो ना ?" वह फिर तीखी हो उठती है, कहलो, तुम भी मरजी आये सो कहलो। मजा आता है मेरे को बीमार पड़ने में ? दुनिया तो पीछे पड़ी ही हुई है, तुम भी क्यों कसर रखोगे। मारना तो चाहते ही हो सो मर जाऊंगी दो चार दिन में। फिर जो लेना सो ले। हे तिरलोकी के नाथ ! क्यों मेरी माटी खराब करता है ? मौत क्यों नहीं दे देता जा ।"

'तुम मेरी बात तो सुनो। मानता हूं, तुम बीमार हो और बहुत बुरा रोग तुम्हें लगा हुआ है। मेरे कहने का मतलब यह था कि तुम्हारी बीमारी मिट सकती है अगर तुम दूसरों के बारे में सोचना बंद कर दो। उन्हें देख कर जलो नहीं।"

बात ज्यादा कड़वी हो गयी। वह एड़ी से चोटी तक भभक उठी है—"क्या कहा ? मैं जलती हूं ? मैं दूसरों को देख कर जलती हूं ? उस गयी-बीती दो टके की राड पर जलती हूं ? जिसका मुंह देखने का धरम नहीं, उस राड बाझड़ी-बकोरड़ी से ।"

"मुंह संभाल के बोलो। कमल की बहू का पांव भारी है।"

"हैं ऽऽऽ ?" जैसे ब्रह्माण्ड हिल उठा हो। वह चौंककर उठ बैठी है।

'हां, डाक्टर कहता है, वह मां बनने वाली है।'

वह सन्न रह गयी है। इतनी दयनीय मैंने उसे कभी नहीं देखा। जिस ब्रह्मास्त्र से शत्रु पर अंधाधुंध वार करती हुई वह आज तक लड़ती रही है, वह एक झटके में खण्ड-खण्ड होकर उसके हाथ से छिटक गया है। अब वह बिलकुल निहत्थी है—नितान्त असहाय।

कटे पेड़-सी वह मेरी गोदी में ढह पड़ी है और फूट-फूटकर रोये जा रही है।



# शालिनी

## नन्दलाल परसरामाणी

इसने एक बार फिर पढ़ा।

ड्राइवर की सीट के पास वाली खिड़की के धुंधले स्याह काँच में मैंने तेरा प्रतिबिम्ब पहचान लिया। तुम मेरी ओर निहार रही थी। समझा था तुम पास बैठे मुसाफिर से कुछ कहना चाह रही हो। किन्तु ऐसा नहीं था। वैसे तो मुझे भी इसका भान नहीं, रहता यदि तुम्हारे पीछे वाली सीट पर बैठा मुसाफिर खखार कर खिड़की से बाहर नहीं थूकता। इसकी आवाज से मेरी निगाह शीशे से टकरायी थी। इतनी देर से मैं अपने ही खयालों के ताने बाने बुनने में उलझा हुआ था। प्रतिबिम्ब ने मुझे मेरा अतीत लौटा दिया। बालों के सवारने के ढंग और गालों में बने हुए खड्डों से तुमको पहचानने में विलम्ब नहीं हुआ। मैंने देखा तुम अनायास ही अपनी सीट से सरक गयी, जैसे मेरे लिए स्थान बना लिया। मैं तुमसे चार-पाँच कतारें पीछे बैठा हुआ था। उठकर तुम्हारे साथ बैठने की हिम्मत नहीं बटोर सका। दिल और दिमाग दो अलग अलग चीजें हैं। जब दिल उड़ना चाहता है तब दिमाग बाधक बन जाता है, ऐसा ही कुछ मेरे दिल और दिमाग के साथ भी हुआ। तुम अपलक मेरी ओर निहार रही थी। इसने मुझमें शक्ति फूंक दी। कोई आकर पैसेज में खड़ा हो गया। एक-दूसरे का देखना बन्द हो गया। शायद तुम बर्दाश्त नहीं कर पायी। भारी शब्दों में अगली कतार में एक सीट की ओर इशारा कर उसे बिठा दिया। मेरी तरह तुम्हारा अतीत भी तुम्हारे सामने आ गया था। एक दूसरे से कहने के लिए बहुत कुछ था। अपने अपने गंतव्य तक पहुँचने के पहले एक बार मिलना चाह रहे थे। इस सोच विचार में बस आगे बढ़ती जा रही थी। कितने ही स्टॉप आए, यात्री उतरे और बैठे, पर हम शान्त थे।

"बाबा, अंधा हूँ पाँच पैसे दस पैसे", कहते हुए एक भिखारी तुम्हारे सामने खड़ा हो गया। कटोरे में एक सिक्का डालते हुए तुमने मुस्कर मेरी ओर देखा। नयन मिले। इनकी भाषा में एक-दूसरे को कुछ कह गये। गर्माइश का

एहसास हुआ। नसा मे ताजगी उपज आयी।

अगले स्टाप पर दोनो उतरे। पास वाले तिकोने पाक के पौधा के झुरमुट पीछे छुप गय। सोचा था कि तुम इतन करीब आओगी कि सासो की सुरमाला से सारा ससार सुगंधित हो जायेगा। वर्षों की दूरी भाग जायेगी। मधुर और मीठी बतिया होती रहगी।

ओह ! तुम शरीर से बदली हुई हो। चार वष पहले का व्यक्तित्व अब नही रहा है। चादनी से धोयी हुइ मासल देह अब कहा है ? जिसे सदा रशम और मखमल के परिधान म देखता था वह शालिनी कहा रही है। कहा है वह मुस्कान जो सदा आमन्त्रित करती रहती थी। देह की हर एक मासपेशी दुखती हुई दिखती है। कहा है वे बाह जो फैलती हुई बुलाती रहती थी।

आमने सामने बैठ अपनी अपनी उलझी डोर को सुलझाने का नाकाम प्रयास कर रहे थे। मैं हृदय की बढती हुई धडकनो के आतक से चुप था। तुम शायद बातचीत के सिरे को ढूढते हुए चुप थी। समय की स्याह चादर म तुम लिपटी थी। मेरा साहस ही नही हुआ कि मैं तुम्ह छू लू। छूने पर जो जुबिश पैदा होती उसकी चुम्बकीय शक्ति कदाचित हमारा सवनाश कर दती।

वर्षो तक जो कभी हुआ था वह सपना ही था। सपना ही नही, सपने की परछाइ मात्र थी। जिसे न कभी दिवास्वप्न कहा जा सकता है और न ही निद्रा मे अवलोकित चित्र। सत्य तो यह था, वह जीवन का एक अनथ था, जा हम दोना पाले हुए थे। इसी अनथ को एक बार पुन जीवित करन के लिए हम आमने सामने थे। इससे बनी तस्वीर को कनवास पर खीचकर सदा के लिए ठहराने का यह हमारा विफल प्रयास था।

पुरुष होने हुए भी इस चुप्पी को तोडने म मैं असहाय हुआ जा रहा था। साहसी तुम निकली, तुम्ह सिरा मिल गया था।

'इत्तफाक स मिले है।"

तुम्हारा यह सरल वाक्य गहर प्रश्ना स भरा हुआ था। प्रश्नो की कडी न मछली पकडा के काटे की तरह मुझे जकड लिया। मुझे कुछ भी नही सूझा। मैं क्या उत्तर दू ? बडी कठिनाई स कह पाया।

"हू "

मेरा एक शब्द का उत्तर तुम्ह अच्छा नही लगा। तुम्हारे उलझे चेहरे पर कुछ और उलझ गया। यह स्वय मुझे भी नही भाया। मैं स्वय अपन-आप पर रुष्ट हो गया। इस चिढेपन मे डूब ही रहा था कि तुमने सम्भाल लिया। मुस्कराहट से पूछा, 'कैसे हो ?"

'ठीक हू, तुम कसी हो ?"

सिलसिला निर्विघ्न चल पडा। उफनता तूफान इतनी शीघ्रता मे थम जायगा

# शालिनी

नन्दलाल परसरामाणी

उसने एक बार फिर पढ़ा।

ड्राइवर की सीट के पास वाली खिड़की के धुंधले स्याह काँच में मैंने तेरा प्रतिबिम्ब पहचान लिया। तुम मेरी ओर निहार रही थी। समझा था तुम पास बैठे मुसाफिर से कुछ कहना चाह रही हो। किन्तु ऐसा नहीं था। वैसे तो मुझे भी इसका भान नहीं रहता यदि तुम्हारे पीछे वाली सीट पर बैठा मुसाफिर खंखार कर खिड़की से बाहर नहीं थूकता। उसकी आवाज से मेरी निगाह शीशे से टकरायी थी। इतनी देर में मैं अपने ही खयालों के ताने बाने बुनने में उलझा हुआ था। प्रतिबिम्ब ने मुझे मेरा अतीत लौटा दिया। बालों के सँवारने के ढंग और गालों में बने हुए खड्डों से तुमको पहचानने में विलम्ब नहीं हुआ। मैंने देखा तुम अनायास ही अपनी सीट में सरक गयी जैसे मेरे लिए स्थान बना लिया। मैं तुमसे चार-पाँच कतारें पीछे बैठा हुआ था। उठकर तुम्हारे साथ बैठने की हिम्मत नहीं बटोर सका। दिल और दिमाग दो अलग अलग चीज हैं। जब दिल उड़ना चाहता है तब दिमाग बाधक बन जाता है ऐसा ही कुछ मेरे दिल और दिमाग के साथ भी हुआ। तुम अपलक मेरी ओर निहार रही थी। इसने मुझमें शक्ति फूँक दी। कोई आकर पैसेज में खड़ा हो गया। एक-दूसरे को देखना बन्द हो गया। शायद तुम बर्दाश्त नहीं कर पायी। भारी शब्दों से अगली कतार में एक सीट की ओर इशारा कर उसे बिठा दिया। मेरी तरह तुम्हारा अतीत भी तुम्हारे सामने आ गया था। एक दूसरे से कहने के लिए बहुत कुछ था। अपने अपने गंतव्य तक पहुँचने से पहले एक बार मिलना चाह रहे थे। इस सोच विचार में बस आगे बढ़ती जा रही थी। कितने ही स्टाप आए, यात्री उतरे और बैठे, पर हम शान्त थे।

"बाबा, अंधा हूँ पाँच पैसे दस पैसे", कहते हुए एक भिखारी तुम्हारे सामने खड़ा हो गया। कटोरे में एक सिक्का डालते हुए तुमने मुड़कर मेरी ओर देखा। नयन मिले। इनकी भाषा में एक-दूसरे को कुछ कह गये। गर्माहट की

एहसास हुआ । नसो मे ताजगी उपज आयी ।

अगल स्टॉप पर दोनो उतरे। पास वाले तिकोन पाक के पौधा के झुरमुट पीछे छुप गये । सोचा था कि तुम इतने करीब आओगी कि सासो की सुरमाला से सारा समार सुगधित हो जायगा । वर्षों की दूरी भाग जायगी। मधुर और मीठी बतिया होती रहगी ।

ओह ! तुम शरीर से बदली हुई हो । चार वष पहले का व्यक्तित्व अब नही रहा है। चादनी से धोयी हुई मासल देह अब कहा है ? जिसे सदा रशम और मखमल के परिधान म देखता था वह शालिनी कहा रही है। कहा है वह मुस्कान जो सदा आमत्रित करती रहती थी । देह की हर एक मासपशी दुखती हुई दिखती है । कहा है वे बाह जो फैलती हुई बुलाती रहती थी ।

आमने सामने बैठ अपनी अपनी उलझी डोर को सुलझाने का नाकाम प्रयास कर रहे थे। मैं हृदय की बढती हुई धडकनो के आतक से चुप था। तुम शायद बातचीत के सिरे को ढूढते हुए चुप थी । समय की स्याह चादर म तुम लिपटी थी ! मेरा साहस ही नही हुआ कि मैं तुम्ह छू लू । छून पर जो जुबिश पैदा होती उसकी चुम्बकीय शक्ति कदाचित हमारा सवनाश कर देती ।

वर्षों तक जो कभी हुआ था वह सपना ही था। सपना ही नही, सपने की परछाइ मात्र थी । जिसे न कभी दिवास्वप्न कहा जा सकता है और न ही निद्रा मे अवलोकित चित्र । सत्य ता यह था, वह जीवन का एक अनथ था, जो हम दोना पाले हुए थे । इसी अनथ को एक बार पुन जीवित करन के लिए हम आमने सामने थे। इससे बनी तस्वीर को कैनवास पर खीचकर सदा के लिए ठहराने का यह हमारा विफल प्रयास था ।

पुरुष होने हुए भी इस चुप्पी को तोडन मे मैं असहाय हुआ जा रहा था। साहसी तुम निकली, तुम्ह सिरा मिल गया था ।

"इत्तफाक म मिले है ।"

तुम्हारा यह सरल वाक्य गहरे प्रश्नो से भरा हुआ था। प्रश्ना की कडी न मछली पकडने के काट की तरह मुझे जकड लिया । मुझे कुछ भी नही सूझा । मैं क्या उत्तर दू ? बडी कठिनाई से कह पाया ।

'हू '

मेरा एक शब्द का उत्तर तुम्ह अच्छा नही लगा । तुम्हारे उलझे चेहरे पर कुछ और उलज गया । यह स्वय मुझे भी नही भाया । मैं स्वय अपने आप पर रुष्ट हो गया । इस चिढेपन मे डूब ही रहा था कि तुमने सम्भाल लिया। मुस्कराहट से पूछा, 'कैसे हो ?"

"ठीक हू, तुम कैसी हो ? '

सिलसिला निर्विघ्न चल पडा । उफनता तूफान इतनी शीघ्रता मे थम जायगा

# शालिनी

## नन्दलाल परसरामाणी

इसने एक बार फिर पढा।

ड्राइवर की सीट के पास वाली खिडकी के धुधले स्याह काच म मैंन तरा प्रतिबिम्ब पहचान लिया। तुम मेरी ओर निहार रही थी। समझा था तुम पास बैठे मुसाफिर मे कुछ कहना चाह रही हो। किन्तु एसा नही था। बस तो मुझे भी इसका भान नही, रहता यदि तुम्हारे पीछे वाली सीट परबठा मुसाफिर खकार कर खिडकी से बाहर नही थूकता। इसकी आवाज से मेरी निगाह शीशे से टकरायी थी। इतनी देर से मैं अपने ही खयालो के ताने बाने बुनने म उलझा हुआ था। प्रतिबिम्ब ने मुझे मेरा अतीत लौटा दिया। बालो के सवारन के ढग और गालो म बन हुए खडडा म तुमको पहचानने मे विलम्ब नही हुआ। मैंने देखा तुम अनायास ही अपनी सीट से सरक गयी, जसे मेर लिए स्थान बना लिया। मैं तुमम चार-पाच कतारें पीछे बैठा हुआ था। उठकर तुम्हार साथ बठन की हिम्मत नही बटोर सका। दिल और दिमाग दो अलग अलग चीजे है। जब दिल उठना चाहता है तब दिमाग बाधक बन जाता है ऐसा ही कुछ मर दिल और दिमाग के साथ भी हुआ। तुम अपलक मेरी ओर निहार रही थी। इसने मुझमे शक्ति फूक दी। कोई आकर पेसज म खडा हो गया। एक दूसरे का देखना बन्द हो गया। शायद तुम बर्दाश्त नही कर पायी। भारी शब्दा से अगली कतार मे एक सीट की ओर इशारा कर उस बिठा दिया। मेरी तरह तुम्हारा अतीत भी तुम्हारे सामन आ गया था। एक दूसरे से कहन क लिए बहुत कुछ था। अपने अपन गतव्य तक पहुचने क पहले एक बार मिलना चाह रहे थ। इस सोच विचार म बस आग बढती जा रही थी। कितने ही स्टाप आए, यात्री उतर और उठे, पर हम शान्त थे।

'बाबा, अधा हू पाच पैसे दस पैसे', कहते हुए एक भिखारी तुम्हारे सामने खडा हो गया। कटोर म एक सिक्का डालत हुए तुमने मुडकर मेरी ओर देखा। नयन मिले। इनकी भाषा मे एक-दूसरे को कुछ कह गये। गमाइश का

एहसास हुआ। नसो मे ताजगी उपज आयी।

अगले स्टाप पर दोनो उतर। पास वाले तिकोने पाक के पौधो के झुरमुट पीछे छुप गय। सोचा था कि तुम इतन करीब आओगी कि सासो की सुरमाला से सारा ससार सुगधित हो जायेगा। वर्षों की दूरी भाग जायेगी। मधुर और मीठी बतिया होती रहगी।

ओह! तुम शरीर से बदली हुई हो। चार वष पहले का व्यक्तित्व अब नही रहा है। चादनी स धोयी हुई मासल देह अब कहा है? जिसे सदा रशम और मखमल के परिधान म दखता था वह शालिनी कहा रही है। कहा है वह मुस्कान जो सदा आमत्रित करती रहती थी। देह की हर एक मासपेशी दुखती हुई दिखती है। कहा है वे बाहे जो फलती हुई बुलाती रहती थी।

आमने सामने बैठ अपनी अपनी उलझी डोर को सुलझाने का नाकाम प्रयास कर रहे थे। मैं हृदय की बढती हुई धडकनो के आतक स चुप था। तुम शायद बातचीत के सिरे को ढूढते हुए चुप थी। समय की स्याह चादर म तुम लिपटी थी। मेरा साहस ही नही हुआ कि मैं तुम्हे छू लू। छूने पर जो जुबिश पैदा होती उसकी चुम्बकीय शक्ति कदाचित हमारा सवनाश कर देती।

वर्षों तक जो कभी हुआ था वह सपना ही था। सपना ही नही, सपने की परछाइ मात्र थी। जिसे न कभी दिवास्वप्न कहा जा सकता है और न ही निद्रा मे अवलोकित चित्र। सत्य तो यह था, यह जीवन का एक अनथ था, जो हम दोनो पाले हुए थे। इसी अनथ को एक बार पुन जीवित करने के लिए हम आमने-सामने थ। इसम बनी तस्वीर को कैनवास पर खीचकर सदा के लिए ठहराने का यह हमारा विफल प्रयास था।

पुरुष होते हुए भी इस चुप्पी को तोडने म मैं असहाय हुआ जा रहा था। साहसी तुम निकली, तुम्हे सिरा मिल गया था।

'इत्तफाक स मिले है।"

तुम्हारा यह सरल वाक्य गहरे प्रश्नो स भरा हुआ था। प्रश्नो की कडी न मछली पकडने के काट की तरह मुझे जकड लिया। मुझे कुछ भी नही सूझा। मैं क्या उत्तर दू? बडी कठिनाई स कह पाया।

"हूँ"

मेरा एक शब्द का उत्तर तुम्हे अच्छा नही लगा। तुम्हारे उलझे चहरे पर कुछ और उलझ गया। यह स्वय मुझे भी नही भाया। मैं स्वय अपने आप पर रुष्ट हो गया। इस चिन्तन म डूब ही रहा था कि तुमने सम्भाल लिया। मुस्कराहट स पूछा, "कैसे हो?'

'ठीक हू तुम कसी हो?

सिलसिला निर्विघ्न चल पडा। उफनता तूफान इतनी शीघ्रता से थम जायेगा

विश्वास ही नही आ रहा था। बातचीत एक बार पुन सामान्य हो गयी। वैसी मुस्कराहट के साथ तुमने कहा—

"कैसे दिखती हू ? कुछ बदला है या नही ?"

मेरे प्रश्न के उत्तर म तुमने प्रश्न पूछ लिए। बोलते ही तुम्हारी आकृति मुरझा गयी। उत्तर म प्रश्नो न तुम्हे विह्वल कर दिया। तुम्हारे नेत्र एक बार पुन सजल हो गये। धाराए बहत बहत रुकती रही। ऐसा पहले भी होता रहा है। कभी तुम पलकें बिछाये रहा करती थी।

मिलन म देरी होने पर तुम्हारी आखें गीली देखा करता था। बिल्कुल आज की तरह नयनो के कटोरे मेरी राह जोहते जोहते भरा करते थे। साथ ही उलाहने देन म भी कमी नही रखती थी। कहा करती थी, "मेरे स भी अधिक तुम्हारे कोई और काम है ?'

मैं सदा चुप्पी साधे रहता। चुप्पी म मेरा अपराध मुखरित होता। सोचता था, सचमुच तुम्हारे सग के अलावा इस ससार म मेरा कोई और काम नही था। बाकी सब कुछ तुच्छ था। तुम्हारा अतमन वैसा ही है। तुम्हारे नयन कटोरे वैसे ही है। इनकी आभा वैसी ही है। मैं नही कह सकता कि तुम भूल गयी हो। 'म' तुमसे भूल नही सका है। अतीत के मधुर लम्हे अब तुम्हारी धरोहर हो गये है। बडे जतन स तुमने धरोहर को सजोकर रखा है। ये पलकें इसकी साक्षी है।

तब तुमने किस भावावेश म कहा था, ' दिलीप, पति के सग रहकर मैं तुम्हारा दिया हुआ सब कुछ भूल जाऊगी। विवाह के बधन म बधने स इकार करने पर शायद तुमने क्रोधवश ये शब्द कहे थे। इन शब्दो ने मुझ पर क्या कहर ढाया था तुम अनभिज्ञ हो। तुम तो क्रोध जताकर जलजला लाना चाहती थी, शालिनी ! यह जलजला क्षणिक ही रहा। आज स्पष्ट था कि मेरे प्रति तुम्हारे एहसास अपरिवर्तित है। मैं तुम्हारे अदर आज भी बसा हुआ है। तुम स्वय स ठगी रही।

"मैंने कहा, ' तुम वैसी ही हो शालिनी ,

"म कम वैसी ही हू ?" तुमने कहा।

"क्या, तुम वैसे नही हो ? इन पलको की कोरो म वैसा ही जल बह रहा है। गहराई वैसी ही है। नसो म वैसी ही उष्णता है। तुम स्वय म पूछो तुम्हारे हृदय के तार वस ही एहसास अनुभव कर रहे हैं। मेरे अधर कभी नही कह सकते कि तुममे परिवतन आ गया है।

मेरे सामने केवल तुम्हारा मन था। मन का दपण साफ था। तुम्हारी देह से मेरा कोई वास्ता नही रहा है। तुम्हारे अदर के बहाव से मेरा चिर वास्ता रहा है। तुम्हारी काया को कभी जाचा नही था। जो तुम्हारे म प्रवाहित था वह मेरा था। अब भी है आगे भी रहेगा, मुझे पूर्ण विश्वास है। एक पल म ही अनुभूति हो गयी कि मैं तुमम था और तुम मुझम थी। तब तुमने मेरी तद्रा तोड दी।

"मुझम ऐसा क्या देख रहे हो, दिलीप ?"

"वर्षों से जो कुछ नहीं था सूद समेत देख रहा हूं।'

"अपलक मत देखो तुम्हारी शालिनी यह नहीं है।

"भिन्न तो कुछ नहीं है ?"

भाववश कहते हुए तुम्हारे नजदीक सरक आया।

'नहीं नहीं ऐसा नहीं अब मेरे साथ बहुत कुछ और भी है। रिश्ते म किसी की पत्नी हूं। ननद और सास भी हैं। पहले इतना बडा परिवार थोडे ही था। बस, ले देके एक भाई था, वह भी नहीं जैसा ।"

तुम खामोश हो गयी। मैंने देखा तुम और भी कुछ कहना चाह रही थी। सिलसिले को आगे बढाने के लिए मैंने कहा, "तुम्हें कुछ और भी कहना है।'

अस्पष्ट मुस्कान से तुमने कहा, "कभी सोचा था कि 'तुम भी मेरे हो।' मेरा मस्तक झुक गया। क्या उत्तर देता। यदि मैं तुम्हारा होता तो विनाश क्यों? यह दुर्दशा क्यों? ढूंढने पर भी मुझे शब्द नहीं मिले कि मैं कुछ कह सकूं। खामोश ही रहने म सद्गति मिली। चुप्पी म भी मेरे मधुरता लिए हुए एहसास सूखे पत्तों की तरह इन शब्दों के वेग से उड गये। मेरा अस्तित्व इतराने के स्थान पर कतराने लगा। अज्ञात शक्ति जब इसे चीरने लगी तब तुमने ही उबार लिया। तुमने पूछा।

"मोहिनी कैसे है ?"

मुझे तिनका मिल गया। पकडकर फूली सांस को राहत दे दी। कहा—

'वह अब नहीं रही।'

रुग्णा मोहिनी की बदौलत मैंने तुम्हें कभी पाया था। आज इसी मोहिनी ने मुझे मेरी हीनता के गर्त मे गिरने से बचा लिया। तुम मोहिनी के चले जाने की सुनकर चीख-सी उठी—

"हां यह पहाड कब गिरा ?"

"गत वर्ष बहुत उपचार हुआ। रोग असाध्य था। बच न पायी।'

इसी क्षण मोहिनी की याद ने सचमुच मुझे झकझोर दिया। मेरी नसें मानो तन रही थीं।

'ऐसी देवी की सेवा करने का अवसर मुझ जैसी अभागिन को नहीं मिला। वास्तव म मैं इसके योग्य भी नहीं थी। राजू और बबलू कहां हैं ?'

"ननिहाल।'

"तुमने समाचार नहीं दिया।"

"अपनत्व म अधिकार सहित तुमने उलाहना दिया था। फिर भी मैं ऐसा नहीं कर पाया। मैं भूल-सा गया। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।" सीधा ही मैं उलाहना दे बैठा।

"तुमने भी वर्षों से दो शब्द नहीं लिखे कभी तो लिखते-लिखते तुम्हारे पन्ने

खत्म हो जाते थे।"

मेरा स्वर वेदना भरी कर्कशता लिए हुए था। जिसमें तुम उलझ गयी। किंतु मेरा आशय यह नहीं था कि तुम उलझी रहो। मैंने कहा, "शालिनी मेरे सभी भ्रम टूट गये। साथ जिए हुए अतीत को भूल नहीं पाई हो। ये लम्हे अंत तक जुड़े रहेंगे। मन को छूता हुआ प्रेम समयानुसार जीवन के पलों को झुनझुनाता भी है और कभी सहलाता भी है।"

मैं तो बहुत कुछ कहने जा रहा था, किन्तु सम्भल गया। वर्षों के बाद मिले क्षणों को ऐसी खोखली अहम् तुष्टि में खोना पागलपन के अतिरिक्त कुछ नहीं था। संयत होकर कहा—

"परिवार में सुखी हो ना?"

किसी ने तुम्हारे घायल अंग पर नाखून चुभा दिये। मेरा प्रश्न तो सीधा औपचारिक था। जानकर मेरे मन को भी टीस लगी कि मेरे प्रश्न ने तुम्हें दुःखी कर दिया। तुम्हारे आंसू डबडबाये। फिर भी संयत होने का प्रयास करके तुमने भरे गले से कहा।

"जो इतनी सुखी नहीं कि खुश हो जाऊं। क्या बताऊं? सुनाने का साहस ही नहीं है मेरे पास।

कुछ समय ठहरकर तुमने अपनी कहानी सुनायी।

"किसे सुनाऊं कोई पास भी नहीं है। चाहते हुए भी अपनों को नहीं लिख पाती। सारा समय संदेह के घेरे में रहती हूं। अब तो थक गयी हूं, दिलीप।"

मुझे सम्बोधन करते ही तुम रो पड़ी। गालों पर आंसुओं ने समानान्तर रेखाएं खींच दीं। ये धाराएं मुख में समा गयीं। जैसे दो सरिताएं सागर में समा जाती हैं। कभी ऐसे आंसू मेरे सीने को छूकर ही ठण्डक पहुंचाते थे। इनका खारापन मिठास में बदल जाता था। पर आज ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। मेरी देह गीली होने के पहले ही तुमने अपने आंसू पोंछ दिए। तुमने जता दिया कि इन आंसुओं पर अब मेरा अधिकार नहीं रहा है। कभी था तो वह नशा था जो हमने किया था। यह नशा अब उड़ गया था।

आंसुओं के थमते ही तुमने ठण्डी आह भरी और कहा, 'अच्छा होता यदि तुम इन्कार नहीं करते।'

यद्यपि ये शब्द मेरे लिए असह्य थे फिर भी जैसे-तैसे कह पाया।

"निःसन्देह मेरी आशंका बुरी थी फिर भी ऐसा कुछ अवश्य था जो मैं हामी नहीं भर सका। भले ही मोहिनी ने स्वीकृति दे दी थी।"

'दीदी का रोग असाध्य था। मैं तो इनकी सेवा ही करती। मुझे पाकर वह धन्य हो जातीं, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं था। उस छोटी बहन मिल रही थी, दिलीप! जब तक रहती संतोष में जीती।'

मेरे मन में अविश्वास ने जड़ पकड़ ली थी। मैं पीछे हट गया। मेरे जैसे सामान्य प्राणी के लिए स्त्री मन की थाह पाना सरल नहीं है। उदारता भी एक सीमा तक सीमित है। मोहिनी की 'स्वीकृति' पर्याप्त नहीं थी। उसकी विशालता सीमा लांघ चुकी थी। सब कभी भी विपरीत दिशा पकड़ सकती थी। भावावश में यदि किसी दिन वह कह बैठती कि 'यह पड़ोसिन सेवा के बदले सब कुछ लूटा रही है,' तो मेरे लिए विनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता। पति पत्नी के सामने ही किसी और को ही वरण कर ले तो यह उसके लिए महा अनर्थ है। वह कह या नहीं किन्तु मौन भाषा कम से कम, मेरे जैसे पुरुष को जानना परम आवश्यक है।" एक बार पुनः भावों से निकलकर संयत हो चला था। मैंने कहा,

"छोड़ दो शालिनी, गलत अतीत को भुला देना ही बुद्धिमानी है। 'गलत' क्या था? इस सोचने का समय न तुम्हारे पास था न ही मेरे पास।

फिर मैंने तुम्हें मेरे बारे में बहुत संक्षिप्त बताया। बच्चे ननिहाल है। एक दो सप्ताह में मिल आता हूं। स्वयं एकाकी जीवन जी रहा हूं। एकाकीपन के स्याह धुएं में डूब गया हूं। अब यह पहले जैसा बुरा नहीं लगता है।

सुनाते सुनाते मैंने भी ठण्डी सांस ली। इसका आभास तुम्हें भी हुआ। पुरुष स्त्री की तरह रोता नहीं। मैं भी नहीं रोया। तो भी मेरा हाहाकार तुम्हारे सामने स्पष्ट था। तुम्हारा हाहाकार मेरे से बहुत अधिक था। विधाता ने तो न्याय नहीं किया सो नहीं किया। हमने भी एक-दूसरे के साथ अन्याय ही किया है। हम हमारे अहम् के निज को प्रकट करना नहीं चाहते थे। इसी का दुःख भोग रहे हैं। अब बखूबी जानते थे कि मोहनी का रोग असाध्य है। थोड़ा-सा ठहरते, मैंने इन्कार किया तो क्या हो गया। तुम्हें इतना अधीर होना नहीं चाहिए था।

अब तो इस हालात में तुम्हें केवल सहना ही है। किसी 'सहने' में छिपा हुआ आनन्द होता है। किन्तु तुम्हारे सहने में आनन्द का अंश मात्र भी नहीं है। बोझ से सारी कमर टूट जायेगी। कष्ट में सुख भोग नहीं होने पर विद्रोह ही निदान रह जाता है। विद्रोह वीरता से जन्म लेता है।"

दब धुएं के गुब्बारे में से अपने को निकालते हुए तुमने कहा, 'सुखभोग की कल्पना करना ही व्यर्थ है। वीरता से विद्रोह कैसे करूं! सब कुछ क्षीण हो गया है। अब वीरता नहीं रही है मुझमें। रस्सी टूट जाने पर गांठ बांध कर जोड़ने वाला ही जब कोई नहीं रहता तो टुकड़ों से बल की आशा धूमिल रहती है। शक्ति बिना क्रान्ति की नींव नहीं। मेरा तो पैदा ही नहा, दिलीप! कहां से विद्रोह की सोचूं! क्या सुख भोग की आशा रखूं?"

सुनकर निश्चय हो गया कि तुम उजड़ गई हो। तन-मन के बोझ से दब चुकी हो। अपनी जिन्दा लाश को विवश होकर किसी अनजान गंतव्य की ओर धकेलती जा रही हो। यदि यह असत्य है तो मन की किसी धूमिल पड़ी हुई लालसा की

धल की परत का उखाडन का तुम असफल प्रयास कर रही हो इस जीवन म, शालिनी।

सोचकर मैंने कहा,

"देखो शालिनी, हम दोनो रेल की समानान्तर पटरिया पर भाग जा रहे है। इन पटरिया की दूरी कभी नही होती। मिलने की चाह होने हुए भी एक निश्चित दूरी पर बन रहगे।"

जब तुमने कहा, "कुछ समय ठहर कर बातें करते हुए मन की तपन को ठडक तो दे सकेंगे।" तब मेरे मन के न जाने कितने घाव खुल गए। शायद य मेरे नही, तुम्हारे ही घाव थ जिससे तुम छलक पडी।

"अतीत के कसमा-वायदा के सामने बम्बई बडा नही। वर्षों तक एक-दूसरे की सुध नही लेना कहा तक उचित है, दिलीप?

यह उलाहना कत्तई नही था। तुम्हारी व्यथा थी जो छलकना चाह रही थी। अविरल आसुआ के प्रवाह म तुम्हारी वेदना कहा तक बह चली, मैं नही जानता था। मैं तो मात्र निश्चल बैठा तुम्हारी ओर निहारता रहा था। पता नही तुम्हे रोता देख क्या मुझे बुरा नही लग रहा था। सत्य तो यह है कि इसम अच्छा भी नही था। अच्छे और बुरे के बीच की कोई स्थिति थी जिसम 'मैं' था।

तुम स्वय के बोझ स हल्की हो रही थी। बहता पानी जिस तरह किनारो स जुड़े मिट्टी क ढेले को फोडकर गला देता है इसी भाति आसू व्यथित मन क असह्य भाव फोड फोडकर गला रह थे।

रवि की वहशत के कारण तुम्हारे टुकडे हो गए थे। इसके व्यवहार ने तुम्हे पस्त कर दिया है। आफिस से आकर घर के सभी काय तुम्हे ही करने पडते हैं। सारा दिन टाइप राइटर पर चली हुई उगलिया तपते तवे की गर्मी मे जलती हैं। रात तक थककर चूर चूर हो जाती हो फिर भी रवि के हम बिस्तर होना अनिवाय है। इसके आग सिमटना आवश्यकता बन गई है। परिवार की दृष्टि तुम्हारी आम दनी पर टिकी हुई है। घर की स्वामिनी होकर भी 'दासी का जीवन तुम्हारे प्रारब्ध म है। मध्यकाल की दासता की पीडा तुम इस बीसवी शताब्दी मे भाग रही हो। तुम नोट बनाने वाला यन्त्र हो। यन्त्र को चलाने के लिए केवल तल की जरूरत होती है। इसम एहसास नही होत। पशुओ के एहसासो की भी कदर की जाती है। तुम्हारे साथ यह भी नही होता

रवि की आय शराब और जुए के अड्डो पर नष्ट होती है। घर-गहस्थी तुम्हे चलानी होती है। इस पर भी तुम गुलामी की बेडियो मे बधी हुई हो

कौन तुम्हे पुचकारता होगा, प्यार के मीठे बोल सुनाकर मान रखता हागा? किससे रूठती होगी? किसको उलाहना देती होगी? कौन थकी देह को स्नेहिल करो से सहलाता होगा? कौन अस्वस्थ होने पर आगे आकर रोटी का कौर मुह

मे देता होगा ? कौन कौन कौन ?

तुम घाणी के बैल की तरह हो। थक जाने पर जिसे चाबुक मारकर याद दिलाया जाता है कि 'तुम्हे केवल चलना है गोलाकार घेरे के अन्दर। स्थान निश्चित किया हुआ है। एक इन्च न इधर न उधर, प्रतिवाद करने का अधिकार तुम्हारा नही है। जब तक तुम घेरे की परिधि मे चलते रहोगे तब तक भोजन मिलता रहेगा। तुम्हारे कन्धे का जुआ तब उतारा जायगा जब स्वामी की इच्छा हो।

शालिनी ! किसे मालूम है कि तुमने पैबन्द लगी साडी को कभी आख उठाकर देखा तक नही है, टूटी चप्पल कभी देखी नही। आज तुम्हारे शरीर पर पैबन्द वाली साडी है। टूटी चप्पल जुडवा कर तुम पहनती हो। जब याद आता है कि 'नई-नई साडिया पहनकर घण्टो तुम मेरे सामने बैठती और दाद न मिलने पर रूठ जाती तो मुझे मनाना पडता।' तो मन विचलित हो जाता है।

मैं कभी नही कहूगा,

सब्र करो, सब्र का फल मीठा होता है। भगवान के यहा देर है अन्धेर नही है। सच्चाई की जीत होती है। तुम्हारी भी विजय होगी। तुम्हारे दुःख के दिन कट जाएगे, आदि-आदि

ये आज झूठे आश्वासन भर है। कर्मों के फल दुर्बल, असहाय और अकर्मण्य व्यक्ति ही भागने की इच्छा रखते हैं। जीवन जीने के लिए है, घुट-घुट कर मरने के लिए नही। आज नारी पुरातन की नारी से सर्वथा भिन्न है पुरुष नारी का मुकुट है, सरताज है। माथे पर धरकर वह धन्य होती है। पुरुष भी स्त्री को मन का आभूषण मानता है। दोनो एक-दूसरे के पूरक है। यदि ऐसा तुम दोनो के लिए नही है तो 'स्वामी' और 'दासी' की दूरी क्या ? तुम्हे अपनी जजीरें तोडने का शत प्रतिशत अधिकार है। इस जनम मे जान बूझकर कष्ट झेलना अपानता के अतिरिक्त कुछ भी नही है। फिर से जनम लेने की बात को आज का युग नकारता है। कल्पना की उडान को मन मे पाले रखना मात्र नादानी है, शालिनी !

अपने स्व को पाने के लिए स्वय के विकास के लिए, एहसासो को मूर्त्त रूप के लिए, अच्छे आदर्शों के लिए गलत व्यवस्था से समझौता करना मूर्खता है। अपनी इच्छा अनुसार कदम बढाने का अधिकार किसी ने तुमसे छीना नही। इतिहास साक्षी है कि नये अच्छे आदर्श अपनाते समय समाज ने सदैव विरोध किया है। इसकी परवाह किए बिना ही तुम्हे आगे बढने का साहस करना है। गलत राह पर चलने वाले पुरुष के मन मे अपनी ब्याहता पत्नी के लिए किसी कर्तव्य का बोध उत्पन्न हो ही नही सकता है। परिवार मे पुरुष के स्वामी बनने पर 'स्त्री' अनायास ही 'स्वामिनी' हो जाती है। शेष सदस्य दूसरे की जाई के लिए जोंक बनकर खून चूसने वाले नही होते। अपने पुरुष के प्रेमपाश मे बधकर नारी की नसो मे जो मधुर सगीत उठता है उसकी कल्पना मात्र से ही वह धन्य हो जाती

है। सदा मिलन की प्यास लिए मोरनी अपने मोर के सामने झूमती रहती है। इतने सुख से वंचित नारी क्यों दुःख दर्द जबकि वह स्वयं सक्षम है। पुरुष समाज के दुःखों को झेलने के लिए, शालिनी इस संसार में तुम्हारा अवतरण नहीं हुआ है। सारा ही जीवन कष्टों को झेलते हो रहना तुम्हारी नियति नहीं है। प्रारम्भ में भाई का सहारा चाहती थी। प्यार में मेरा साथ समझती रही। अब पति के अधीन जो रही हो। अभी तक तुम और का पल्ला ढूंढती रही। पर सभी ने तुम्हें किसी न किसी रूप में तुम्हारे निज की अवहेलना करते हुए छला है। तुम्हारे भावों का सभी ने तिरस्कार किया है।

तुम अवश्य ठगी गई हो। फिर भी अबला नहीं हो। मानव द्वारा चांद पर छलांग मारने वाला समय अब दीन-हीन बने रहने का नहीं है। तिरस्कृत रिश्ता का तिरस्कृत बन रहना अब शोभा नहीं देता। नारी का निद्रा से जगना मृगतृष्णा नहीं है। तुम जैसी नारियां ही वास्तविकता की दहलीज पर पहुंच सकती हैं। ऐसी गेंद बने रहने की आवश्यकता नहीं, जिसे पूरे शक्ति से दीवार की ओर फेंका गया हो। और वह टकरा कर लौटकर पहले के स्थान पर आ गिरी हो।

तुम्हारी दुर्बलता की उसी समय पराकाष्ठा हो गई जब रवि को ट्रेन में उतरते देख तुमने मुझे पार्क में अकेला ही छोड़ दिया। अच्छा ही होता कि तुम हमारा एक-दूसरे से परिचय कराती, पर नहीं तुमने दिखा दिया कि 'पति' का उपनाम संदेह है। संदेह के अपरिमित घेरे में तुम किस तरह जी रही हो, तुम्हारा अंतर्यामी ही जाने। यह भी संयोग ही है कि जब तुम कुंवारी थी, मैं ब्याहता था। अब तुम ब्याहता हो तो मैं अकेला रह गया हूं। तुम्हें यदि प्रसन्न देखता तो बाकी जीवन यादों के सहारे जी लेता किन्तु अब तुम्हें भाग्य के सहारे छोड़ना नहीं चाहता। पहले घर-द्वार के कपाट जड़े हुए थे। अब तुम्हारे लिए खोल दिए हैं। मोहनी से कम सम्मान तुम्हें नहीं मिलेगा। मैं शीघ्र ही तुमसे मिलूंगा। तुम कोई दृढ़ निश्चय कर लेना।

इसने पत्र पढ़कर लिफाफे में बन्द किया और शालिनी के पते पर पोस्ट कर दिया।

पत्र पढ़ते ही शालिनी के होश उड़ गए। वह सोचने लगी, इत्तफाक का मिलना इतना गहराएगा। इसने सोचा तक नहीं था। वह अपने जीवन की परिधि को स्वीकार कर चुकी है। अब तो स्वच्छता-अस्वच्छता जल में घुल गई है अपना स्व गवा चुकी है। जो है नहीं उसे स्वीकारना कैसा। इसे अपने निज से क्या लेना-देना? वह तो तांगे के घोड़े के समान स्वामी की बेंता की आदी हो चुकी है। इसके लिए अपनापन, स्नेह सम्मान पाना मात्र कल्पना रह गया है। विधाता ने इसके लिए उत्पीड़न और प्रताड़ना ही लिख दिया है। अनेकों ऐसी नारियों में से एक यह भी है। इसका ऐसा जीना संसार में कोई भूचाल नहीं कोई नयापन नहीं। वह नगण्य है। नगण्यता ही इसकी नियति है। इसके अन्दर

आने वाले हीन भावों ने इसकी मजाक उड़ाई—वह मानो खिलखिलाकर हंस पड़ी। वह बड़बड़ाने लगी।

वाह रे दिलीप! तुमने तो बहुत कुछ सोच डाला। तुमने तो हिमालय से भी ऊंची उड़ान भर दी। किंतु इसी उड़ान मे मुझे भागीदार करना कहां तक न्याय-संगत रहेगा? यहां तो भाग्य की चलती है। सब-कुछ जानते हुए भी तुम कैसा विचार कर बैठे? किसी का उजड़ा घर भी तो उसका अपना घर ही है, ना।

सोचते-सोचते शालिनी के अन्दर-ही-अन्दर एक अज्ञात प्रवाह वेग से बहने लगा। इसमे उत्साह था। किसी के द्वारा मिला प्रोत्साहन था जो नया चिंतन दे रहा था। अब उसे अपना कोई दोष नहीं दिख रहा था। फिर इस पीड़ित अवस्था में क्या कर मरती रहे? कारण कुछ और है जिसकी पीड़ा यह क्यों भोगे? इस जिन्दगी का लक्ष्य संतुष्टि है। इसे पाने का सामर्थ्य रखते हुए भी वह क्यो इससे वंचित रहे। पाने का इसका भी हक है। वह अपराधी नहीं तो सजा भी नहीं। वह पूर्ण रूप से सबल है, दो-तीन क्या चार पांच का लालन करने की उसकी सामर्थ्य है। रवि के कुकर्म इसका शोषण क्यों करें? अग्नि के सामने चुने हुए श्लोक उच्चारण करते किसी को पति मानना दुख का कारण क्यो बने? इन रूढ़ियां मे क्या धरा है? नारी कोई नहीं है। कहां है सत्यवान? सत्यवान के न रहने से सावित्रियो का होना-न होना बराबर है। नारी अब समान हिस्सेदारी रखती है। बिस्तर के बदौलत जीवन भर नरक की पीड़ा क्यो भोगे?

अब वह भी अकेली नहीं है। शक्ति के संचार ने शालिनी के सोच को बदल दिया। परिवर्तन ने प्रसन्नता पैदा कर दी। वह कुछ भी कर सकती है। अपनी शक्ति की पहचान उसे हो गई थी। वह हिमालय की ऊंचाई तक छलांग लगा सकती है।

अब तक वह बहुत हल्की हो गई थी। आफिस से घर आते ही वह सीधे कमरे में चली गई। किसी से बातचीत नहीं की। सूटकेस खोलकर कपड़े उलटने लगी।

सास ने बदले तेवर देखकर ताना कसा,

"रानी आज चाय नहीं बनायेगी?"

शान्ति से दृढ स्वर में शालिनी ने उत्तर दिया।

'आज राधा चाय बनायेगी।

सुनकर मां बेटी हैरान हो गई। दोनो ने एक-दूसरे को भावो भरी नजरों से देखा। समझ गई कि शालिनी चाय बनाने वाली नहीं। सास ने इसमे अपमान अनुभव किया, जो असह्य था। पुन टोकते हुए कहा—

"रानी बाहर घूमने जायेगी क्या?"

फिर भी शालीनता भर गम्भीर लहजे मे शालिनी ने उत्तर दिया, "जी "

जलती आग मे इस एक शब्द ने मानो घी का काम किया। चिल्लाते हुए सास

ने कहा—

"क्या मतलब ? '

शालिनी इस बार कमरे से बाहर आ गई। कुछ कठोरता से धीमे स्वर में बोली, "ममी, यह घर मेरा भी है। नौकरी पर भेजते समय आपको कुछ एतराज नहीं, तो अब बाहर जाने में क्या हर्ज है ? ममी, यह नहीं भूलियेगा कि घर का खर्चा मेरी कमाई से चल रहा है। '

सास को ये शब्द जलते अंगारों के समान लगे। सारी शक्ति क्षीण हो गई। नीचे से धरती खिसकती हुई प्रतीत होने लगी। सारा बड़प्पन एकदम धराशायी हो गया। तत्काल समर्पण हो गया। राधा सारे हालात को भांपकर माता के हाथ पकड़ उसे रसोई में ले गई। शालिनी ने कमरे में वापस जाते हुए राधा को सम्बोधन किया, ' मेरे लिए भी एक कप बना लेना।"

शालिनी ने देखा कि इसके पास ठीक ढंग की एक ही साड़ी है। हाथ-मुंह धोकर साड़ी पहन ली, और रसोई में आई। चाय पीते-पीते राधा को भी तैयार होने के लिए कहा—राधा यन्त्रवत तैयार होने लगी। राधा के साथ घर से निकलते समय शालिनी ने सास को कहा।

"ममी, हम बाजार जा रही हैं। आप तरकारी बना देना। लौटकर बाकी रसोई हम तैयार करेंगे।"

शालिनी के साथ सवरी राधा को देखकर सास के निकलते असहाय आंसू थम गये। वह समझ नहीं पायी कि शालिनी क्या कर रही है। पल भर पहले का आक्रोश पता नहीं कहां गुम हो गया ? वह समझ गयी कि जो कुछ हो रहा है वह बुरा नहीं कहा जा सकता है। मार्केट में दोनों कुछ घंटे इधर-उधर बेमतलब घूमती रहीं। चाट खायी समोसे खाये। दो समोसे साथ लेकर वे घर लौटीं। शालिनी ने घर आते ही एक समोसा प्लेट में रख सास को दिया और फिर दोनों ने रसोई तैयार की। तीनों ने साथ भोजन किया। शालिनी के व्यवहार ने उसका मन जीत लिया। उन्होंने महसूस किया कि शालिनी बुरा नहीं कर रही। इसका व्यवहार दोनों को भाने लगा। रवि का व्यवहार ठीक नहीं है। शराब से कुछ भी हो सकता है यह ठीक नहीं होता। मन के भाव समीर की भांति मन को ठण्डक ही दे रहे थे। शालिनी के प्रति रवि का अन्याय घृणास्पद लगा। अपना जाया पराई जायी के आगे तुच्छ प्रतीत होने लगा।

राधा ने रसोई की सफाई कर दी। सास की सहायता से शालिनी ने कमरे के अन्दर सभी के बिस्तर लगाए। सास की आंखों में इतराते प्रश्न भांपकर शालिनी मुस्करा दी।

देर रात रवि के कमरे में आते ही सबकी नींद उचट गयी। सारा कमरा शराब की बू से बासने लगा। मां-बेटी को गंध असह्य लगी। वे अपने बिस्तर

बाहर ले जाने के लिए उठी तो शालिनी ने उन्हें रोकते हुए कहा।

"रवि बाहर बरामदे मे सोएगा।" बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए उसने पति का बिस्तर बाहर बिछा दिया। उसे सहारे के साथ बाहर ले आकर लिटा दिया। तब वह रसोई म जाकर भोजन के साथ समोसा भी ले आई। तब तक रवि खर्राटे भरने लगा। न जान क्या आज उसने रवि को जगाया नही। रसोई मे पुन जाकर भोजन ढक दिया और सास-ननद के साथ सोयी रही। माता ने अपने बेटे की अवस्था देखी। आज उसे महसूस होने लगा कि शालिनी किस तरह इस नरक मे रात बितानी होगी। यह तो एक पल भी बर्दाश्त नही किया जा सकता। शालिनी के प्रति अब हमदर्दी भी होने लगी।

सुबह बाहर आते ही शालिनी न देखा कि रवि का बिस्तर गन्दा पडा है। मुह से निकला मल मूत्र गया था। रवि अब भी सोया हुआ ही था। इसकी आख सजल हो गयी। आसू ढुलक गये। आखे पोछकर रवि को जगाया। रवि के बाथ रूम म जाने पर वह रसोई मे चली गयी। रात से ढका भोजन देखते ही फिर रो पडी। समोसा उठाकर चूम लिया और भारी मन से बाहर फेक दिया।

सबके लिए चाय बना लाई। जब रवि को देने लगी तब उसने घृणा भरी नजर से शालिनी को देखा। वह समझ गयी। गभीर स्वर म रवि से मुखातिब होकर कहा—जानती हू, क्या कहना चाहते हो। तुम्हारे कुछ कहन के पहले मेरी बात सुन लो।

"पुरुष का आधिपत्य नारी पर तब तक जायज है जब वह उसके लिए कुछ करे। हित के स्थान पर विनाश लीला करने वाले पुरुष का क्या अधिकार है? यह जानने म तुम सक्षम हो। तुम परिवार को बदबू और उलटियो के अतिरिक्त कुछ नही देते। कर्ज और मर्ज के सिवाय तुम्हारे पास देने को है भी क्या? दोनो की आय होन पर भी एक कमरे वाल किराए के मकान मे रह रहे है। ढोरो के समान बधे हुए पडे है।

"शराब और जूआ तुम्हारी हड्डिया के नासूर बन गये ह। फिर भी तुम घृणा करते रहते हो। जैसे मैं तुम्हारी खरीदी बादी हू सुन लो रवि शालिनी चार चार के लिए कमा रही है। अब यह इस नरक मे नहीं जी सकती। तुम्हे अपनी घृणित आदतें त्यागनी पडेंगी। अपने कुकर्म छोडने होगे। शालिनी यदि घर को स्वर्ग नही बना सकती तो इस नरक भी नही देख सकती।"

कहते हुए शालिनी चाय की प्याली रवि के सामने रखकर रसोई म चली गयी। आज इसने भी चाय नही छुई।

मा बेटी सारा कोलाहल शान्त चित्त से देखती रही। रवि का पक्ष नही लिया। शालिनी के सत्य का इहान आदर किया। नासूर के फोडे को नश्तर से काटना ही बुद्धिमानी है। रवि के झूठे अहम् रूपी नासूर का इलाज प्रताड़ना

ही है।

रवि ने पत्नी का प्रतिकार कमजोर पुरुष की भांति गाली-गलाच से किया। आज इसमें हाथ उठाने का साहस नहीं रहा। शालिनी के शब्दों ने वज्र का काम किया था।

शालिनी के दिन अब इस तरह बीतने लगे। रवि के अतिरिक्त सभी सुखी थे। यह नयी व्यवस्था प्रकाश की अनुभूति थी।

एक दिन रवि बीमार हो गया। डाक्टरों ने फेफड़े की खराबी बतायी। दवा के साथ भी शराब नहीं छूट पायी। धीरे धीरे शरीर निबल होने लगा। कुछ दिनों बाद कभी अचेत भी हो जाता था। डॉक्टरों ने शराब की बिलकुल मनाही कर दी। अब रवि को स्वयं का ध्यान आने लगा, किन्तु शालिनी के प्रति इसका व्यवहार बदला नहीं। एक दिन अर्द्ध चेतना अवस्था में उसे हास्पीटल ले जाना आवश्यक हो गया। एम्बुलेंस आने पर रवि को उसमें लिटा दिया गया। मां निकट बैठ गयी। राधा को आवश्यक बातें समझा कर तथा बाद में हास्पीटल आने का कहकर शालिनी ने जिस समय एम्बुलेंस के पायदान पर पैर रखे थे, उसी क्षण उसने रवि को मां से धीमे स्वर में कहते हुए सुना "ममी, रहने दे कमीनी को, तुम जो हो मेरे साथ।'

रवि ने उसके सीने को छलनी कर दिया। शालिनी घायल हो गयी। ठीक उसी क्षण सड़क के उस तरफ टम्पो से उतरकर दिलीप इधर आने लगा। किन्तु द्वार पर एम्बुलेंस देखकर आशंकित हो गया। उसके कदम ठहर गये।

दिलीप को अपनी ओर आते देख पीड़ित शालिनी ने अपने पैर पायदान से नीचे कर दिए। सास को सम्बोधित करते हुए कहा, "ममी, रवि के साथ तुम जाओ। राधा भी आ जायगी।"

ड्राइवर इशारा समझ गया। गाड़ी स्टार्ट करके चला गया। पराजित शालिनी धीरे धीरे दिलीप की ओर बढ़ती गयी। दिलीप के ठहरे कदम फिर चलने लगे। वह भी शालिनी की ओर आने लगा। अचानक एक खाली टेम्पो इन दोनों के बीच आ गया। शालिनी ने उसे रोक दिया। शीघ्रता से अन्दर बैठते ही ड्राइवर को चलने के लिए कहा।

मैडम कहां ? चालक ने पूछा।

वह चौंक पड़ी। मानो वह गहरी निद्रा से जागी हो।

"जनरल हॉस्पीटल।" शालिनी का उत्तर था। जाते जाते उसने देखा कि दिलीप इसकी ओर निहार रहा था। उसने पर्स में से दिलीप का पत्र निकाला। अपने ललाट से लगाकर चूम लिया, कुछ पल इसे देखती रही। फिर अनगिनत टुकड़े कर हवा में उड़ा दिये। □

# त्यागपत्र

कमलेश शर्मा

त्रेता युग मे सम्पूर्ण समाज मे उपेक्षित गौतम नारि ने उपल देह धरी थी अथवा नही यह तो कविता नही देख पाई थी, लेकिन कामिनी ने अपन पति से उपेक्षित हो जिस सहज गाम्भीर्य को अपने स्वभाव का अभिन्न अग बना लिया था उसे वह रोज देखती थी।

रिक्त कालाश हो या मध्यान्तर या राह बाजार की हसी, ठिठोली न मुस्कराती न खिलखिलाती—कभी काम मे व्यस्त रहती तो कभी शून्य म कुछ तलाशती रहती।

इस विद्यालय मे सस्था प्रधान बनकर आए कविता का कुछ ही दिन हुए थे। शहर के साथ लगा हुआ गाव और गाव का प्राइमरी स्कूल। बीस किलोमीटर का रास्ता तय कर भागी-दौडी स्कूल पहुचती थी सभी। सभी की अपनी-अपनी समस्याए थी। उन्ही की चर्चा कभी किसी की पारिवारिक पृष्ठभूमि का विवसन करती, तो कभी राह की भोली बालिका सहज सहानुभूति स भर उठती "देख री लम्बे तडके ही भागी कोटा सो' तो उसकी ईर्ष्यानु सखि व्यग करती, "तरतरातां माल खाव छ" ता कभी प्रगल्भ प्रत्युत्पन्नमति अध्यापिका जवाब देने से भी बाज न आती "थाका माटी कर ख्वाब छ, म्हान तो आज चाय भी न मली" कभी किसी के गोपनीय प्रेम प्रसगा की कथा सुनाती कोई कथावाचक बन बैठती। उस दिन भी विभा इसी प्रकार की कोई कथा स्टाफ रूम मे सुना रही थी कि कविता को अपनी बात सुनाते देख चुप लगा गयी। स्टाफ रूम भी तो नाममात्र का था एक ही कक्ष के दो भाग कर प्रधानाध्यापक कक्ष एव स्टॉफ रूम बनाया गया था अत अन्तिम वाक्य जो विभा ने कहा था वह कविता के काना म पडे बिना भी न रह सका, वह रही थी—'बेचारी स्कूल भी नही आई आज डर के मारे, कल रास्ते मे ही पति ने रोक लिया था।"

उस दिन कामिनी स्कूल नही आई थी, अत कविता को समझत देर न लगी

कि किसकी कथा इतना रस ले लेकर कही व सुनी जा रही है। उसकी भी जिज्ञासा तो थी लेकिन सकोचवश कुछ पूछ न सकी और फिर एक दिन स्वत ही कथा का सम्पूर्ण प्रवाह कविता की जिज्ञासा शात करने आप ही आप प्रबल वेग से उसकी ओर प्रवाहित हो उठा।

खेल कूद प्रतियोगिता मे छात्राओ के साथ जाने की बात थी। विभाजी के नाम आदेश निकाला गया था कि आदेश-पुस्तिका हाथ मे लिए विभाजी तत्काल कार्यालय मे आ उपस्थित हुई।

"मैडम, मेरा बच्चा बहुत छोटा है। मैं नही जा सकती, आप कामिनी जी को ले जाइए।"

कविता ने आदेश आभाजी के नाम निकाल दिया। आभा ने तुरन्त सफाई पेश की। "मैडम मेरे पति को बिल्कुल पसन्द नही है कि मैं रात को घर से बाहर रहू।" फिर कुछ रुककर बोली—"आप कामिनी जी को ले जाइए न।"

दो अध्यापिकाओ द्वारा प्रस्ताव रखे जाने पर भी कविता ने इस बार आदेश मालती के नाम निकाला। मालती अविवाहित है आते ही बोली—"मेरे माता पिता हरगिज नही भेजेंगे।" फिर मथरा की सम्पूर्ण कुटिलता मे कटाक्ष किया उसने, "मैडम आप कामिनी जी को ले जाइए न। उन्हे तो पति ने छोड रखा है। कोई जिम्मेदारी नही है उन पर, न कोई वालि न वारिस।

कविता ने गुस्से से टोका, "माता पिता बाहर भेजना पसन्द नही करते तुम्हारे, मुह से ऐसी बातें सुनना पसन्द करते है क्या?"

फिर स्टॉफ सेक्रेट्री से परामर्श किया उसने, तमककर बोली—"अरे वाह जाएगी कैसे नहीं, सरकारी नौकरी है। ऐसा कीजिए मैडम लिखित मे एक एक से ले लीजिए। इनके गोपनीय प्रतिवेदन मे नोट लगाने की धमकी दीजिए। तब आएगी अक्ल ठिकाने।"

कविता ने प्रस्ताव रखा "तो आप ही चलिए न।"

हकलाकर बोली, "मै मैं कैसे चल सकती हू। मेरे पति बिल्कुल पसन्द नही करते। आप तो स्वय जानती है।"

कविता हौले से मुस्करा दी। फिर कामिनी को ले जाना ही तय रहा। प्रतियोगिता स्थल पर कामिनी की कर्तव्यपरायणता ने मन मोह लिया उसका। मौका पा प्रश्न किया उसने—

"तुम इतनी शात, गम्भीर, कर्त्तव्यपरायण हो फिर पति मे झगडा कैसे हो गया।"

कामिनी ने टालने की बहुत कोशिश की, कविता पीछे पड गयी तो बोली—"झगडे का कारण तो कुछ भी हो सकता है। कहावत है न—मेरे कोई भी मेरे कोई शुरू से ही लापरवाह हैं। माता पिता से भी नही बनती दोस्तो के बहकावे मे

भटक रहे है बस ।"

"विवाह को कितने वष हो गए ।"—पाच वष ।

"और अलग रहत ।"

"चार वष ।"

"ओह, तुम तलाक क्यो नही ले लेती । सुना है राह बाजार मे भी रोककर तुम्हे परशान करते रहते हैं ।"

"तलाक लेकर भी क्या करुगी ?"

"दूसरा विवाह कर लेना, अभी तुम्हारी उम्र ही कितनी है । इतनी बडी जिंदगी कसे गुजारोगी अकेले । पिताजी नही रहे । मा आज है, कल नही रहेगी । भाई अभी बहुत अच्छे हैं, कल घर मे पराई जाई भौजाई आएगी तब क्या निभा पायेंगे तुम्हें ।"

"एक विवाह से तो निहाल हुई, दूसरा करके क्या मिलेगा और फिर परित्यक्ता से विवाह भी कौन करेगा ? मर्दों का क्या, सभी एक स होते हैं । जवानी का जोश है । भटक-भटकाकर आएग मेरे ही दर और जाएगे कहा ?"

'वाह ! क्या आइडिया पाल रखा है । सारी उम्र खाक छानोगी फिर बुढापे मे राह बाजार की धूल को मस्तक पर चढा पति परायण होने का पुण्य कमाओगी । पढी लिखी होकर भी वही दकियानूसी बातें ! मैं तो एक बात कहती हू, "अपनी नही तो कभी नही । जानती हो तुम्हारी इस मजबूरी का, इस स्थिति का लाभ तुम्हारी सखिया, सहेलिया रिश्तदार सभी उठाते हैं ! तुम्हें उपक्षित भी करते हैं और बहती गगा मे हाथ भी धोत हैं ।"

कामिनी न अपनी बोभिल पलके उठाकर गिरा ली मानो कह रही हो—मैं सब जानती हू ।

कविता ने बात आगे बढाई, "मुझे मिलवाओ कभी, मैं बात करुगी ।"

कामिनी ने मौन तोडा, "क्या करेगी मिलकर । अभी उन्ह कोई नही समझा सकता ।"

उन दिना अद्ध-वार्षिक परीक्षाए चल रही थी कि कार्यालय मे बिना किसी आना के एक महानुभाव ने प्रवेश किया । कविता मेज पर कुछ लिख रही थी, कामिनी पास ही बैठी कापिया गिन रही थी । कामिनी को देख आगन्तुक के कदम जहा थे तहा रुक गए । सम्पूण देह रोमाचित हो उठी । कामिनी के चेहरे पर अनायास लालिमा दौड गई फिर तिरछे नयना से निज पति का परिचय प्रदान कर त्वरित गति स वह कमर से बाहर हो गई । कविता निमिष मात्र को ठगी-सी, विस्मित-सी, देखती रह गई फिर सब समझ गई ।

उसने आगन्तुक से प्रश्न किया, "कहिए ?'

'जी, इनस मिलना है ।'

"इनस, किनस," कविता ने शरारत से अपने चारों ओर देखकर प्रश्न किया, "यहा तो कोई नही है।"

"कामिनी जी, अभी अभी तो यही थी, मेरी पत्नी हैं।"

कविता ने उसी सहजे म प्रश्न किया, "अच्छा आपकी पत्नी हैं। मैं तो इन्हे अविवाहित ही समझती थी। इन्होने कभी जिक्र नही किया आपका।" फिर उसन चपरासी को पुकारा।

"जरा कामिनी जी को बुला लाओ।" कामिनी वही दरवाजे की ओट खडी थी, उसने उत्तर दिया—"हीरालाल जी ! कह दो इनसे, मैं मिलना नही चाहती।"

जवाब महाशय ने दिया, "मिलना नही चाहती, बाप का राज समझ रखा है? क्या समझती है अपने आप को?" और आग बबूला हो दरवाजे की ओर लपके। कविता न टोका—

"रुकिये क्या करते हैं आप? यहा प्राइमरी और सकण्डरी दो स्कूलो की परीक्षा चल रही है। बैठकर तमीज से बात कीजिए, बैठिए पहले।" फिर पूछा उसने—

"आपका शुभ नाम?"

"देवी लाल।"

"कहा काम करते है?"

"रेलवे अस्पताल मे।"

"अच्छा वहा के चीफ साहब तो मेरे सम्बन्धी होते हैं, वही गुप्ता जी।"

"जी हा, जानता हू, मेरे अधिकारी हैं।"

अपने अधिकारी की सम्बन्धी हैं यह जान देवीलाल ने अपने व्यवहार को सयमित करते हुए कहा, "देखिए न मैडम, इन्होने मेरी जिन्दगी दूभर कर रखी है। न तलाक देती हैं, न साथ रहती हैं।

"आप क्या सचमुच तलाक लेना चाहते है।"

देवीलाल जी ने रौब से कहा, "और नही तो क्या ! समय रहते दूसरी शादी तो कर लूगा कम-से-कम।"

"यदि ऐसा ही है तो लाइए कागज मुझे देते जाइये। मैं साइन करवा कर आपको भिजवा दूगी। अभी नही लाए तो तयार कर वकील से भिजवा दीजिए। इन्हे समझाने का जिम्मा मैं लेती हू।"

देवीलाल जी तैश मे आ गए, "आप कौन होती हैं जिम्मा लेने वाली? हमारा पति-पत्नी का मामला है। मैं तो इन्हे लेने आया हू। अभी चोटी पकड घसीट ले जाऊगा।"

कविता अवाक सुनती रह गई। आज प्रात ही तो देखा था उसने—चौराहे पर पहले लाता घूसा से एक नवयुवक ने स्त्री की पिटाई की, फिर टाग पकड घसीट

कर सडक के पार ले गया था। उसकी सम्पूर्ण देह मे सिहरन व्याप गयी। चुप वह वहा भी नही रही थी। उसने आस-पास के लोगो से कहा था—देखो-देखो, कसे घसीट रहा है, कोई छुडाओ।

आस पास खडे लोग तमाशा देख रहे थे, हस रहे थे। कह रहे थे य मामा भील हैं। इन लोगो म यह सब चलता है। आप अपने रास्ते जाइये। इस समय कविता सोच रही थी आखिर किन लोगो म यह सब नही चलता। क्या भेद है उस गवार और इस पढे लिखे नवयुवक म।

वह भी तैश म आ गई, "हाथ लगा कर तो देखिए, पत्नी है या बेजान गुडिया? जब तक जी चाहेगा खेलेंगे फिर राह म, हाट म, बाजार म कही भी तोडकर फेंक देंगे? क्या विवाह इसी अधिकार प्राप्ति का नाम है। इस समय मैं उसकी अधिकारी हू, गडबड करेंगे तो पुलिस को बुलवा लूगी।"

देवीलाल जी भी कम न थे, बोले—"बडी आई अधिकारी, मैं भी देखता हू कैसे बुलवाती है आप पुलिस।"

"आप ऐसे नही मानेंगे।" कविता ने चपरासी को पुकारा—"हीरालाल जी जाओ थाने से सिपाही को बुला लाओ। परीक्षा स्थल पर अव्यवस्था फैलाना क्या कम जुर्म है।"

देवीलाल को विश्वास न था कि बात इतनी बढ जायेगी। वह तो महज डरा धमका कर पत्नी को लिवाने आये थे। अकेले रहते उकता गये थे, लेकिन कमजोर भी नही पडना चाहते थ।

हीरालाल को अपने स्थान पर अविचल खडा देख, कविता ने डाटा, "जाते हो या नही।"

बेचारा हीरालाल भारी कदमो से जाकर सिपाही को बुला लाया। देवीलाल नही चाहता था कि घर परिवार की बात थाने कचहरी तक जाए।

वास्तव म सिपाही को आया देख देवीलालजी सकते मे आ गये और कार्यालय से बाहर जाकर खडे हो गये। कविता ने दबी जबान से सिपाही को कहा, 'हमारे जवाई जी हैं, कुछ बहक गये है। फिलहाल यहा से ले जाइये, कुछ घण्टा बाद छोड दीजिएगा।' सिपाही देवीलालजी को लेकर चला गया। कविता स्वय कामिनी को सग लेकर उनके अधिकारी महोदय के कार्यालय म जा धमकी, उसने पूरी दास्तान कह सुनाई। अधिकारी महोदय ने पहले तो आना कानी की, बोले—

'पति-पत्नी का मामला है हम कर भी क्या सकते है।'

"समझा तो सकते है। कुछ दबाव भी डाल सकते हैं। वैसे वह भी तलाक नही चाहता है, डराना चाहता है और यह भी रहने को तैयार है। दोनो ओर आहत अभिमान है बस, शायद हमारे हस्तक्षेप से कोई राह निकल आए।"

थाने मे बैठे देवीलाल जी योजना बना रहे थे कि होने दो छुट्टी, अभी बताता

हू । सिपाहियों को चाय नाश्ता करवा कर समझ रहे थे कि उसने चाय पिला कर ही सबको बस मे कर रखा है। सबका व्यवहार कितना अच्छा है। स्कूल पहुच तो हाथों के तोते उड गये। दोनो स्कूल से नदारद थी। शेष सब वही थी उपहास का पात्र ही बनना पड़ा था उसे। वहा दाल न गली तो सोचा ठीक है, चीफ साहब की रिश्तेदार हैं, समझूगा।

आफिस मे शाम को जैसे ही पहुचे, चीफ साहब ने पूछा, "कहा थे दिन भर से?"

"जी पत्नी से मिलने गया था। वहा वो उनकी प्रधान है न, अपने आपको आपकी सम्बन्धी बता रही थी। उन्होने बिना वजह मुझे थाने म बन्द करवा दिया था। बडी मुसीबत मे फस गया था। मुश्किल स छूट कर आया हू।"

चीफ साहब हसकर बोले, "और तुमने कुछ नही किया था? अभी-अभी यहा से गई है दोनो।"

दवीलाल जी को सिर खुजलाते देख आग बोले, "यदि वास्तव मे बन्द करवा देता, तुम्हारी लिखित रिपोर्ट कर देती तो यहा तुम्हारी जमानत भी कौन करवाता। अब जाओ यहा से, भविष्य मे ऐसी कोई खुराफात की तो याद रखना।"

अब दवीलाल जी घबराए से रहने लग। सोचते—कामिनी तो सीधी साधी है। अब तक आश्वस्त थे। कही भी है, उनकी अपनी है। अब कविता बीच म आ गई थी चण्डिका-सी, कही वास्तव म तलाक हो गया तो कमाऊ बीवी हाथ से निकल जायेगी। घर के बडे बुजुर्गों की बीच मे डाल शीघ्रता से सुलह कर ली। कामिनी को घर लिवा लाये। कविता का समाचार मिला, प्रसन्नता स दौडी गई, "बधाई हो कामिनी, नई जिन्दगी मुबारक हो। आखिर तुमने सुलह कर ली।"

मुस्करा कर उत्तर दिया कामिनी ने "मैंने तो उपेक्षिता के पद से त्यागपत्र दिया है बस।



# बैसाखिया

पूनाराम कमाणी

तग सडक पर उस वक्त आमने-सामने दो ट्रक आ जाने के कारण आवागमन ठप्प प्राय-सा हो गया था। ट्रफिक पुलिस वाला आवागमन को सुचारु बनाये रखने हेतु बार-बार सीटी बजा रहा था पर पास ही सब्जीमडी से सब्जी व्यापारियो की ऊची आवाज के तल कही दबकर रह जाती उसकी फुर फुर ।

ट्रक वहा से पास हो गये थे। अचानक बच्चे-बुड्ढो का हुजूम-सा पुलिस थाने की तरफ आता-सा महसूस हुआ। पुलिस के चार जवानो की गिरफ्त मे आया वह मासूम सा बच्चा पुलिस के डण्डे की मार खा-खाकर घायल हो गया था। घुटने के नीचे लगी चोट के कारण बहुत तेजी से खून बह रहा था। चारो तरफ मौत का सा आतक छा गया था। एक बच्चे की करुण सिसकिया रह रहकर वातावरण मे तैर जाती पर हुजूम म सम्मिलित सभ्य बच्चे ' वे ठहर ऊचे घरो के। उन्हे क्या पता कि चोट कसी होती है और उसका प्रभाव क्या होता है ? वे सब बच्चे को रोते देख तालिया बजा-बजाकर मजा लूट रह थे।

बच्चा बार-बार चिल्ला रहा था, गिडगिडा रहा था—"मुझे छोड दो साहब। मैने कौन सा बुरा काम कर दिया है ?" पर उस बेचारे की कोई सुन तब ना । जब भी वह रोता, पुलिस का जवान धीरे-से छुपकर उसकी पीठ ऊपर एक डण्डा जमा देता और यह दबाई पा बच्चा सहम जाता । अतत बच्चे को थाने आने की रस्म अदा करनी पडी। थाने के अन्दर लाकर पुलिस वालो ने बच्चे को, उस मासूम को तपती चौकी पर किसी निर्जीव वस्तु की मानिंद पटक दिया। बच्चा जो रोने के लिए स्वतत्र न था सिर्फ कराह कर रह गया ।

बच्चे की यह दुर्गति देख हवलदार रमेश का दिल स्वय के प्रति खिन्नता से भर गया। उसने स्वय को धिक्कारा अपने आपको नियन्त्रित करते हुए उसने महसूस किया कि बच्चा याचक और प्यासी नजरें लिये उसी की तरफ ताक रहा है, रहम की भीख माग रहा है । यह देख रमेश की आखो म आसू बह चले ।

हू। सिपाहियों को चाय नाश्ता करवा कर समझ रहे थे कि उसने चाय पिला कर ही सबको वश में कर रखा है। सबका व्यवहार कितना अच्छा है। स्कूल पहुंच तो हाथों के तोते उड़ गये। दोनों स्कूल से नदारद थीं। शेष सब वहीं थी उपहास का पात्र ही बनना पड़ा था उसे। वहां दाल न गली तो सोचा ठीक है, चीफ साहब की रिश्तेदार हैं, समझूंगा।

आफिस में शाम को जैसे ही पहुंचे, चीफ साहब ने पूछा, "कहां थे दिन भर से?"

"जी पत्नी से मिलने गया था। वहां वो उनकी प्रधान हैं न, अपने आपको आपकी सम्बन्धी बता रही थी। उन्होंने बिना वजह मुझे थाने में बन्द करवा दिया था। बड़ी मुसीबत में फंस गया था। मुश्किल से छूट कर आया हूं।"

चीफ साहब हंस कर बोले, "और तुमने कुछ नहीं किया था? अभी-अभी यहां से गई हैं दोनों।"

देवीलाल जी को सिर खुजलाते देख आगे बोले, "यदि वास्तव में बन्द करवा देती, तुम्हारी लिखित रिपोर्ट कर देती तो वहां तुम्हारी जमानत भी कौन करवाता। अब जाओ यहां से, भविष्य में ऐसी कोई खुराफात की तो याद रखना।"

अब देवीलाल जी घबराए से रहने लगे। सोचते—कामिनी तो सीधी-साधी है। अब तक आश्वस्त थे। वही भी है, उनकी अपनी है। अब कविता बीच में आ गई थी चण्डिका-सी, कहीं वास्तव में तलाक हो गया तो कमाऊ बीवी हाथ से निकल जायगी। घर के बड़े बुजुर्गों को बीच में डाल शीघ्रता से सुलह कर ली। कामिनी को घर लिवा लाये। कविता को समाचार मिला, प्रसन्नता में दौड़ी गई, "बधाई हो कामिनी, नई जिन्दगी मुबारक हो। आखिर तुमने सुलह कर ली।"

मुस्करा कर उत्तर दिया कामिनी ने, "मैंने तो उपेक्षिता के पद से त्यागपत्र दिया है बस।"



# वैसाखिया

## पूनाराम कमाणी

तग सडक पर उस वक्त आमने-सामने दो ट्रक आ जाने के कारण आवागमन ठप्प प्राय-सा हो गया था। ट्रैफिक पुलिस वाला आवागमन को सुचारु बनाय रखने हेतु बार-बार मीटी बजा रहा था पर पास ही सब्जीमडी से सब्जी व्यापारियो की ऊची आवाज के तल कही दबकर रह जाती उसकी फुर फुर।

ट्रक वहा से पास हो गय थे। अचानक बच्चे बुड्ढो का हुजूम-सा पुलिस थाने की तरफ आता-सा महसूस हुआ। पुलिस के चार जवानो की गिरफ्त मे आया वह मासूम सा बच्चा पुलिस के डण्डे की मार खा खाकर घायल हो गया था। घुटने के नीचे लगी चोट के कारण बहुत तेजी से खून बह रहा था। चारो तरफ मौत का-सा आतक छा गया था। एक बच्चे की करुण सिसकिया रह-रहकर वातावरण म तर जाती पर हुजूम म सम्मिलित सभ्य बच्चे ! वे ठहरे ऊचे घरो के। उन्हे क्या पता कि चोट कसी होती है और उसका प्रभाव क्या होता है? वे सब बच्चे को रोत देख तालिया बजा-बजाकर मजा लूट रहे थे।

बच्चा बार-बार चिल्ला रहा था, गिडगिडा रहा था—"मुझे छोड दो साहब। मैने कौन-सा बुरा काम कर दिया है ?" पर उस बेचारे की कोई सुने तब ना। जब भी वह रोता, पुलिस का जवान धीरे-से छुपकर उसकी पीठ ऊपर एक डण्डा जमा देता और यह दवाई पा बच्चा सहम जाता। अतत बच्चे को थाने आने की रस्म अदा करनी पडी। थाने के अदर लाकर पुलिस वालो ने बच्चे को, उस मासूम को तपती चौकी पर किसी निर्जीव वस्तु की मानिद पटक दिया। बच्चा जो रोने के लिए स्वतत्र न था सिर्फ कराह कर रह गया।

बच्चे की यह दुर्गति देख हवलदार रमेश का दिल स्वय के प्रति खिन्नता से भर गया। उसने स्वय को धिक्कारा अपने आपको नियत्रित करते हुए उसने महसूस किया कि बच्चा याचक और प्यासी नजरें लिय उसी की तरफ ताक रहा है, रहम की भीख माग रहा है। यह देख रमेश की आखो मे आसू बह चले।

वह स्वय को रोक नही सका और पुलिस स्वभाव के विपरीत लपकता हुआ बच्चे के पास पहुचा। बच्चा हवलदार के कदमो के पास पडा, हवलदार के चेहरे की ओर ताकने लगा। उस भय था कि हवलदार के कदम उठकर उसके मासूम जिस्म को कुचल न दे।

"क्या बात है क्यो पीट रहे हो इसे ?" हवलदार गरजती आवाज म सिपाहियो की ओर देखते दहाड उठा।

"साहब, यह सब्जी वालो के फल चुराता है " सिपाही दबी हुई आवाज मे बोला।

हवलदार का चेहरा तमतमान लगा। उपस्थित जन समुदाय को घूरकर हवलदार ने खिन्नतापूवक पूछा—"यहा सदाबरत बट रहा है क्या ? जाआ अपना काम करो।"

हवलदार की खुरदरी आवाज सुनकर सभी लोग धीरे धीरे वहा से खिसक गए। रमश धीरे-से नीचे झुका और बच्चे को अपनी बलिष्ठ बाहा म उठाकर अपने चैम्बर म घुस गया। सिपाही एक-दूसरे क मुह ताकन लगे।

'क्यो बट क्या बात थी ?' हवलदार रमश न पानी से भरा जग लडके को दिया।

' भूखा था, साहब लडका पानी पी नही सका। घबराता हुआ ही बोल पाया।

"घर मे और कौन-कौन है ?'

"मा, बापू और दो छोटे भाई

"तुम्हार बापू क्या करते हैं ?'

' कुछ नही साहब, मा चौका-बतन करती है, उन पसा को बापू दारू पी जाते हैं, हमें अक्सर मार ही सहनी पडती है खाना नही ' बच्चा कातर हो उठा था। हवलदार रमश की आखो के आगे धुधलका छा गया। उसे अपनी आखो के आग एक भूला बिसरा दश्य फिर स स्पष्ट होता दिखलाई देने लगा।

रमश अपन मा-बाप क साथ इसी कस्बे क जाटिया कुए क पास बनी अपनी गोबर पुती झोपडी मे रहता था। रमेश का पिता मुश्किल से परिवार का खच भर निकालन की स्थिति म था, फिर भी न जान क्या धुन थी कि वह रमेश को पढाने क लिए उत्सुक था, न जाने कितन पापड उसन बले और रमेश को नवी कक्षा तक पहुचा दिया। घर म सिफ तीन ही प्राणी थ। यद्यपि उनकी गरीबी की कहानी उनक तार-तार कपडो म म झाकता बदन स्वय ही कह देता था पर तिस पर भी व अपनी दयनाय स्थिति को लोगा की मखौल का शिकार नही बनन देना चाहते थे। रमेश के बापू का प्रधानत यही विचार था कि सुख-दुख तो घिरत बिरत की छाया है जो आदमी क जीवन म आत-जात ही रहत हैं और इसी धारणा की

बसाखी पर घर के अन्य प्राणी सतोष धारण किये बठे थे।

नवी कक्षा तक तो रमश को उसके बापू ने जैसे-तसे पढवा दिया पर परि-स्थितियो क ज्वार के आगे अतत उनके भी घुटने टिक ही गये। कगाली मे आटा गीला वाली कहावत ता जैसे उन्ही के लिए प्रचलित हुई थी। रमेश की मा को लकवा हो गया। मा को तो लकवा हुआ सो हुआ, स्वय उसकी पढाई को भी लकवा मार गया। वह अच्छी तरह परिचित था कि बगैर मैट्रिक किये नौकरी की आशा रखना आकाश कुसुमवत है और इसी कारण उसकी दिली तमन्ना थी कि वह जैसे भी सम्भव हो सके, मैट्रिक तो कर ही डाल। पर पढाई जारी रख तो भी आखिर किस आधार पर । घर म दो वक्त की बजाय प्राय एक बार ही चूल्हा प्रज्वलित किया जाता है मा की बीमारी न उनकी गरीबी के रहे सहे कपडे भी उतार डाल। अब अपनी लाज रखे तो कैस ?

घर की आर्थिक स्थिति और कमर-तोड महगाई को मध्य-नजर रखत हुए उसके बापू न उसको किसी छोटे मोटे काम पर भेजने का निर्णय ले लिया था। रमेश की मा उसे पढान की पक्षधर थी, पर पेट की ज्वाला का ताण्डव नृत्य होता देख वह भी मन ममोसकर रह जाती बेचारी।

अपनी स्टडी जारी रखन बाबत रमश अपने अतरग मित्रो से भी मिला, पर वे पहल स ही हरी झण्डी लिए तैयार खडे थ। जसे, सबने कोई-न कोई बहाना बना कर उसे या ही टरका दिया। यदि थोडे-बहुत पसा की जरूरत होती तो शायद कोई हा भी कर लेता पर यहा तो सवाल पूरे सौ रुपये का था। फीस माफी की अर्जी भी हवा के झोंके से उडकर उसी की पाकिट म आ जमी थी। वैसे भी स्वाथ बगर कौन किसी की सहायता करता है और रमेश की तो ऐसी कोई हालत भी नही थी कि किसी को उससे कुछ आशा होती।

चारो तरफ स घिरे होन के कारण रमेश के जेहन मे अच्छे और बुरे दोना प्रकार के विचार आन लगे। परिश्रम करने का विचार दुनिया की तपती अथ-व्यवस्था स टकराकर चूर चूर हो गया। समय कहा था कि वह सौ रुपया की मज-दूरी करके फीस जमा करवा दे मजदूरी करते-करत यह तो क्या अगला साल भी निकल जायगा परिवार की मुश्किला के झझावात से वो कब तक मुकाबला कर सकेगा उधार मागने पर उस देगा ही कौन ?

शाम का समय था। इस वक्त कस्बे क एकमात्र सिनेमा हॉल पर नई फिल्म को देखने को आतुर लोगो की भीड मची थी। इसी भीड के अन्दर रमेश भी शामिल हो चुका था। रमश अनजान म ही सिनेमा हाल तक आया था। टिकट-खिडकी पर लोगो की खासी भीड थी। रमेश की नजरें बार-बार टिकट खिडकी के लहरात हरे-नीले-गुलाबी नोटो पर अटक अटक जाती। साथ-ही-साथ अपनी

के प्रति रोना भी आता।

"तीन वाली बीस मे—तीन वाली " ब्लैक मे टिकट देने वाले की आवाज गूज रही थी। कई आलसी प्रवृत्ति के धनी उसकी तरफ लपक रहे थ। उनकी जेबो से नोट निकलकर ब्लैक करने वाल की पाकिट म जा रहे थ। रमेश मन ही मन ब्लैक करने वाले की पाकिट की तुलना अपनी जेब से करने लगा। नोट कसे आते है देखते ही-देखत रमेश का हाथ उस मोटी तोद वाले बाबू की जेब पर गया और सौ सौ के दो-तीन नोट रमेश के हाथ मे आ गए। बिना किसी प्रशिक्षण के काय करना कितना दुरूह होता है, यह रमेश को मालूम नही था। उसका नोट वाला हाथ न जान कितने हाथो की चोट खा रहा था। नोट इस धक्कम मुक्का म न जाने कहा चले गये।

लोगो का हुजूम थाने मे पहुच चुका था। रमेश स्वय सवी पुलिस के हाथा बुरी तरह पिट चुका था। हगामा सुन हवलदार कौशिक बाहर आए। किसी स्वय-सेवी ने धक्का दिया। रमेश कौशिक कदमो के पास जाता गिरा। क्या बात है ? कौन है यह ?" हवलदार की कडकदार आवाज गूजी। तमाशाई पीछे खिसकने लगे। मोटी तोद वाला बाबू आगे आया।

"साहब, इसने मेरे पाकिट स पैसे निकाले "

"कहा हैं पैसे ?" हवलदार कौशिक उस मोटी तोद वाले बाबू को घूर घूरकर देखत हुए बोला। बाबू सहम गया।

"तरे पास है छोकरे ?" कौशिक ने रमश की तरफ आखें निकालत हुए पूछा। पर रमश तो हवलदार के कदमा पर गिरते ही अपने होश गवा चुका था। हवलदार ने तलाशी ली। कुछ भी नही था। हवलदार को गुस्सा आ गया। मोटी तोद वाले की तरफ देखते हुए हवलदार दहाडा—"बच्चे को पीटा पस इसके पास है ही नही फिर यहा क्यो लाय हो ? बोलो ? निकलो यहा से, फालतू चले आते है, परशान करने।' हवलदार की गरज सुनकर तोद वाले बाबू के साथ-साथ सभी तमाशाई चले गये। उनके जाने के बाद कौशिक का ध्यान रमेश की तरफ गया। सिपाही से पानी मगवाकर पानी के छीटे रमेश के चेहरे पर मारे। रमेश ने मिचमिचाकर आखे खोली। कौशिक ने उसके सिर पर हाथ फेरा। 'अब कैसे हो बेटे ? ' कौशिक की आवाज म वात्सल्य झलक रहा था। मीठी आवाज से प्रभावित रमेश उठ बैठा।

"साहब मैं चोर नही हू मैं पढ़ना चाहता हू मैं चोर ' रमेश बुक्का फाडकर रो पडा। कौशिक ने उसे सात्वना दी।

"अच्छा बेटे, तुझे मैं पढाऊगा तुम्हे चोर नही थानेदार बनाऊगा।' रमश

फिर घर गया तब हवलदार कौशिक साथ ही था। रमेश के बापू से कहकर उसने रमेश को अपने घर रख लिया, पढ़ाया और आज ?

रमेश को ऐसा लगा जैसे उसके सामने वह छोटा बच्चा नहीं एक और इन्सपेक्टर बैठा है। उसने उच्चे को भुककर चूम लिया। बालक हतप्रभ रह गया। रमेश की बलिष्ठ बाहें उसकी तरफ बढ़ रही थी, जैसे दो बैसाखियां किसी अपंग को ऊंचा उठाकर चलने का सम्बल प्रदान कर रही हों। ☐

के प्रति रोना भी आता।

"तीन वाली बीस म—तीन वाली " कन्डक्टर म टिकट देने वाले की आवाज गूज रही थी। कई आलसी प्रवत्ति के धनी उसकी तरफ लपक रहे थे। उनकी जेबो से नोट निकलकर कन्डैक्टर करने वाले की पाकिट म जा रहे थे। रमेश मन ही मन ब्लैक करने वाले की पाकिट की तुलना अपनी जेब स करने लगा। नोट कैसे आते है देखते-ही-देखते रमेश का हाथ उस मोटी तोद वाले बाबू की जेब पर गया और सौ सौ के दो-तीन नोट रमेश के हाथ मे आ गए। बिना किसी प्रशिक्षण के काम करना कितना दुरूह होता है, यह रमेश को मालूम नही था। उसका नोट वाला हाथ न जाने कितने हाथो की चोट खा रहा था। नोट इस धक्कम-मुक्का म न जाने कहा चले गये।

लोगो का हुजूम थाने म पहुच चुका था। रमेश स्वय सेवी पुलिस के हाथो बुरी तरह पिट चुका था। हगामा सुन हवलदार कौशिक बाहर आए। किसी स्वय सेवी ने धक्का दिया। रमेश कौशिक कदमो के पास जाता गिरा। क्या बात है ? कौन है यह ?" हवलदार की कडकदार आवाज गूजी। तमाशाई पीछे खिसकने लगे। मोटी तोद वाला बाबू आगे आया।

' साहब, इसने मेरे पाकिट स पैसे निकाले "

"कहा है पसे ?" हवलदार कौशिक उस मोटी तोद वाले बाबू को घूर-घूरकर देखते हुए बोला। बाबू सहम गया।

"तेरे पास है, छोकरे ?" कौशिक ने रमेश की तरफ आखें निकालते हुए पूछा। पर रमेश तो हवलदार के कदमो पर गिरते ही अपने होश गवा चुका था। हवलदार ने तलाशी ली। कुछ भी नही था। हवलदार को गुस्सा आ गया। मोटी तोद वाले की तरफ देखते हुए हवलदार दहाडा—"बच्चे को पीटा पैसे इसके पास है ही नही फिर यहा क्यो लाये हो ? बोलो ? निकलो यहा से, फालतू चले आते है, परेशान करने।' हवलदार की गरज सुनकर तोद वाले बाबू के साथ-साथ सभी तमाशाई चल गये। उनके जाने के बाद कौशिक का ध्यान रमेश की तरफ गया। सिपाही से पानी मगवाकर पानी के छीटे रमेश के चेहरे पर मारे। रमेश ने मिचमिचाकर आखें खोली। कौशिक न उसके सिर पर हाथ फेरा। "अब कैसे हो बेटे ?" कौशिक की आवाज मे वात्सल्य झलक रहा था। मीठी आवाज से प्रभावित रमेश उठ बैठा।

"साहब मैं चोर नही हू मैं पढ़ना चाहता हू मैं चोर ' रमेश बुक्का फाडकर रो पडा। कौशिक ने उसे सात्वना दी।

"अच्छा बेटे, तुझे मैं पढाऊगा तुम्हें चोर नही थानेदार बनाऊगा।' रमेश

फिर घर गया तब हवलदार कौशिक साथ ही था। रमेश के बापू से कहकर उसने रमेश का अपने घर रख लिया, पढाया और आज ?

रमेश को ऐसा लगा जैसे उसके सामने वह छोटा बच्चा नही एक और इसपेक्टर बठा है। उसने उच्चे को चुक्कर चूम लिया। बालक हतप्रभ रह गया। रमश की बलिष्ठ बाहे उसकी तरफ बढ रही थी, जैसे दो बैसाखिया किसी अपग को ऊचा उठाकर चलने का सम्बल प्रदान कर रही हा। □

## एक अदद पुत्र

धनराज पवार

घर के सभी छोटे बड़े सदस्य मेटरनिटी होम में इकट्ठे हो गए थे। सभी के आंतरिक हृदय में गहरी व्याकुलता और बेकरारी थी। उनकी आंखें थोड़ी थोड़ी देर बाद स्वत ही कुछ जानने का ऊपर उठ जाती और उधर जब दरवाजा नहीं खुलता तो गहरी निराशा में एक दूसरे को देखकर चुक जाती।

महेश की मां के मस्तिष्क में एक विचित्र तूफान वेग के साथ उमड़ घुमड़ रहा था। वह उन सभी से कहीं अधिक हैरान व परेशान थी। उनकी वीरान और खामोश आंखों में आशा निराशा के समाचार नाच रहे थे। दिल की एक एक धड़कन अन्दर का हाल जानने के लिए कितनी व्यग्र थी, साधारण जन तो क्या ? शायद टेलिपथी का ज्ञाता भी नहीं जान सकता था।

महेश भी उत्कंठित और अनमना-सा उस कॉरीडोर में इधर उधर टहल रहा था। अब तक के जीवन में उसने कभी इतनी बेचैनी और उलझन महसूस नहीं की थी जितनी आज कर रहा था। रह रहकर एक घबराहट उसके दिल में प्रस्फुटित होती। फलस्वरूप अब उसके लिए सयम और साहस धारण करना कठिन हो गया था। इस बार उसे पूरा विश्वास था, यकीन था अपने दिल पर।

सहसा प्रसूतिगृह का दरवाजा खुला। एक सफेद वस्त्रधारी नर्स कांपते हाथों से दरवाजा खोल बाहर आई। दिल में उस बदनसीब बच्चा के प्रति गहन हमदर्दी के भाव थे। वह विचलित भीड़ का छोटा-सा रेला उद्विग्नता से बढ़ चला नर्स की ओर। सभी के दिल की धड़कन लुहार की धौंकनी की तरह तेज तेज चल रही थी। सबसे आगे महेश व्यग्रता से लपक कर नर्स के समीप पहुंच गया और सांसों के स्पन्दन पर काबू पाते हुए कांपते स्वर में पूछा, 'क्या हुआ सिस्टर ?'

नर्स ने ठण्डी आह भरकर अत्यन्त ही सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा, "मुझे अफसोस है, इस बार भी आप पुत्र से वंचित ।" कहते-कहते वह यकायक चुप हो गई।

सभी स्तब्ध व अवाक् रह गये। अजीब मुर्दनी उन चेहरो पर पुत गई। एक धुधली आशा थी, वह भी अधेरे म विलीन हो गयी। उन्हें अपनी धमनियो म चलने वाला रक्त सर्द होता महसूस हुआ।

मा को लगा, नर्स का जवाब सुनने से पहले बहू मर क्यो न गई ?

उसके मन मे बहू के प्रति नफरत के अकुर ने जडे और गहरी कर दी। अतर का दर्द फिर हरा हो गया। उसे मालूम होता कि अतत नर्स द्वारा ऐसा ही मनहूस समाचार सुनने को मिलेगा तो शायद वह डाक्टर से कुमत्रणा कर बहू को प्रसूतिगृह मे ही मार डालने की साजिश रच डालती।

इस बार के प्रसव मे बेबस गीता की किस्मत दाव पर लगी हुई थी। जिसे वह हार चुकी थी। हजारो रुपये उस पर खर्च हो चुके थे। जादू टोना, इष्ट देव के यज्ञ और तीर्थ यात्राओ के अतिरिक्त कई मशहूर डाक्टरो से उसका इलाज हो चुका था, फिर भी वह अपने परिवार को पुत्र न दे सकी। इतना ही क्यो उसकी स्वय की बुझी हुई निराश आखो म आशा के दीप टिमटिमाने लगे थे। लेकिन होनहार को भला कौन टाल सकता है ? होता वही है जो भाग्य को मजूर होता है। इन दस दिनो म उसे प्रसूतिगृह की गद्देदार शैया काटे बनकर चुभती रही। रोटी का एक कौर भी हलक से नीचे न उतरा। जब भी वह इस पाचवी मासूम पुत्री को देखती, आखो म विषाद के अश्रु झिलमिलाने लगते। मन अपार वेदना और त्रासदी से भर उठता। दिल की पीडा और अधिक गहराती जाती। वह इन दिनो सूखकर पीली पड गई।

आज पूरे दस दिन बाद महेश गीता को पाचवी अबोध बच्ची के साथ रिक्शे मे घर ला रहा था। दोनो के चेहरो पर मौन स्तब्धता छाई हुई थी। अनायास गीता के मस्तिष्क म पिछला जीवन साकार हो उठा। महेश ! गीता का पति। करीब बारह वर्ष पूर्व गीता ने महेश के सग पवित्र अग्नि के फेरे लिए थे। वह गीता को अपनी आखो म बसाये रखता। दिन भर घर से बाहर निकलने का नाम न लेता। यार दोस्त उसे ईद का चाद कहकर पुकारते थे। उसकी सास तो जब कभी पास-पडौस की औरतो मे बैठती तो बहू के सदाचार और सुन्दरता के बखान करते न अघाती थी। बहू की शालीनता और बुद्धि की प्रशसा के पुल बाध देती। महेश भी अपने यार दोस्तो मे उसके रूप गुण की बडाई करते न थकता था। उन दिनो वह यही सोचती कि बचपन के सजोये सतरगी सपने साकार हो उठे हैं। उसके होठो पर थिरकने वाली सदाबहार मुस्कान नाच उठती। लगता जैसे खुशियो के उपवन मे हसते-कूदते खुशियो के फूल चुन-चुनकर झोली भर ली हो। ससुराल म रहते उसे कभी भी अभावो की अनुभूति नही हुई। लक्ष्मी की असीम कृपा से घर म वे सभी वस्तुए मौजूद थी जिससे उसका जीवन ऐश्वर्य पूर्ण और सम्पन्नता से गुजर जाय। अब वे दिन जब भी उसके मस्तिष्क के झरोखो से झाकते

हैं, तो कलेजे म एक हूक-सी उठ जाती है। उन दिनो की मधुर स्मतिया अदर-ही अन्दर उसे तडपा देती। आज वह इसी घर म उपेक्षित प्रताडित और तिरस्कृत जीवन जी रही है। सभी उसे हिकारत से देखते हैं, क्योकि वह इस परिवार को पुत्रिया ही दे सकी, पुत्र रत्न न दे सकी।

रिक्शा घर के सामने एक झटके से आकर रुक गया और गीता के चिन्तन की गहन तन्द्रा को पूर्णविराम लग गया। महेश अयमनस्क-सा किराया चुकाकर गीता को उपेक्षित व उदास नजरो से देख घर के अन्दर बढ गया। गीता निराश दृष्टि से अपने सुहाग को जाते देखती रह गई।

घर की दहलीज पर पैर पडते ही सभी ने उसकी ओर इस प्रकार देखा जैसे कोई फटेहाल भिखारिन द्वार पर आ गई हो, जिसे देखकर घृणा से सभी ने नाक-भौं सिकोड मुह फेर लिया हो। किसी के दिल मे उस मासूम प्यारी गुडिया-सी बच्ची को विहगम दृष्टि से भी देखने की चाहत व जिज्ञासा जागृत न हो सकी। यह उसके लिए एक गहरा आघात था। उसके दिल म दर्द की जो फास थी, अन्तर्मन मे चुभती चली गई।

भारतीय परम्परानुसार गीता आगे बढकर सास के पाव छूने लगी तो सास ने दुर्भावना और घृणा से मुह फेर लिया। सास ने उसे जलती आखो से देखते हुए परे धकेल कर व्यग्य भरे शब्दो मे कहा, "तुम जैसी बहू मेरे पताहू का अरमान कभी पूर्ण नही कर सकोगी। क्या सोचकर पाव लगती हो?"

सास के शब्दो ने गीता के कानो म गर्म गर्म लावा भर दिया। वह ऊपर से नीचे तक तडप उठी। इस समय वह अपने को दुनिया भर की स्त्रियो मे सबसे अधिक असहाय और व्यथित महसूस कर रही थी।

गीता को घर की दीवारें साप बनकर डसने को दौड रही थी। सारे घर मे अकेली। कोई भी तो उसका नही। अपने, पराये बन गए। महेश दस बजे आफिस जाता और प्राय देरी से घर लौटता था। वह स्टेनो के पद पर था। इससे पूर्व महेश उसे अपने हृदय मे बिठाए रखता था। जबकि मा, हमेशा बहू के विरुद्ध उसे उकसाती रहती। पर मा की उकसाहट का उस पर कोई असर नही हुआ। लेकिन इस बार वह गीता से अधिक मेल-जोल नही रखता था। यही मलाल और तडप गीता को सालती रहती थी। नारी जिसे देवता मानती है, उस पति का व्यवहार भी उसके दिल मे तीर चलाता जाता था। गीता को एक विचित्र झुझलाहट और रिक्तता ने आ घेरा।

गीता अपनी सास, ननद, पति सभी को प्रसन्न रखना चाहती, उनका दिल जीतना चाहती थी, क्योकि अब वह स्वय अपने अस्तित्व से निराश हो चुकी थी। उसकी वीरान आखो मे सहानुभूति और सवेदना की तीव्र भूख थी।

वह घर को झाड-बुहार कर स्वच्छ रखती, बेतरतीब वस्तुओ को व्यवस्थित

रख ड्राइग रूम करीने से सजाती, खिडकियों के पर्दे व चादरें जरा भी मैली हो जाने पर धुले पर्दों में बदल देती। पर उसके इस दिल खोलकर काम करने की ओर कोई आख उठा कर भी नहीं देखता था। जायकेदार और स्वादिष्ट भोजन बनाने पर भी सास व ननद उसमें मीन मेख अवश्य निकाल देती। दिन भर अनवरत और सतत मशीन की तरह बिना थके-हारे घर का सम्पूर्ण काय करती, फिर भी एक अजीब व्यवहार था वहम गीता के साथ। तब उसका कोमल हृदय अकुलाहट और बदहवासी से भर उठता। उन सभी के बीच उपेक्षा और हिकारत की अदृश्य दीवार दिन-ब दिन ऊपर उठती जाती थी।

गीता की नन्ही मुन्नी मासूम पुत्रिया जब हसती-खेलती दादी के पास चली जाती तो रोज रोज की डाट डपट और उपेक्षित व्यवहार से सहम जाती। सभी पुत्रिया नित प्रतिदिन की बीरानिया और घुटन के वातावरण में मुर्झा गई थी। गीता यह सब देख नारी की विडम्बना पर एकान्त में आठ आठ आसू बहा देती।

उस दिन गीता ऊपर के कमरे में खिडकी के समीप बैठी नवजात बच्ची को स्तनपान करा रही थी जहा में नीचे ड्योढी की बातें स्पष्ट सुनी जा सकती थी। उसके कानों में पडौसिन व सास का वार्तालाप सुनाई दिया। वह आश्चर्यचकित और विस्मित-सी बैठी सुनने लगी।

सास ने एक लम्बी व ठण्डी आह भरते हुए कहा, "मैंने अपने हीरे जैसे बेटे को बाप सौंप दी। मेरा ही भाग्य फूटा हुआ था। इससे तो अच्छा था, महेश कुआरा ही रहता। मेरे स्वर्गीय पति की इस बेशुमार धन दौलत को भोगने वाला और उनका नाम लेने वाला इस दुनिया में कोई न होगा।

पडौसिन माजी के प्रच्छन्न दर्द की अनुभूति से परिचित थी। उसने सान्त्वना के शब्दों में कहा, "ऐसा अशुभ मत बोलो, महेश की मा! इसने तुम्हें पाच पुत्रिया दी है, फिर यह बाझ कैसी! भगवान ने चाहा तो इस घर में भी हसता-खेलता पुत्र अवश्य दौडेगा।

और सास भडक उठी। आखों से शोले बरसाती व्यग्य भरी वाणी में कहा, "इस कम्बख्त के पेट में पुत्र की जड ही नहीं, जिस पर फल लगेंगे। यह तो मेरे वश को मिटाकर ही दम लेगी।" उसके स्वर में तल्खी व कडवाहट थी।

'तो क्या हुआ। तुम कोई लडका गोद ले लेना।' पडौसिन के स्वर में आजिजी का भाव था।

"गोद का बेटा पराया होता है, जो हमारे बेटे की तरह हमारी साल-सम्भाल नहीं कर सकेगा। मैं तो केवल मेरे बेटे के खून से जन्मा पुत्र ही चाहती हू, जिसमें अपनत्व व आत्मीयता होगी।'

"ऐसे दिल छोटा न करो! एक दिन इस घर में पौत्र अवश्य आएगा। मेरा विश्वास झूठा नहीं हो सकता।'

सास ने कुछ सोचते हुए फिर से एक लम्बी आह भरते हुए कहा, "अब तो शीघ्र ही इस घर मे एक नयी बहू आएगी। बात चल रही है और रिश्ता पक्का होने ही वाला है। नई बहू अपनी कोख मे हमारा उत्तराधिकारी ही जनेगी। यह बाझ कदापि नही।'

सास का आखिरी वाक्य एक विषैले नश्तर के समान उसके दिल मे चुभता चला गया—'अब तो शीघ्र ही इस घर मे एक नई बहू आएगी। यह वाक्य उसके जेहन मे एक जबरदस्त बवण्डर मचा रहा था। उसकी सोच की कड़ियो म वह दृश्य उत्पन्न हो गया जिसमे सौत को लाने से उसकी मान प्रतिष्ठा को धक्का लगने वाला था। सौत उसकी पुत्रियो पर न जाने क्या-क्या जुल्म ढायेगी। नई बहू बन जाएगी मालकिन और वह उसकी महरिन। इतना ही क्यो, वह हम मा-बेटियो को ईर्ष्या व नफरत की दृष्टि से देखेंगी। इस पुरुष प्रधान समाज मे किसी स्त्री के पुत्र पैदा होता है तो इसका श्रेय जाता है पुरुष के सिर पर। जब पुत्रियो का जन्म होता है, तो इसका दोष मढा जाता है नारी पर। वाह रे समाज की मान्यता। विधि की विडम्बना का कोई अन्त नहीं। अब आग पता नही उसे किस प्रकार के बुरे दिन इस नरक मे और बिताने होगे। विषैले जुमले और ताने की भाषा सुनते-सुनते अन्दर-ही-अन्दर गीली लकडी की तरह सुलगना होगा। उसके दिल का पीडा आखो की राह अश्रुधार बन बरसने लगी।

गर्मियो के दिन होने से गीता और महेश ऊपर के कमरे म सोते थे। उन दोनो की मसहरी पास-पास ही थी, पर लगता था वे बहुत दूर दूर थे। गीता का मस्तिष्क चिन्तन और व्यथा से जब पूर्ण रूप से बोझिल हो उठा तो उसने महेश की ओर मुखातिब होकर कहा, "प्राणनाथ ! सुना है आप दूसरा विवाह रचा रहे है।"

"मैं दूसरा विवाह नही चाहता, लेकिन मा ही मुझे इसके लिए मजबूर कर रही है।' वह थोडी देर शान्त रह कर फिर कहता है, "मेरे दूसरे विवाह पर तुम्हे दुख तो न होगा।"

"पति की खुशी ही पत्नी का धर्म है। आप दूसरे विवाह से खुश हैं तो मैं आप को खुश ही देखना चाहती हू। मुझे आप ही का सहारा है।' गीता के होठो पर एक उदास-सी मुस्कराहट तैर गई। फिर उसने दोनो जबडे मजबूती से भीच लिए मानो वह कोई भयकर पीडा को बरबस पीने का उपक्रम कर रही हो। सहसा उसे एक पम्फलेट का ख्याल आया, जिसे सध्या के समय उसकी पडौसिन ने उसे दिया था। उस पर देश की मशहूर लेडी डॉक्टर श्रीमती भार्गव द्वारा निराश स्त्रियो के लिए पुत्र प्राप्ति का मजमून था। गली-कूचो म उस लेडी डाक्टर के हाथो के जादू की चर्चा जोरो पर थी। उनके इलाज स सैकडो स्त्रियो ने पुत्रो को जन्म दिया था। सुनकर उसकी आशा के गहराये अधकार म आशा की धुधली ज्योति टिमटिमाने लगी थी। उसने महेश से डाक्टर भार्गव का जिक्र

हिचकिचाते हुए किया, क्योंकि इसके पूर्व भी डॉक्टरो के चक्कर मे हजारो रुपये फूक दिये थे।

महेश ने एक लम्बी ठण्डी आह भर निराशा भरे शब्दो म कहा, "अवश्य जाच कराइये। मैं तयार हू।"

दूसरे दिन वे दोनो डाक्टर भागव के पास पहुचकर सभी पिछली रिपोर्टें दिखाई जिनका अब तक इलाज चला था। डाक्टर भागव न देर तक उन रिपोर्टों का अध्ययन किया फिर उन्होने महश को एक कमरे मे ले जाकर ध्यानपूवक जाच पडताल कर दवा लिख दी। उधर श्रीमती भागव भी गीता को भीतर ले जाकर आवश्यक चक अप किया। सम्पूण जाच पडताल कर श्रीमान व श्रीमती भागव ने आपस म सलाह मशविरा कर दवाइया लिख दी। गीता को पूण विश्वास और ढाढस दिलाते हुए श्रीमती भागव ने कहा, "अब तक जिन डाक्टरो ने तुम्हारी जाच पडताल की है, उन्होने ध्यानपूवक मज नही देखा। अब तुम सावधानीपूवक समय पर दवाइया लेती रहोगी तो भगवान तुम्हें अवश्य पुत्र देगा।"

"राच। दवाई लेन म तो किसी प्रकार की लापरवाही नही बरतूगी।" उत्साह से उसके मुह से निकला था। उसके निराश नेत्रो की पुतलिया मे खुशी की एक अजीब आभा उत्पन्न होने लगी। मानो रगिस्तान की मग मरीचिका मे बहुत भटकने के बाद उस पानी की एक झलक मात्र दूर कही दिखाई दे गयी हो।

घर आकर उन्होने नियमानुसार दवाइया खाना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन माजी की प्रताडना और ताने के तीर उसे भीतर से तोडकर रख देत। और ऐसा ही बदतर व्यवहार ननद का उसके साथ था। फिर भी वह मूक और उदास बनी टूटी जिन्दगी को बल लगाकर इस आस म खीच रही थी कि वह इस बार श्रीमती भागव क इलाज से माजी को एक अदद उत्तराधिकारी अवश्य देगी।

गीता की छठी सन्तान के प्रसव के दिन ज्यो ज्यो समीप आ रहे थे, उसकी बेचनी और व्यग्रता उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। मन रह-रहकर अज्ञात भय से काप उठता था। इस बार के प्रसव मे पुत्र न दे सकी तो सभी उसके साथ न जाने और क्या बदतर व्यवहार कर। उसन दढ निश्चय कर लिया कि इस बार का प्रसव नैहर म ही हो सकेगा और वह अपने पिता के घर लखनऊ चली गयी।

इधर माजी निराशा के अथाह सागर से कभी न उभरी। वह तो हमेशा यही बात कहती—"इस बहू से म कुल का नाम नहीं बनाय रख सकती। मैं तो अब महेश की दूसरी शादी अवश्य रचाऊगी।" पौत्र को खेलते देखने की हसरत और अरमान ने उन्ह जुनून की सीमा तक पहुचा दिया था। महश के विवाह के लिए उन्होने अपने सगे-सम्बन्धियो म दौड धूप और तज कर दी। एक रिश्ता तय होने जा रहा था, लेकिन लडकी के पिता की कही दूर नौकरी होने की वजह से व आ नही पा रहे थे। ये कानपुर वाले लालाजी थे, जिन्हें अपने सरकारी दौरे की व्यस्तता

और किसी अपरिहार्य कारण से आने में देरी हो रही थी। इनमें कई बार पत्र-व्यवहार हो चुके थे। माजी बड़ी बेसब्री और अधीरता से उनका इंतजार कर रही थी।

आखिर लगभग तीन माह बाद लालाजी इंतजार की घड़ियां समाप्त कर माजी के समक्ष प्रकट हुए। माजी ने बड़ी गर्मजोशी से उनका स्वागत व खातिर-तवज्जो की। उनके मान-सम्मान में कहीं कोई कमी न रहे। उन्होंने स्वयं हर व्यवस्था का जायजा लिया। माजी के मन में यह प्रबल चाहत थी कि किसी प्रकार यह रिश्ता तय हो जाये और पौत्र का दुराव सागर हो जाये।

माजी ने संयम और संजीदगी से खुशामद भरे स्वर में लालाजी से कहा, "मेरा पुत्र हीरे के समान लाखों में एक है। स्वभाव और रूप गुण में उसका सानी नहीं। आपकी बेटी इस घर में राज करेगी। हमारे पास भगवान का दिया हुआ सब कुछ है। हम तो केवल सौम्य और शालीनता से ओत प्रोत एक बहू चाहिए जो मेरे पौत्र के सपने को मूर्त रूप दे सके।

लालाजी गरीब व्यक्ति थे। वे पुत्री के रिश्ते के लिए कई स्थानों पर घूम आये थे। हर जगह उन्हें दहेज का दानव अपनी विकराल अवस्था में खड़ा मिला था। और इसी दहेज की कमी से उनकी पुत्री ने अठाइसवां वर्ष पार कर लिया था। उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि चलो यहां दहेज की बचत तो हो ही जाएगी। अन्यत्र दहेज देना पड़ेगा। आज के इस महंगाई के युग में पचास हजार का दहेज जुटा पाना हिमालय पर आरोहण के सदृश है। भरा-पूरा और सम्पन्न घर है, निःसंदेह पुत्री यहां मौज मस्ती से रहेगी। इतना ही नहीं, इस घर में जितना मान-सम्मान और प्रतिष्ठा उनकी पुत्री की होगी, उतनी पूर्व विवाहिता की नहीं। रहा महेश की उम्र का सवाल, तो इसमें भी दोनों में कोई खास फर्क नहीं। मगर दूसरे ही पल विचार आया कि पूर्व विवाहिता बहू का तलाक दिलवा दिया जाये तो उनकी पुत्री का जीवन सुखमय और उल्लासपूर्ण व्यतीत हो सकेगा। इस समय वे जैसा चाहेंगे माजी कर देंगी।

लालाजी ने अपना आशय प्रकट करते हुए कहा, "हमें यह रिश्ता मंजूर है। सगाई का राह-रस्म आज ही अभी इस वक्त हो जाय लेकिन...।' कहते हुए वे कुछ सकुचाये।

"आप निःसंकोच अपनी बात कहिए। हम अभी या बाद में भी दहेज की मांग कभी नहीं करेंगे।' माजी ने लालाजी की हिचकिचाहट और घबराहट का दूसरा ही अर्थ लगाते हुए कहा।

लालाजी सोच रहे थे कि वे अपनी मन की बात कैसे कहें। दरअसल तलाक की बात कहने पर वे स्वयं को संकुचित और लज्जित अनुभव कर रहे थे। एक विचित्र कशमकश में से गुजर रहे थे वे इस समय।

माजी लालाजी के चेहरे और सम्पूर्ण अस्तित्व को एकटक बड़े गौर से निहार रही थी। सोच रही थी—वे अन्दर-ही अन्दर किसी बात के लिए छटपटा रहे हैं। कोई न-कोई ऐसा प्रसंग अवश्य है जिसे वे कह नहीं पा रहे हैं। उनके मस्तिष्क में एक विचार कौंधा—लालाजी को विवाह के लिए रुपयों की आवश्यकता होगी इसीलिए वे बात करते हुए संकोच कर रहे हैं।

माँजी ने तुरन्त कहा, 'आपको विवाह के लिए रुपयों की जरूरत हो तो मैं आपको बीस हजार रुपए दे देती हूं। जिन्हें कभी भी लौटाने की आवश्यकता नहीं। मगर मगनी का दस्तूर आज ही हो जाना चाहिए।"

अब लालाजी ने पुत्री के सुखी भविष्य के लिए अपना मन कड़ा कर लिया। उन्होंने कहा, 'मेरा मतलब रुपए नहीं। मैं चाहता हूं उस पूर्व विवाहिता को तलाक दे दी जाए ताकि मेरी पुत्री का जीवन आनन्द और प्रसन्नता से गुजर सके।" कह-कर उन्होंने माजी की तरफ देखा।

माजी चिर बेजारी और झुंझलाहट से भलाई-बुराई और नीति-अनीति की सभी बातें भूल गयी थी। पौत्र की हसरत और चाहत ने उन्हें अंधा बना दिया था। उन्होंने तुरन्त कहा, "मैं आज ही वकील से मिलकर ।

खट खट खट । दरवाजे पर दस्तक हुई। माजी ने उधर देखा—महेश दूसरे कमरे में था। उसने आगे बढ़कर दरवाजा खोला। बाहर पोस्टमेन हाथ में टेलीग्राम लिए खड़ा था। महेश ने चौंककर टेलीग्राम लिया और उत्कंठित व कौतूहल-वश आंखें उस पर गड़ा दीं। लिखा था 'सन बोर्न कम सून'। प्रेषक के स्थान पर उसके श्वसुर का नाम अंकित था। पढ़कर महेश खुशी से उछल पड़ा। उसका रोयां-रोयां खिल उठा। लगा जैसे मुरझाये हुए पौधे को पर्याप्त खाद व पानी मिल गया हो और फिर से लहलहा उठा हो। प्रसन्नता और हंसी के मारे उसके मुंह से शब्द नहीं फूट रहे थे। वह उछल-कूद मचाता माजी के पास गया और मुस्कराते हुए कहा, "मम्मी तुम्हारा पौत्र आ चुका है।" सुनकर माजी के मुंह से खुशी भरी चीख निकल गयी। वीरान और मायूस चेहरे पर ताजे फूल खिल आये। लगा जैसे जल बिन मछली को पानी का अथाह समुद्र मिल गया हो। तब तक ननद भी महेश के पास आकर खड़ी हो गयी। टेलीग्राम की तहरीर पढ़ते ही कुछ क्षण विस्मित व अवाक्-सी रहने के बाद माजी की तरह ही उसके चेहरे पर खुशियों का सैलाब उमड़ पड़ा।

पास ही बैठे लालाजी को तो लगा जैसे किसी ने उनको जोरदार एक घूंसा मारकर अतिशय भीड़ वाले चौराहे पर नंगा कर दिया हो। पल भर पहले वे बहुत खुश थे, अब पानी-पानी होकर अपने-आप में सिमट सिकुड़े बैठे थे।

माजी के खुशी के कोहराम ने पूरे घर को सिर पर उठा लिया था। वे खुशी की अतिरेक में चिल्लाने लगी, 'मेरे कुल के सितारे को भगवान ने भेज दिया है।

अब मेरे वंश का नाम कभी समाप्त न होगा। अरे महेश सुधा! जल्दी बाजार से पचास किलो लड्डू लाओ। अरे सुना तुम सबने। मोहल्ले का कोई घर ऐसा न रहे, जहां लड्डू वितरण न हो।" और उन्होंने पड़ोसियों को यह शुभ समाचार देने के लिए उचक-उचककर एक घर से दूसरे घर तक दौड़ लगानी प्रारम्भ कर दी।

माजी का भरतनाट्यम और कत्थक देख लालाजी वहां से इस प्रकार गायब हो गए जैसे गधे के सिर से सींग।

माजी गली से गुजरने वाले प्रत्येक व्यक्ति को बुला बुलाकर लड्डू बांट रही थी। साथ ही बहू की प्रशंसा भी कर रही थी। पास पड़ोसियों ने देखा कल तक तो उस बहू फूटी आंख नहीं सुहाती थी, और आज उसी बहू का बेहिसाब गुणगान गाया जा रहा है।

माजी हर्ष और उल्लास में बाजार गयी। और एक खूबसूरत बनारसी साड़ी बहू के लिए और पौत्र के लिए ढेर सारे खिलौने, कपड़े, मिठाइयां खरीद लायी। दूसरे दिन महेश और माजी मन में असीम उत्साह और खुशियां लिए गीता के मायके लखनऊ रवाना हो गये। □

# अनुत्तरित प्रश्न

रामनिवास शर्मा

रिंकू !

रिंकू एक समस्या है ।

इस समस्या का न आदि है और न अंत ।

समाधान ?

समाधान एक समस्या है ।

यह बालक—

एक मासूम चेहरा, समस्या और समाधान के अधबीच में अपने अस्तित्व का आधार खोजता है । यह आधार भी अस्तित्व को स्वीकार करता हुआ नकारता है । समाज इस चेतन समस्या को अवचेतन के रूप में देखता है और समाधान के लिए भाग्य के भरोसे पर छोड़ देता है । परवरिश की जिम्मेदारी, विशाल हृदय के नाम पर छिटकाकर स्वयं सभी जिम्मेदारियों से आंख मीचने का अभिनय करता है । सांत्वना के शब्द सहज भाव से कह देता है । परन्तु अपने को निर्लेप रखते हुए एक महान जिम्मेदारी को हंसकर उड़ा देना चाहता है । यह समाज की विडम्बना है या भाग्य की ? इस विडम्बना में उलझा है एक मासूम, एक अनजान, अबोध अव्यक्त चेहरा ।

यह संसार कितना विषम है । व्यवहार के धरातल पर हर बात को सोचता है परन्तु अपनी स्वार्थपरता को कहीं भी नजर-अंदाज नहीं करता है । हर बात को, नाते रिश्ते को उसी धरातल पर देखता है । वर्तमान को आंख खोलकर देखता है । भूत के प्रति चेतन है और भविष्य को उसी आधार पर जागरूकता से देखता है । कहीं दुराव नहीं । एक भ्रम को पालता है, पोषण करता है । सबको सोचने को, समझने को मजबूर करता है और स्वयं निर्लिप्त होकर सबका मूल्यांकन करता है । कहीं भूल तो नहीं है । सब सहज है । सामान्य है ।

असह्य वेदना ।

एक गहरी पीडा।

कई महीना तक।

एक भार, चतन भार को पेट म लिए उठना-बठना, खाना पीना, साना जीवन के सभी काय नियमबद्ध होकर करना।

जीवन और मौत क बीच म दो प्राणो का लकर जूझना। परिवार की सद् भावना अपना रा ह एक काय भाग पर बढ़न की अनवरत रूप स प्रेरणा दता रहता है। दुश्चिन्ताआ म घिरकर अपन को तिल तिलकर जलाना और अनजान-अनदख प्राणी का पोषण करना, कितनी विडम्बना से भरा है? उसमे भी एक अभिनव पुत्र प्राप्त करना, यह कितना भ्रमपूण छलावा है। यह सब होत हुए भी एक गहरी वदना जो अवणनीय है उसको सहत हुए इस ससार म एक नवीन प्राणी का जम दना स्वय का मृत्यु के मुख म जाकर वापस लाना, लौटन क बराबर है या मैं कहू, मृत्यु के फाटक पर दस्तक देकर शीघ्रता स वापस आना है। दरी की, तो मृत्यु का आलिगन है। समय पर मुड गये, तो जीवन का वरण है।

सारा परिवार फूल उठता है, नया जीवन पान पर खुशी हा उठती ह। बधाइयो का एक लम्बा ताना बध जाता है। पर भारी हानि म लकर प्रसव करने तक की सारी विपदाए खून क नाले म बह जाती है। चेहरे पर अमिट मुर्दानगी हात हुए भी एक आत्मसताप की छाया होती है।

कासी की थाली बजती है। नग मागा जाता है दिया जाता है।

क्या यह सब भुलाया जा सकता है? विस्मृत किया जा सकता है?

नही नही। तो फिर?

कितना अजीब प्रश्न है। सिफ यह प्रश्न ही नही है? प्रश्नो की एक लम्बी कतार ह। जिसम प्रश्नो म से प्रश्नो की एक लम्बी झडी है, जिसम एक प्रश्न का हल निकलता है और अनेक अनुत्तरित प्रश्न खडे हो जात है।

क्या इन अनुत्तरित प्रश्नो का एक उत्तर मर पास है?

नही। नही।

परिवार क पास है?

नही। नही।

समाज क पास है?

नही। नही।

तो फिर इन प्रश्नो का उत्तर किसस पूछू?

ये प्रश्न इसी प्रकार मरे चारो ओर झझावात के रूप म वर्तुलाकार घूमत रहेंगे और मुझे एक घनीभूत पीडा में ले जाकर छोड देंगे, जहा मैं गहन अधकार म भटककर अपने दुर्भाग्य को पकडकर पुन छोडकर भटकती रहूगी।

क्या मैं इसी प्रकार चित्त भ्रम होकर भटकती रहूगी या मुझे कोइ रास्ता

मिलेगा।

यह जीवन की विडम्बना है या कि भाग्य की, या इन दोनों के बीच एक महती समझौते की प्रतिक्रिया है या प्रकृति का विकृत रूप?

मैं इन सबसे मुक्त होना चाहती हूं। स्वतन्त्र होना चाहती हूं। मैं अब और भ्रमपूर्ण स्थिति में जीना नहीं चाहती।

मेरी इच्छा है एक सपाट सरल मार्ग मिले, जिस पर मैं जीवनपर्यन्त आगे बढ़ती जाऊं। बाधा न हो, शूल न हो।

क्या जीवन इतनी सरल सपाट पगडंडी-सा हो सकता है? नहीं-नहीं। यह कोरी कल्पना है। एक मीठी कल्पना है। जीने का सहारा है, परन्तु यह सहारा आधारहीन है। दिवास्वप्न है। जीवन विषमताओं से भरी एक मंजूषा है। सुख-दुःख की कई करवटों से भरा जीवन है। कितना अजीब है। कब क्या हो जाए, कुछ पता ही नहीं चलता। फिर भी एक आस्था है, विश्वास है। उसके सहारे चलना पड़ता है। झेलना पड़ता है। चलना भी कितना लम्बा? कुछ पता ही नहीं चलता। चरैवेति चरैवेति। चलते रहो, चलते रहो।

इस चलने का न तो अन्त है और न विश्राम।

विश्राम?

विश्राम तो जीवन में एक बार आएगा।

जब न तो कोई जिज्ञासा रहेगी और न आशा। सबका अन्तिम संस्कार होगा। परिष्कार होगा।

क्या फिर नये जीवन की शुरुआत होगी?

या चिरशान्ति। अनन्तकाल की शान्ति। मौत की भयावह शान्ति। चुप्पी की शान्ति। यह सब भ्रम है। मिथ्या है। मिथ्या विश्वास है। अंधी आस्था है। जीवन का क्रम इसी प्रकार चलता रहेगा।

नदी के जल प्रवाह की तरह। कभी धारा तीव्र होगी, कभी क्षीण। परन्तु अविरल चलती रहेगी। चलती रहेगी।

क्या वास्तव में मेरा यह भ्रम है, भ्रम की छाया है या इससे परे भी कुछ कुछ है?

सत्य है। चाहे सत्य हो न हो परन्तु सत्य की जिज्ञासा तो है ही।

फिर क्या न इसी को ही सत्य मान लिया जाए?

नहीं। सत्य माना नहीं जाता। समझा जाता है।

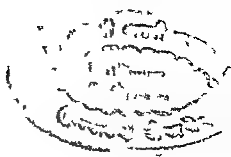
यह समझना ही बड़ा मुश्किल है। इसे तोला नहीं जाता। विश्वास किया जाता है। विश्वास भी अंधा। कोई प्रश्न पूछा नहीं जाता। समझा कम जाता है, सुना जाता है।

यही तो एक समस्या है। समझना सरल है परन्तु

क्या मुझे इसी अंधी आस्था और विश्वास के अधर-खम्ब में झूलना होगा या इसका कोई सही रास्ता निकलेगा? दर-दर की ठोकर खाकर सारा जीवन कीचड़ में बिलबिलाते कीड़े की तरह गुजारना पड़ेगा या आत्मगौरव से खड़ी होकर एक सच्चे इंसान की तरह? सच्चाई और इंसान में कितना भ्रम है? इसमें कोई तुक नहीं, कुछ भेद है। विभ्रम है। पाखण्ड है। आवरण की छाया में चलने वाला एक धंधा है। जिस्मफरोशी की बात है। सब नंगे हैं। एकदम नंगे हैं। पशुओं से बदतर। परन्तु एक शराफत का आवरण ओढ़े रहते हैं। सब एक-दूसरे को जानते हैं परन्तु समझदार की तरह मौन हैं। चुप्पी साधे खड़े हैं। हर बात को तटस्थ दर्शक की तरह देखते हैं और चरम परिचित हर समय मुस्कराकर चल देते हैं। यही सबसे बड़ी विडम्बना है।

क्या मुझे इसी विडम्बना में जीना होगा या उज्ज्वल आलोक में?





# डॉ० डिसूजा

## दशरथ कुमार शर्मा

डिसूजा परिवार से सोहन की आत्मीयता बढाने म रेलवे के समपार फाटक ने बडा महत्वपूण योगदान दिया था।

हुआ या कि श्रीमती सुजाता डिसूजा एक दिन सुबह-सुबह तेजी के साथ अपने विद्यालय जा रही थी और रेलवे का समपार फाटक उनके देखत-देखते तेजी के साथ बन्द हो गया। इस घटना से श्रीमती डिसूजा के चेहर पर उसी प्रकार के भाव उत्पन्न हुए जस किसी मनचले नोजवान के व्यवहार के कारण किसी महिला के चेहरे पर भाव उत्पन्न हो जाया करते है।

बन्द हो जाने का तो मुझे ध्यान नही लेकिन खुलने के मामल मे तो रेलवे के समपार फाटक मनचले होते ही है। खुलें तो पाच मिनट बाद खुल जाये वरना आधे घटे तक कोई पता नही। दोहरी लाइन होने पर मालगाडी गुजर जाए तो सवारी गाडी पीछे रह जाती है। सोहन ने, जो बहुत ही नियमो से चलने वाला था, अपने दोनो हाथो मे उनकी साइकिल को अधर उठाकर समपार फाटक के पार पहुचा दिया। डिसूजा बहनजी ने भी तुरन्त पीछे पीछे पहुचकर बडी प्रसन्नता के साथ धन्यवाद देते हुए कभी घर आने का निमन्त्रण भी सोहन को दे दिया। जिला शिक्षा अधिकारीजी को भी उसी दिन श्रीमती डिसूजा के विद्यालय मे पहुचकर देर से आने वालो की सूची बनानी थी।

श्रीमती डिसूजा का नाम उस दिन उनकी सूची म नही आया। इसका श्रेय भी सोहन को मिला तथा उसकी सज्जनता का समाचार उसी दिन दोपहर तक डॉ० डिसूजा तक पहुच चुका था। और उसके बाद उन दोनो की हैलो हैलो होने लग गई थी। सयोग की ही बात है, कुछ दिनो बाद डॉ० डिसूजा अपने घर की तरफ जा रहे थे। रेलवे का समपार फाटक बन्द होता इससे पूव ही उन्होंने अपना स्कूटर तज करते हुए तथा गन्न झुकाते हुए उसे पार कर लिया।

फाटक पार करते ही उनके चेहरे पर एक विजता धावक जसी प्रसन्नता थी।

सोहन ने उन्हें उनकी फुर्ती पर बधाई देकर उनकी प्रसन्नता में और वृद्धि कर दी। वैसे भी जब पति-पत्नी दोनों राजकीय सेवा में हों, तो पति के पास स्कूटर व फुर्ती दोनों का होना आवश्यक हो जाता है। डिसूजा साहब आग्रहपूर्वक सोहन को अपने स्कूटर पर बिठाकर अपने घर ले गए।

डिसूजा दम्पति ने सोहन का भाव भीना स्वागत किया और बताया कि उस दिन विद्यालय में लेट पहुंचने वाले लोगों को प्रधानाध्यापक, जिला शिक्षा अधिकारी व उस दिन समय पर पहुंचने वाले लोगों ने अपनी-अपनी सुविधानुसार समय की पाबन्दी का महत्व बताया, जिला शिक्षा अधिकारी कार्यालय से बाद में आने वाली निरीक्षण रिपोर्ट में भी अलग से इस घटना का वर्णन किया गया, व भविष्य में ध्यान रखने के लिए निर्देश दिए गए।

और उस दिन सोहन ने भोजन भी डिसूजा परिवार के यहां ही किया, उनके आकर्षक मकान की बड़ी प्रशंसा की तथा सबसे अधिक प्रशंसा उन्होंने इस बात की की कि किरायेदार के लिए बिलकुल स्वतन्त्र हिस्सा बनवाया है। बिजली व पानी के अलग मीटर, स्वतन्त्र बाहर का दरवाजा, अलग ही शौचालय स्नानघर व आंगन। मकान मालिक व किरायेदार में कहीं भी टकराव की कोई गुंजाइश नहीं।

उन दोनों के चेहरे पर पड़ी प्रसन्नता को देखते हुए सोहन ने यह भी कहा कि इतनी सूझबूझ के साथ तो मकान कोई एंग्लो इंडियन ही बना सकता है। इस एंग्लो इंडियन शब्द से डिसूजा दम्पति बड़े प्रसन्न हुए और इसी शब्द ने सोहन के लिए रामबाण का काम किया। मौका देखकर सोहन ने स्वयं के उदारवादी, शांतिप्रिय, परिश्रमी व व्यवहार कुशल होने का वर्णन भी कर दिया साथ ही अपने परिवार की रूढ़िवादी विचारधारा से भी अवगत करा दिया।

इतना होने के बाद तो डिसूजा परिवार का सोहन को अपने मकान में किरायेदार के रूप में आने के लिए सादर निमन्त्रण देना ही था। निमन्त्रण स्वीकार कर लेने के बाद सोहन ने उन्हें इस बात से भी अवगत करा दिया कि उस जैसा किरायेदार मिलना मुश्किल है। वह स्वयं का मकान बनवा लेने तक उनके यहां ही रहेगा, तथा हर दो साल बाद किराये में दस प्रतिशत की वृद्धि स्वयं ही उनके कहे बिना कर देगा।

काफी मना करने पर भी सोहन ने उन्हें मकान का एक माह का अग्रिम किराया देकर उनके मकान में आने की तारीख व समय बताकर यह भी जता दिया कि वह नियमों व समय का कितना पाबन्द है। डिसूजा दम्पति प्रसन्न थे कि उन्हें एक अच्छा किरायेदार मिल गया तो सोहन की प्रसन्नता उसी प्रकार की थी जैसे कोई छात्र किसी चलचित्र के प्रथम दिन के प्रथम शो में ही रियायती दर पर टिकट प्राप्त कर लेता है और वह भी बिना परिचय पत्र दिखाये हुए।

अपने द्वारा दिये गए निर्धारित दिनांक व समय से सोहन ने डॉ० डिसूजा के

यहां किरायेदार के रूप मे रहना शुरू कर दिया। कुछ दिन बाद उसे पता चला कि श्रीमती सुजाता डिसूजा पूर्व म सुजाता वर्मा थी। पशु चिकित्सक डा० डिसूजा से उनका प्रेम विवाह हुआ था।

सुजाता अपने अग्रेजी पढे लिखे माता पिता की इकलौती व लाडली पुत्री थी, तो डिसूजाजी भी अपने माता पिता की एकमात्र सतान थे। सुजाता के पिता किसी कार्यालय म कार्यालय अधीक्षक थे। उनके परिवार म गऊसेवा का कुछ अधिक ही महत्व था, तथा मा व पुत्री की इस ओर कुछ अधिक ही रुचि थी। बाजार के अधिकतर काय सुजाता स्वय ही करती थी।

एक दिन गाय के बीमार पडने पर सुजाता को स्वय ही उसे पशु-चिकित्सालय डा० डिसूजा के पास ले जाना पडा, और डा० डिसूजा भी गाय की पूछ पकडते हुए उसी दिन सुजाता के घर पहुच गये। कुछ दिनो तक तो सुजाता के माता पिता भी डिसूजा साहब को गऊभक्त ही समझते रहे और डिसूजा साहब को भी वर्मा साहब का पूरा परिवार उनकी गाय की तरह ही भोला-भाला लगा।

भगवान की कृपा से दोनो का विवाह शाति के साथ न्यायालय मे सम्पन्न हो गया। समाज व धम की कोई रुकावट उनके बीच मे नही आई तथा वर्मा व डिसूजा समुदाय म भी एक दूसरे के प्रति कोई आक्रोश उत्पन्न नही हुआ।

सुजाता वर्मा ने अपने को डॉ० डिसूजा की धार्मिक विचारधारा म पूणरूप से ढालकर भी, करवाचौथ का व्रत करना नही छोडा था और डॉ० डिसूजा के लिए उनका यही व्रत सबसे अधिक आनन्ददायक रहा। एक बार गभीर रूप से बीमार डा० डिसूजा को अस्पताल मे भर्ती कराया गया। सोहन ने इस अवसर पर डिसूजा परिवार को पूरा सहयोग दिया तथा अपना रक्त भी दिया। वे पूणरूप से स्वस्थ हो गये। सोहन न भी अपने रक्तदान का पूरा लाभ उठाया, और इसी आधार पर कौमी एकता, बालचर, रेडक्रास, आदि कई क्षेत्रो से प्रशसा-पत्र प्राप्त कर लिए।

कुछ समय बाद डॉ० डिसूजा के मकान को दो भागो मे बाटती हुई दीवार ऊची उठनी शुरू हो गयी। पता चला कि डा० डिसूजा न अन्तर्राष्ट्रीय आवास वर्ष की सफलता के लिए अपना आधा मकान सोहन को किश्तो म बेच दिया है।

कहानी के अत मे सोहन का परिचय देना भी आवश्यक हो जाता है। श्री सोहन लाल शर्मा शिक्षा विभाग मे एक अध्यापक थ तथा डा० डिसूजा का पूरा नाम डॉ० डेनिस एण्ड्र्यू डी डिसूजा था। □

# नसीहत

## रवि पुरोहित

"गुड मानिंग सर।'

"गुड मार्निंग मिस्टर पर्यायवाची।"

"और कैसे हैं सर आप?'

"ठीक हू।'

"ठीक कैसे है?"

"■ ।"

यार पर्यायवाची! तुम्हारा भी जवाब नही है। किसी प्रकार बाज आते ही नही हो। जब कह देता हू ठीक नही हू तो पूछते हो कि ठीक क्यों नही हू और जब कह देता हू कि ठीक हू तो पूछते हो कि ठीक कैसे हू? यह भी भला प्रश्न है कोई? यदि यही प्रश्न मैं तुमसे पूछू तो ?"

"मैं जवाब दूगा।'

"क्या?"

'यही कि जैसे कल इस वक्त ठीक था वैसे ही आज ठीक हू!"

मिस्टर पर्यायवाची के इस जवाब पर पूरे ऑफिस मे एक ठहाका गूज उठा। वह था भी वाकई बडा लचीला आदमी। स्वय म बडो के साथ वह बहुत ही सभ्यता, शालीनता व अदब से पेश आता था और अपने स्टाफ वालो के साथ बडे ही नाटकीय अदाज मे। वह कभी भी किसी को बोर नही होने देता था। उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा था कि वह हर आदमी के साथ एडजस्ट होने की क्षमता रखता था। मुह देखकर बात करना उसका प्रमुख गुण था और यही कारण था कि उसे स्टॉफ द्वारा हर एक का पर्यायवाची घोषित कर दिया गया था जबकि वास्तव मे उसका नाम रूपश था।

"तुम्हारा यह जवाब तो उस बात का पर्याय है मिस्टर पर्यायवाची, बीत कल का अस्तित्व कायम रखने का तो वही मतलब हुआ कि एक तीली को जलाकर

बुझा देना और फिर उसी तीली को पुन प्रज्वलित करने की कोशिश करना। इसको भोडेपन या नासमझी के अलावा किस शब्द की सज्ञा दे सकते हो?"

"इसका मतलब तो यही हुआ कि आपके अनुसार जली तीली को दुबारा नही जलाया जा सकता? नही, यह बात नही है सर! जली तीली को भी पुन प्रज्वलित किया जा सकता है।'

"अच्छा मेरे बाप! बद कर तेरी यह बक्वास। सुबह सुबह ही राम-नाम के वक्त क्यो दिमाग चाटने पर अमादा हो रहा है?"

सभी कर्मचारी अपनी-अपनी चेयर पर जा जमे थे सो पर्यायवाची फिर क्यो न जमे, वह भी जा जमा। मैनेजर, जैसा कि उसकी रोज की आदत थी, की गलती आज भी नही की थी। वह बोला था—"अच्छा तो मेरे प्यारे बदरो, अब सभी अपना-अपना काम शुरू कर दो।"

मनेजर रोज यही कहने के लिए हैबिच्युअल था, सो कभी भी कोई उसकी इस बात का बुरा नही मानता था और रोजाना मैनेजर के इस सम्बोधन के साथ ही बगैर कोई जवाब दिये अपना काय शुरू कर देते थे। सभी कर्मचारियो ने, सिवाय पर्यायवाची के अपना काय शुरू कर दिया था। पर्यायवाची सिर खुजाता हुआ बोला था—"ओ० के० बास हनुमान!"

उसके इस जवाब पर एक बार फिर थक की वह बिल्डिंग ठहाको से गूज उठी। हसते हसते सब का पेट दुखने लगा था। इसलिए पानी का एक एक गिलास पीकर सभी अपने अपने काय म मशगूल हो गए।

पर्यायवाची भी फाइलो म उलझकर रह गया मगर जैसे ही उसकी नजर कैश बुक की तरफ गयी, वह लगभग झपट-सा पडा था कैश-बुक पर। उसने लिफाफा खोला तो पता लगा कि मैनेजर साहब के लडके की शादी होने जा रही है और वह पत्र उसी का निमत्रण था, पर्यायवाची के नाम से ही। शायद मैनेजर साहब ने सरप्राइज देने के लिए निमत्रण-पत्र को कैश बुक मे फसाकर छोड दिया था।

"नही नही यह नही हो सकता!" निमत्रण-पत्र पढने के बाद पर्यायवाची लगभग चिल्ला ही पडा था।

"क्या नही हो सकता मिस्टर पर्यायवाची?" सभी कर्मचारी अपनी-अपनी चेयस छोडकर एक वृत्ताकार घेरे म खडे हो गय थे, पर्यायवाची के इद गिद। इतने मे मनेजर साहब भी पहुच गय थे।

"क्या नही हो सकता मिस्टर? जरा हम भी तो जानें?" इस बार पुन वही प्रश्न उछाला था मनेजर साहब ने।

"यह शादी नही हो सकती नही हो सकती!" पर्यायवाची हडबडाता हुआ-सा और अपने ललाट पर से पसीना पोछता हुआ बोला था।

"क्या नही हो सकती? आपसे पहले इजाजत नही ली गयी, क्या इसलिए?

जो होना है वह तो होगा ही मिस्टर, आपके नहीं कहने से क्या यह शादी नहीं होगी?' मैनेजर मुस्कराता हुआ बोला था।

"हां, जो होना है वह तो होगा ही मगर आपको यह शादी अभी करनी नहीं चाहिए।" पर्यायवाची राय देने वाले अंदाज में बोला था।

"लेकिन क्या नहीं करनी चाहिए? क्या आपने शादी नहीं की जो मुझे अपने लड़के की शादी न करने का सुझाव दे रहे हैं?" मैनेजर पास वाली खाली चेयर पर बैठता हुआ बोला था।

'क्योंकि अभी तक प्रवीण बेरोजगार है।" पर्यायवाची ने रहस्य उगला था।

"तो फिर इसका मतलब यह हुआ कि बेरोजगार आदमी कुंवारा ही रहेगा। क्या बेरोजगार की शादी करना कोई अपराध है?" मैनेजर झुंझलाता हुआ-सा बोला था।

"बेरोजगार की शादी करना अपराध तो नहीं लेकिन अत्याचार जरूर है। अभी आप प्रवीण की शादी करके उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं, तमन्नाओं तथा अभिलाषाओं का गला घोटेंगे। आखिर उसकी भी तो कुछ बनने की चाह होगी। क्या बेचारे पर यह बोझ लाद रहे हो?" पर्यायवाची रुआंसा-सा होकर बोला था।

'सुझाव के लिए धन्यवाद मिस्टर पर्यायवाची!' और इसके बाद वगैर आगे कुछ कहे वहां से उठकर चले गए थे। उनकी भाव भंगिमा से साफ जाहिर होता था कि वे पर्यायवाची के सुझाव से सहमत नहीं थे।

सभी कर्मचारी भी अपनी-अपनी चेयर्स पर बैठ गए थे। मगर पर्यायवाची कहीं और भटक गया था। उसके अतीत ने अपना सम्पूर्ण बोझ उसकी विचार शक्ति पर डाल दिया था।

उस वक्त रूपेश उर्फ पर्यायवाची बी० कॉम० का विद्यार्थी था यानी कि अभी एक वर्ष की पढ़ाई स्नातक होने के लिए और करनी थी। मगर इन्हीं दिनों उसके घर वालों को उसकी शादी करने का ऐसा नशा चढ़ा जो उतारे न उतरे। उसने घर वालों को बहुत समझाया कि शादी कोई खेल नहीं, जिसे जब चाहा खेल लिया। वह बहुत चीखा चिल्लाया मगर उसकी कोई सुन तब ना! उसकी चीख चिल्लाहट और समझावन को मिट्टी का ढेला समझकर मिट्टी के ही सुपुर्द कर दिया जाता।

जब रूपेश ने महसूस किया कि इस प्रकार बात बनने वाली नहीं है तो वह एक दिन पिताजी के आगे बिफर ही पड़ा था। उसने बगावत का झण्डा फहरा ही दिया था—"मुझे मेरे पैरों पर खड़ा हो जाने दीजिए। क्या आप लोग मुझे जबरदस्ती इस मोह-जाल में फंसाकर अवनति के कुएं में धकेल रहे हैं? क्या मेरा जीवन नरक बना रहे हैं आप लोग? बोलिए पिताजी?"

"हमने दुनिया देखी है। तुम अभी बच्चे हो, कुछ नहीं जानते। हम जो कुछ भी करेंगे, तुम्हारी भलाई के लिए ही करेंगे।' उसके पिताजी ने अपनी आंखों पर

मोटे शीशे और टूटी डण्डी वाला ऐनक चढाते हुए अपने अनुभव का बखान किया था।

"अभी आपने कहा कि मैं बच्चा हू और कुछ नही जानता, इसीलिए तो मै आपसे प्रार्थना कर रहा हू कि अभी मुझे बडा हो जाने दीजिए, कुछ जानने दीजिए।' रुपेश रोते रोते बोला था।

"मैंने कह दिया ना ! जो मैं कह चुका हू, वही होगा, तुम जाकर अपनी पढाई करो।' इस बार पिताजी ने उसे झिडक दिया था।

अन्तत वही हुआ जो शाश्वत होता चला आया है यानी कि बाल विवाहो की श्रेणी म एक और नाम दर्ज। पहले बगावत की थी मगर बाद मे उसे घर वालो की जिद् के आगे झुकना ही पडा। अपने मन म सोची हुई और उमडती अभिलाषाओ, आकाक्षाओ और तमन्नाओ को अपने ही हाथो उखाडकर दूर फेंक देना पडा।

रुपेश की शादी हुए अभी पूरा साल भर ही न हुआ था कि घर म बच्चे की किलकारी गूज उठी यानी कि वह एक बच्चे का बाप बन गया। घर के हर सदस्य के मुख पर छाई उस वक्त की खुशी की झलक दृष्टव्य थी। मौहल्ले म मिठाइया बाटी जा रही थी मगर रुपेश ? उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखाए उभर आई थी। मन-व्यथा की परत पहले से भी अधिक मोटी महसूस करने लगा था।

रुपेश को स्नातक हुए तीन वर्ष हो गए। इस तीन वर्ष के अन्तराल म वह तीन बच्चो का बाप बन गया। लेकिन रोजगार के नाम पर अब भी निराशा ही थी। तीन वर्ष पूर्व बाल विवाहो की श्रेणी मे उसका नाम जोडा गया था तो अब बेरोजगारो की शृखला म भी अव्वल नम्बर पर पहुच चुका था।

उन दिनो घर वालो के व्यवहार मे भी पर्याप्त परिवर्तन आने लगा था। पहले जो हसकर उसको बतियाते थे अब उन्ही की आखो मे स्वय के लिए नफरत और तिरस्कार के भाव देखकर वह सिहर उठता। तानो-कटाक्षो और व्यग्य-बाणो की तो उस रोटी बनाकर खिलाई जाने लगी थी।

रुपेश पिताजी की आखो के सामने पडने से ही घबराने लगा था मगर एक दिन पिताजी ने उसे अपने पास बुलाकर स्पष्ट ही कह दिया था कि अब वह खुद समझदार हो गया है पाच बच्चो का बाप भी बन गया है। अब उसे कोई काम-धन्धे पर लग ही जाना चाहिए। आखिर अकेला आदमी गृहस्थी का खर्च कब तक चलायगा। उसके पिताजी ने व्यग्य-बाणो द्वारा उसे बीध डाला था— 'और तुम तो पढे लिखे भी हो। वर्तमान म तो एक अनपढ गवार व्यक्ति भी चेजे पर जाकर नित्य 15 20 रुपये कमा लेता है। अगर और कोई काम नही मिलता है तो आइसक्रीम ही बेचनी क्या नही शुरू कर देते ? गर्मी का मौसम है चलेगी भी खूब। या फिर गोल गप्पे बनाकर बेचने शुरु कर दो।"

रूपश आर्थिक रूप से तो वैसे ही टूटा हुआ था, ऊपर से पिताजी द्वारा व्यंग्य बाणों की वर्षा ! और जब पाँचों बच्चे पापा-पापा कहकर उसके चारों तरफ घूम जाते तो मारे शर्म के उसका सिर झुक जाता । उसने कई बार माँ को कहते सुना था कि "देखो छोरा, थारो बाप आग्यो कती चीजा ल्यायो है थारे वास्ते !" माँ भी यह बात व्यंग्य के रूप में ही कहती थी ।

दो बच्चे होने के बाद रूपश ने अपनी पत्नी के ऑप्रेशन हेतु पिताजी से अनुमति चाही थी तो उन्होंने स्पष्ट कहा था—"मेरे जीते-जी तो मैं यह जीव हत्या होने नहीं दूंगा । ऑप्रेशन तो वे करवाते हैं जिनकी कमाने की हिम्मत नहीं होती, अभी तुम्हें कौन-सा जोर आ गया ? कमाकर तो मैं लाता हूँ ।'

पिताजी के इस तर्क का जवाब उसके पास सिवाय चुप्पी के कुछ भी नहीं था । वह अपना मन मसोस कर रह गया । देखने में भी विक्षिप्त-सा दिखाई देने लगा था ।

जिस दिन रूपश की सर्विस लगी थी उस दिन उन सभी ने उसके शुभ चिंतकों का लबादा फिर से ओढ़ लिया था । माँ जो ताने देते थकती नहीं थी, ने उस दिन पूरे मोहल्ले में मिठाई बाँटी थी और हर एक को यही कह रही थी कि हम तो पहले ही पता था कि हमारा लाल एक दिन बड़ा अफसर बनेगा, इसीलिए तो हमने उसे इतने दिन काई नौकरी नहीं करने दी ।

पर्यायवाची सोच रहा था कि आखिर इन सबमें यह परिवर्तन एक साथ क्यों कर आ गया है ? क्या ये भी अपने पूर्वजों के पर्यायवाची हैं जो उनके द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं को नया आयाम देते चले आ रहे हैं ? यदि ऐसा है तो यह लेन देन पूर्वजों से शुरू हुआ । हम तो सिर्फ निमित्त मात्र हैं फिर दोष का भागी उन्हीं पूर्वजों को क्यों नहीं माना जाता ?

पर्यायवाची ने महसूस किया कि उसके सामने की टेबल पर पड़ी लेजर, कैश बुक और बिल-बहियाँ इत्यादि स्वतः ही एक दूसरे के ऊपर जम गई हैं । अचानक उन फाइलों ने पर्यायवाची के बेटे-बेटियों का रूप ले लिया और वे उसे एक ही खाट पर एक-दूसरे के ऊपर सोते हुए दिखाई दिखाई देने लगे । वह धीरे से बड़बड़ाया था—"मौज मारो बेटो ! यह भी शुक्र है कि आप भाई-बहिनों ने घर की दीवार बाहर तो नहीं गिरने दी और आपस में ही समझौता कर लिया ।" उसने महसूस किया कि उसके बेटे-बेटियाँ हिल रहे हैं तो वह लगभग चिल्ला ही पड़ा था—"अरे नालायको, बंद करो तुम्हारी यह धक्कम-पेल ! कुछ तो शर्म करो, आखिर मैं तुम्हारा बाप हूँ ।'

वास्तव में हुआ यह था कि ड्यूटी टाइम आफ हो गया था और उसका एक साथी ही उसके आगे से सभी फाइलें इकट्ठी कर रहा था तो वे अचानक फिसल कर गिर गई थी । यही सब उसको कुछ और ही दिखाई दिया था, भावनाओं में

बह जाने के कारण।

"क्या बात है मिया ? काहे को हल्ला मचा रहे हो ? घर नही चलना है क्या अब, छुट्टी हो गई है। तुम क्या सोच म घुल जा रहे हो सुबह से ? यदि मैनजर अपने लडके की शादी करता ह तो वह जाने उसका काम जाने, अपनी बला स।" उसका साथी हसता हुआ सा बोला था।

पर्यायवाची क विचारा का महल ढह गया और वह चेयर स उठकर थके कदमो से घर की तरफ बढने लगा।

"क्या बात है रूपेश बाबू ? हमस नाराज हैं क्या, जो कभी नजर उठाकर भी नही देखत इधर ?

रूपश न अपनी नजरें उठाई तो उठी की उठी ही रह गई। उपरोक्त स्वर उसके पडौस म रहन वाली एक लडकी चम्पा का था। रूपेश सोच रहा था कि जब आदमी के दिन फिरत है तो घर वाला क साथ साथ पडौसी भी बदल जाते ह। वह भी वक्त था, जब यही चम्पा एक दिन अपनी एक सहेली से कह रही थी, उसको सुनाकर ही कहा गया था—'अर रूपा, तुम्ह पता है आजकल रूपश बाबू क्या काम करते हैं ?"

"अरे भाई मैं क्या जानू ? तुम बताओगी तभी तो पता चलेगा ना ?" रूपा ने जवाब दिया था।

"अरे वाह ! तुम्ह इतना ही पता नही, रूपेश इज डूइग वेरीगुड वक इन दीज डेज।' चम्पा का व्यग्य मिश्रित हसता हुआ स्वर।

"अरे भाइ कुछ बताओगी भी या ऐसे ही बकती रहोगी ?"

"अरे, अभी कहा ना ! वरी गुड वक।" चम्पा ने रहस्य पर लिपटी चद्दर की गाठ को और अधिक मजबूत करत हुए जवाब दिया था।

"जब गुड गुड ही बकती रहोगी या गुड का स्वाद भी चखाओगी ?"

'आह हम तो बदनसीब ह, ऐसी हमारी तकदीर कहा जो इस गुड का स्वाद चख सकें। काश एसा हाता !

और आज वही रूपा इस कदर बावली हो रही है मेरे दशनो के खातिर ! वाह रे ईश्वर , शायद तुम्हारी पहली और आखिरी गलती इस चम्पा की बनावट ही थी। तुमने भी भूल से कहा हज्जाम की खोपडी पर महिला का लेबल लगा दिया। हज्जाम भी रहम तो खाता है ना ! शेव बनाने के बाद गालो पर शेविंग लोशन लगाकर क्रीम का लेपन कर उन्हे फिर से चमकाकर शायद इतनी देर तक उन बेचारो को छीलता रहता है, उस गलती का प्रायश्चित इस रूप म करता है। बेचारा सभ्य हज्जाम ! और यह स्साली कुलटा, अपनी गलती का प्रायश्चित मुझसे लिपट लेप्रर करना चाहती है ? ऊह ! म भी कहा जोडी मिलाने चला हू। कहा ... और कहा गगू तली ! □

रूपश आत्मिक रूप म तो वैसे ही टूटा हुआ था, ऊपर म पिताजी द्वारा व्यंग्य बाणों की वर्षा ! और जब पापा बच्चे पापा पापा कहकर उसके चारों तरफ घूम जाते तो मारे शर्म के उसका सिर झुक जाता। उसने कई बार मा को कहते सुना था कि "देखो छोरा, थारा बाप आम्यो कती चीजा ल्यायो है थारे वास्ते!" मा भी यह बात व्यंग्य के रूप में ही कहती थी।

दो बच्चे होने के बाद रूपेश ने अपनी पत्नी के ऑप्रेशन हेतु पिताजी से अनुमति चाही थी तो उन्होंने स्पष्ट कहा था—"मेरे जीते-जी तो मैं यह जीव हत्या होने नहीं दूंगा। ऑप्रेशन तो व करवाते हैं जिनकी कमाने की हिम्मत नहीं होती, अभी तुम्हें कौन-सा जोर आ गया? कमाकर तो मैं लाता हू।'

पिताजी के इस तर्क का जवाब उसके पास सिवाय चुप्पी के कुछ भी नहीं था। वह अपना मन मसोस कर रह गया। देखने म भी विक्षिप्त-सा दिखाई देने लगा था।

जिस दिन रूपेश की सर्विस लगी थी उस दिन उन सभी ने उसने शुभ चिंतकों का लबादा फिर से ओढ़ लिया था। मा जो ताने दिन करती नहीं थी, ने उस दिन पूरे मोहल्ले म मिठाई बाटी थी और हर एक को यही कह रही थी कि हम तो पहले ही पता था कि हमारा लाल एक दिन बड़ा अफसर बनेगा, इसीलिए तो हमने उसे इतने दिन कोई नौकरी नहीं करने दी।

पर्यायवाची सोच रहा था कि आखिर इन सबमें यह परिवर्तन एक साथ क्यों कर आ गया है? क्या ये भी अपने पूर्वजों के पर्यायवाची हैं जो उनके द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं को नया आयाम देते चले आ रहे हैं? यदि ऐसा है तो यह लेन-देन पूर्वजों से शुरू हुआ। हम तो सिर्फ निमित्त मात्र हैं फिर दोष का भागी उन्हीं पूर्वजों को क्यों नहीं माना जाता?

पर्यायवाची ने महसूस किया कि उसके सामने की टेबल पर पड़ी लेजर, केश बुक और बिल-बहियां इत्यादि स्वतः ही एक दूसरे के ऊपर जम गई हैं। अचानक उन फाइलों ने पर्यायवाची के बेटे-बेटियों का रूप ले लिया और वे उस एक ही खाट पर एक दूसरे के ऊपर सोते हुए दिखाई दिखाई देने लगे। वह धीरे से बड़बड़ाया था—"मौज मारो बेटो! यह भी शुक्र है कि आप भाई बहिनों ने घर की दीवार बाहर तो नहीं गिरने दी और आपस में ही समझौता कर लिया।' उसने महसूस किया कि उसके बेटे बेटियां हिल रहे हैं तो वह लगभग चिल्ला ही पड़ा था—"अरे नालायको, बन्द करो तुम्हारी यह धक्कम-पेल! कुछ तो शर्म करो, आखिर मैं तुम्हारा बाप हू।"

वास्तव म हुआ यह था कि ड्यूटी टाइम ऑफ हो गया था और उसका एक साथी ही उसके आगे से सभी फाइलें इकट्ठी कर रहा था तो वे अचानक फिसल कर गिर गई थी। यही सब उसको कुछ और ही दिखाई दिया था, भावनाओं में

वह जाने के कारण।

"क्या बात है मिया ? काहे को हल्ला मचा रह हो ? घर नही चलना है क्या अब, छुट्टी हो गई है। तुम क्या सोच म घुल जा रहे हो सुबह से ? यदि मनेजर अपने लडके की शादी करता ह तो वह जाने उसका काम जाने, अपनी बला स।" उसका साथी हसता हुआ-सा बोला था।

पर्यायवाची क विचारो का महल ढह गया और वह चेयर से उठकर थके कदमो स घर की तरफ बढने लगा।

"क्या बात है रूपश बाबू ? हमसे नाराज हैं क्या जो कभी नजर उठाकर भी नही देखत इधर ?

रूपेश न अपनी नजरें उठाइ तो उठी की उठी ही रह गई। उपरोक्त स्वर उसके पडोस म रहने वाली एक लडकी चम्पा का था। रूपेश सोच रहा था कि जब आदमी के दिन फिरते हैं तो घर वालो के साथ साथ पडौसी भी बदल जात हैं। वह भी वक्त था, जब यही चम्पा एक दिन अपनी एक सहेली से कह रही थी, उसको सुनाकर ही कहा गया था—'अर रूपा, तुम्ह पता है आजकल रूपेश बाबू क्या काम करत हैं ?'

"अरे भाई मैं क्या जानू ? तुम बताओगी तभी तो पता चलेगा ना ?" रूपा ने जवाब दिया था।

"अरे वाह ! तुम्ह इतना ही पता नहीं, रूपेश इज डूइग वेरीगुड वक इन दीज डेज।" चम्पा का व्यग्य मिश्रित हसता हुआ स्वर।

"अर भाइ कुछ बताओगी भी या ऐसे ही बकती रहोगी ?"

"अरे, अभी कहा ना ! वेरी गुड बक।' चम्पा न रहस्य पर लिपटी चद्दर की गाठ को और अधिक मजबूत करत हुए जवाब दिया था।

"अब गुड गुड ही करती रहोगी या गुड का स्वाद भी चखाओगी ?"

'ओह हम तो बदनसीब हैं, एसी हमारी तकदीर कहा जो इस गुड का स्वाद चख सकें। काश एसा होता !

और आज वही रूपा इस कदर बावली हो रही है मरे दशना के खातिर ! वाह रे ईश्वर , शायद तुम्हारी पहली और आखिरी गलती इस चम्पा की बनावट ही थी। तुमन भी भूल मे नहा हज्जाम की खोपडी पर महिला का लेबल लगा दिया। हज्जाम भी रहम तो खाता है ना ! शेव बनाने के बाद गालो पर शेविंग लोशन लगाकर क्रीम का लपन कर उन्हे फिर स चमकाकर, शायद इतनी देर तक उन बेचारो को छीलता रहता है, उस गलती का प्रायश्चित इस रूप म करता है। बचारा सभ्य हज्जाम ! और यह स्साली कुलटा, अपनी गलती का प्रायश्चित मुझसे लिपट लेकर करना चाहती है ? ऊह ! मैं भी कहा जोडी मिलान चला हू। कहा तो राजा भोज और कहा गगू तेली ! ◻

# ग्रहनाता चाद

श्यामसुन्दर भारती

बस में जो घुटन थी भीड़ की वजह से, शहर से बाहर निकलते ही वह याद नहीं रही थी। जंगल की ओर शुरू होते-होते एक अजीब तरह की मनभावन महक के साथ ठंडी हवा के झोंके बस की खिड़कियों में से आने लगे थे। ये सर्दी और गर्मी के बीच के ही कोई दिन थे, जब धूप में तपनी लगती थी और छांव में ठंड का अहसास होता था। इसी तरह के ठंडे और गर्म मौसम का कोई एक दिन था, जब मैं छोटे छोटे गांवों के लिए चलने वाली निजी बसों में से किसी एक बस में सफर कर रहा था। मुझे उस गांव जाना था, जहां आज से मेला शुरू होने वाला था। अखबार के लिए 'मेले का आंखों देखा हाल' मुझे लिखना है इसकी सूचना मुझे एक दिन पहले ही दे दी गई थी। यही उद्देश्य था मेरा, जिसके लिए मैं सफर कर रहा था।

एक तो रात बहुत देर तक काम करता रहा था इस कारण, और फिर रवाना होने से पहले सोगरा दही के साथ खा लिया था। फिर शहर से बाहर निकलते ही बस की खिड़कियों से हवा के ठंडे-ठंडे झोंके आने लगे थे जिसकी वजह से बस के रवाना होने के थोड़ी देर बाद ही पलकें भारी होने लगी थीं और झपकियां आते-आते कब नींद आ गई, कुछ पता ही नहीं चला।

किसी ने मेरा कंधा झिंझोड़ा तो मैंने चौंककर आंखें खोलीं—सामने कण्डक्टर खड़ा मुस्करा रहा था। मेरे आंखें खोलते ही उसने अजीब तरह से हंसते हुए मुंह बनाया और बोला—'बाबू साब, उतरणो नी के?"

मैं आंखें मलता हुआ उठा और थैला कंधे पर डाल बस से नीचे उतर गया। ड्राइवर भी शायद मेरी ही उडीक में था सो मेरे नीचे उतरते ही बस घरघराट करती स्टार्ट हुई और चल दी।

मैं बहुत देर तक वहीं खड़ा जाती हुई बस के ' हुई रहा। बस आंखों से ओझल हो गई तो मैंने इधर

वहा स थोडी दूरी पर चाय की होटल-सी दिखाई दी। मैं वहा तक गया और बाहर पडे माचे पर बठ। हुए हाटल वाले स बोला—"भायला, एक पसल चाय तो बणा दे।"

मैंन अपनी बात पूरी नही की तव तक एक छोरे ने पानी से भरा लोहे का डिब्बा लाकर मुझे पकडा दिया। मैंन उठकर आखा पर पानी के छीट दिए, मुह धाया और दो घट लेकर बठ गीला किया। तव तक चाय आ गई। मैंन चाय की एक दो चुस्किया ली तब तक एक दो ग्राहक और आ पहुचे वहा और छीण से बनी बेंच पर बठकर आपस म बतियाने लग। उनम स एक न धोती म खासी हुइ कोयली निकाली और उसम स तम्बाकू निकालकर चिलम भरी। इधर उधर से ढूढ मूज का फाया बनाकर उस पर रखा। साफी गीली करके लपेटी और कोये पर तीली रखने क बाद कस खीचकर लपट उठा दी। इतने मे उनके आग चाय आ गई। जिमक हाथ म चिलम थी उसन चिलम को पत्थर के सहारे खडी की और फिर तीना चाय पीन और बातें करन लगे। उनकी बातो स पता चला कि वे भी मले जा रह थे। इसी बीच एक के हाथ के टिल्ल से चिलम गिर पडी और तम्बाकू बिखर गई। देखकर उनमे से एक बोला—"फूटे भाग फकीर के, भरी चिलम गिर जाए।' आर फिर तीना एक साथ हस पडे। मुझे भी हसी आ गई। होटल वाले को भी और काम करन वाले छोरे को भी। मैं उनके मुह से सुन चुका था, फिर भी यू ही पूछ लिया—"मेले जा रह हा ?'

"हा ।" उनम स एक ने लम्बी हामी भरी व मेरी ओर उन्मुख होता हुआ बोला—"आप री बिराजणी ?"

"मैं शहर मे रहता हू।"

"अठै ?"

"मेले जाना है।'

"तो चालो ' वह प्रसन्नता दशाता हुआ बोला—"एक से भले दो, दो से भले तीन,' वह गावई हिन्दी बोलन लगा था—"आपके समेत ता आपा चार हो जावेंगे। माथ ता क्या ह के बाप का ई भला। पछै मिनख के साथ तो भाग से मिलता है।' कहते कहत उसने गिलास ऊपर उठाकर मुझे दिखाया और बोला—"थोडी चायडी चूयडी पी ला, पछै चालागा।'

वे तीनो चाय पी चुके तो मैंन हाटल वाले को पैसे दिए व उनकी ओर देखता हुआ बोला—"अब चलें ।"

मेरे पूछते ही उन्होने गदन के लटके से हामी भरी और उठकर चलते हुए मुझे साथ चलने का इशारा किया। अब हम गाव की सीव स थोडा बाहर पगडडी पर चल रहे थ। थोडी देर तक चारा ही चुपचाप अपनी-अपनी धुन मे चलते रहे। मैंने साचा—मैं चुप हू इसलिए य भी चुप है। लेकिन मै तो जानबूझकर चुप था।

उनको उलीचन की गरज था। आधा देखा हाल के साथ-साथ रोता। सुना हाल भी तो लोग रों के साथ पढ़ने ही है। इस लिए मैं चुप था। मेरा चुप रहना ठीक रहा। थोड़ी देर बाद उनमें से एक ने मौन तोड़ा—"मैं पूछूं के शहर के बाबू सा गाव के मेले को चाव किया होया ?"

'बस यूं ही ।" मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया—"मुझे पसन्द है—मेले।

'पसंद है तब तो बात ही बात है ।" वह भय और उत्साह से साथ बोलने लगा—"पसन्द वाली बात तो भली है पण अब वो बातें कहां। पेल यहां मिन्दर के चौफेर ऐसा मेला जमता, ऐसा मेला जमता के दूजी बात छोड़ो। शहर से कमी-बेंसी आलीस्यान दुकान यहां आकर लगती थी। गूई से लके हलवाणी तक और थोड़ी से लगा के बजरंग की चिकवाली और जाणे कहां-कहां की भजन मण्डलियां आती और आधी आधी रात का घमचक मचाती के मत पूछो। जातरू सो सो कोसां से पैदल चलकर आते। और खास दिन तो राजाजी बापजी खुद पधारते दरसण खातर। लोग-लुगाया की एसी भरदी पड़ती के थाली फेंको तो नीचे नहीं पड़े। इत्ती भीड़ इत्ता मिनख। पण मजाल के जो कोई ऐसी वैसी माड़ी बात हो जावे।" यहां तक आते-आते वह थोड़ा बुझ गया—"पण बाबू साब, अब मिणयो तो मेला है और मिणको दरसण है साच पूछो तो दरसणां को तो नाम है कोरो बाकी तो ठगां का मेला है ठगां का। अब तो लुच्चा-लफंगा ही एकठ होवै है। भला मिनखा और घराणे की बहू बवारी के आणे का तो बखत ही नहीं रहा अब। देखो जिधर ही भिस्टवाड़ा देखो। जिधर ही चोरा कूटा।' वो एक बार जो शुरू हुआ तो फिर बिना रुके कहता ही गया—"मजे की बात तो या है बाबू साब, के इत्ता सब होता थका भी कोई कहण-सुणण वाला नहीं है। जिसकी जो मरजी पड़े, कर रैया है। बोलता बोलता वह थोड़ा रुका और फिर दोनों हाथ आसमान की ओर ऊपर उठा कर कहने लगा—'हे सांवरिया धणी, तीन तिलोकी का नाथ, तू बडो है अच्छो बखत दखायो रे भगवान इण मानखै को के हवाल होसी अब थूं ही जाण।" कहते-कहते उसने मेरी ओर देखा और बात की सारी उदासी को एक ओर धकेलते हुए उत्साह के साथ बोला—'लो वो देखो वो मेले का झंडा और वो रोसणी की झपाझप दीखण लाग री है।'

मैंने सिर उठाकर देखा दूर बत्तियां झिलमिलाती नजर आ रही थी। मेले के करीब पहुंचते पहुंचते उन तीनों ने 'राम राम' कहकर विदा ली और मैं मेले की सीव में घुस गया।

उसके कह अनुसार मेले ही पहले सी बात अब नहीं रही होगी, फिर भी मेले का तामझाम कुछ कम नहीं लग रहा था। चारों ओर दुकानें ही दुकानें सजी हुई थीं। तरह-तरह की। साधारण घर बिकरी की चीजों से लेकर मनिहारी की नयी नयी फैसन की चीजें भी बिकरी के लिए आई हुई दीख रही थी दुकानों और ठेलों पर।

लेकिन अब तक अंधेरा छा चुका था इसलिए बाजार में छीड होने लगी थी। ठेलो और फुटपाथों के सामान एक एककर ढापे जाने लगे थे।

अब आराम करके कल सुबह जल्दी काम शुरू कर दूगा, यही सोचता हुआ मैं अपनी धुन मे चलता जा रहा था। मुझे रात टिकने के लिए कोई जगह भी ढूढनी थी और काफी दूर से पैदल चलकर आने के कारण भूख भी अब महसूस होने लगी थी।

खासा आगे निकल जाने पर एक ढाबे पर मेरी नजर पडी। 'शुद्ध वैष्णव भोजन' का बोर्ड टगा था। एक ओर गोबर से लीपी चौकी पर बैठी एक लुगाई रोटिया सेंक रही थी और जेट लगाती जा रही थी। मैंने सोचा, आगे ही थका हुआ हू। अब कहा टापता फिरूगा खाने के लिए। यही खा खू लू। ऐसा विचार मैं ढाबे के बाहर पडे लकडी के पाट पर जाकर बैठ गया। मुझे देखते ही ढाबेवाली ने वहा काम करने वाले लडके को आवाज लगाई—' छोरे बाबू साब के पाणी लगा चाल फुरती कर " और फिर मेरे सामने देखकर बोली—' हुक्म करो बाबू साब, पेसल चाय बढिया खाणा जोरदार एकदम गरमा गरम हुक्म करो " उसकी नजरें वापस छोरे की ओर मुड गई— 'अरे ऐ रे ढीला ढक्णा चाल फुरती कर बाबू साब को अन्दर बठाय !"

ढाबेवाली की उम्र चालीस पैंतालीस के आस्पास रही होगी। शरीर भारी, आवाज में मरदानगी। हाथो में फुर्ती और ग्राहको के साथ बोली में आजिजी। मैं पाट से उठकर ढाबे के अन्दर बैठ गया। तीन चार बचो के आगे टेबुलें रखी थी। वह छोरा पहले तो जमन की गिलास और जग भर कर मेरे आगे रख गया और फिर फुर्ती से खाना भी ले आया। भूख अब तक आकरी हो चुकी थी सो मैं गपागप खाने लगा। खाना—मेले का ढाबा देखते हुए बुरा नही था। और कुछ भूख भी स्वाद बढा देती है। मैं खाना खा रहा था और अब तक नजरो के सामने से गुजर सारे दृश्य का पुनरावलोकन भी करता जा रहा था। सोच रहा था कि मेले का आखो देखा हाल कुछ इस अदाज में लिखा जाय कि अखबार पढने वालो की आखो के सामने मेला प्रत्यक्ष हो जाये। मैं ऐसे ही कुछ विचारो मे डूबा था। मुह का कौर तो अपने आप ही चबाया जा रहा था। विचारो के धागे से बधा मैं लटक रहा था। मेरी ध्यान शृखला को सहसा एक झटका लगा। ढाबेवाली लगभग काजती हुई पुकार रही थी—' रे छोरला पावर कम दीख रासणी धीमी पडे है एक अडो (बल्ब) मोटो लगाय दे चाल ।'

ढाबेवाली ने अडा शब्द बोलते हुए मुह कुछ ऐसा बनाया कि मुझे कण्डक्टर की सूरत याद आ गई। बस में मेरा कधा झिझोड कर उठाने के बाद वह ड्राइवर की ओर देखकर मुस्कराया था। तब उसने भी मुह कुछ इस तरह बनाया था कि केवल एक्सन की बजाय अगर उसने शब्द मुह से बाहर निकाला होता तो कडा वडा,

झडा या अडा  इही मे मिलता-जुलता कोइ श द होता। लेकिन मतलब ? मूरख वही था। य स्साल ड्राइवर कडक्टर भी बडी चालू चीज होते है। कैसा मुह बनाया था उसने ? मैं उसकी नक्ल-सी करन लगा। यहा तक कि छोरा रोटी लिए मेरे पास खडा था लेकिन मैं इस समय बस मे कडक्टर के आमने-सामने था। मेरे मुह से अचानक निकल गया—अडा ।

खिण खिण खिण छोरे ने दात काढ दिये। वह अपन मुह को पूरी कोहनी स ढापकर अपनी हसी दबाता हुआ बोला—"आप टिक कहा हो ?"

मैं एक झटके क साथ अपनी जगह लौटा। छोरा छोटा था, फिर भी मुझे बहुत झिझक हुई। क्या सोचा होगा बेचारे ने ! वैष्णव ढावे मे अडे की माग ? मुझे अपन आप पर चिढ आई कि कैसी कैसी हरकतें मुझसे कभी कभी हो जाती हैं।

"कही नही !" मैंने सहज होने का उपक्रम करते हुए कहा—"अभी तक तो कोई ठिकाणा नही। डाग पे डेग है।" कहते-कहते मैं थोडा रुका और उसकी मिर्जमिजी आखो म घुमता हुआ बोला—"है कोई ठिकाणा तेरी जाण मे ?"

"जरूर । 'उसकी आखें नाचन लगी—"म्हारा आज स ई सरु हाया है। सो इतरी गरदी नी है। ठाणा तो आपण अठै ई है" लेकिन मेर अप टू डेट लिवास से उसे थोडी शका हुई—"आप रैवोगा अठ ?"

मेरे हा करत ही वह बोला—"आप भोजन जीमो नहचे म मैं आपका थला ठाण धर आवू।' कहते हुए उसन मेरे थैले की ओर हाथ बढाया। मैंने उछालकर अपना हाथ आगे किया—"नही, इसम कीमती सामान है। कैमरा वगैरा। इस यही पडा रहने दे।"

ढाबवाली हम दोनो की बातें सुन रही थी। मेरे थैल के लिय मना करते ही वह हथलियो पर सागरा थेपती थेपती ठहरी और बोली—' बाबू साब, बेफिकर रैवो, यो नथकी को ढाबो है। ज गिराक की सूई ई गमजावै तो उसकी जूती और मेरा माथा। पराई माहग की ढिगली प थूक ई दू ता मुझे पिट्ट कह दणा। मूया हुआ तो साप भी नही रावै बाबू साब। आप बेफिकर रैवो।" वह उसी लय म आगे बोली— 'छोरा र बाबू साब का थैला ठाण धर, चाल फुरती कर।'

मुझे ढाबवाली का इस तरह धाराप्रवाह बोलना बहुत अच्छा लगा। मैं एक बार थोडा हसा और वापस खाना खान लग गया। छोर न मेरा थला अपन कधे पर लटकाया और थोडी-सी देर म ही वह वहीं ठाण रख आया।

मैंन खाना खाकर कुल्ली की और हाथ धोन के बाद खान क पस दन क लिए जेब म हाथ डाला कि वह बोली—' अभी नहीं बाबू साब। सारा हिसाब जान बखत करत जाणा। ' कहती हुई वह छोरे की ओर उन्मुख हुई—"बाबू साब को रेमट करण की जगा बता क आ।

मैं छोर क साथ हो लिया। ढाब क पिछवाडे छोटा-सी बारी म स होकर यह

एक ओरडी थी, जिसे फिल्मी नायक नायिकाओ के कलैडरा से सजा कर नयी फैशन देने की कोशिश की गइ थी। एक ओर माचा बिछा था जिस पर साफ-सुथरे बिस्तर लग थ। छोरा अपनी मिर्जामिजी आखो को टमकारता हुआ बोला—"साब, शहर की होटलो जैसा ठाट तो यहा नी है पण " वह आग भी कुछ कहना चाहता था लकिन—"बखत पर जा है सो ठीक है।" कहते हुए मैंन उसे बीच म ही टोक दिया—"क्या नाम है रे तेरा ?"

"कनियो।" उसने तुरत उत्तर दिया। मुझे कन्हैया के कनियकरण पर हसी आ गई। वह बोला—"पाणी का जग धर दिया है। और किणी चीज की जरूरत पडे तो मेर का हला पाड लणा।" कहकर वह ओरडी स बाहर निकल गया। मैं, अब तक खासा थक चुका था और रात भी हो चुकी थी। मो नीद बराबर थपकिया देन लगी थी। मैंने पट उतारकर तह करके तकिय के नीचे रखी और थैले से निकालकर तहमद बाधी। फिर इधर उधर नजर फैंकी। ओरडी म तार खीचकर बोड पर बल्ब लगाया था। उसी पर जीरो का बल्ब भी जल रहा था और जरूरत पडे तो स्टूल पर टेबुल पखा भी रखा था। लेकिन ठड थी और मुझे इसकी आवश्यकता महसूस नही हुइ। मैंन किवाड भिडाकर लाइट ऑफ की और सो गया।

पलक बस भारी हुई ही थी कि ओरडी के किवाडा पर ठक-ठक की धीमी सी दस्तक सुनाई दी। मैंने नीद की झपकियो को एक ओर धकेलत हुए पूछा—'कौन ?'

"मैं हू बाबू साब कनियो।"

'किवाड यू ही भेडे हुव है। धकेल कर आ जा।"

"साब।' वह बाहर स ही फुसफुसाया—"साबजी लाया हू आपने वो हुक्म दिया था नी वा अडा ।' अतिम शब्द उसन बहुत ही दबाकर बोला था।

"अडा ? ' मैं अचम्भे म था कि इतन म ओरडी क किवाड धीर न चररडड ड करते हुए खुले जीरो बल्व क प्रकाश म मैंन दखा मैं साफ-साफ दख रहा था एक सुदर ग्रामीण बाला मुस्कराती हुई अदर घुमी और और उसन धीरे स किवाड़ भिड़ाकर कुडी चढ़ा दी। ◻

# लच बॉक्स

## प्रमिला शर्मा

राजेश त्रिपाठी न बच्चे क लच बॉक्स पर पर्ची लगाई और मुड रहे थे कि एक अपरिचित युवती न उन्हें रोका—

"एक मिनट, क्या आपका पन देंगे ?"

राजेश न कोट की जेब स पन निकाल कर युवती के हाथ म दे दिया। युवती लच बॉक्स पर अपना नाम लिख रही थी और राजेश की आखें विस्मय से युवती को ऊपर स नीचे तक देखकर नजरें घुमाकर एकबारगी डबडबाने को उद्यत हुई।

वेशभूषा से स्पष्ट झलक रहा था कि यह युवती विधवा है। खाली-खाली कोमल कलाइया, एकदम सफेद साडी म लिपटी उसकी सुपुष्ट देह और लावण्यमय निर्विकार भाव स अभिभूत चेहरा और बिंदिया विहीन भाल की सपाट बयानी इस धारणा की पुरजोर पुष्टि कर रही थी।

युवती का पन लौटाना, स्कूल की आधी छुट्टी की घटी का बजना और खिल खिलात बच्चा का शोर शराबा इस कदर फला कि राजेश त्रिपाठी के मस्तिष्क म काध रही विचार शृंखलाआ के तार यकायक जाने कहीं खो गय।

राग और सध्या भी अपने अपने लच बॉक्स उठाये एक तरफ चल दिये। यू तो कक्षा मे पढन वाल बच्चा म मेल-जोल हाता ही है पर भूरी आखा वाली सध्या त्रिपाठी और वाचाल स्वभाव के राग अग्रवाल मे प्रगाढ मैत्री दोस्ती का एक उदा हरण है। कक्षा म पढत हुए दोनो न जान कब मिले और धीरे धीरे उनका मिलना अटूट दोस्ती म बदल गया।

अब दोनो लच एक साथ करते, किताबो का आदान प्रदान करत और दुनिया जहान की बातें करत।

लच बाक्स का ढक्कन हटात ही राग उछल पडा "ओह, आज तो मम्मी न गाजर का हलुआ भेजा है।'

सध्या न लच बाक्स खोला और वही रोजमर्रा वाली आलू की सब्जी और

बदसूरत पराठा देखकर उदास हो गई।

राग ने कहा—"क्या सोच रही हो, लो यह हलुआ खाओ। वैसे भी इतना सारा मैं थोड़े ही खा सकूंगा।"

सध्या ने प्रत्युत्तर दिया—"रोज रोज तुम्हारा लंच बाक्स चट कर जाती। यह क्या अच्छी बात है।"

"देखो हम दोनों दोस्त हैं न, तो दोस्तों के बीच में परहेज थोड़े ही होता है।"

"राग, तुम्हारे लंच बॉक्स में तरह-तरह की चीजें आती हैं जो तुम्हारी मम्मी बना कर भेजती हैं और मुझे तो रोज ही यह उबाऊ सब्जी खानी पड़ती है क्योंकि सहन है मेरी मम्मी भगवान के घर चली गई है। अब मैं उन्हें जानती तक नहीं पापा बेचारे कहां तक मेरा ख्याल रखें, उन्हें नौकरी पर भी तो जाना पड़ता है। एक नौकर है जो घर का सारा काम देखता है। यह तुम्हारा लंच बाक्स मुझे खाने न मिलता तो पता भी न चलता कि दुनिया में खाने की ढेर सारी अच्छी अच्छी चीजें हैं।"

यह कहते-कहते सध्या उदासी हो गई। तब राग ने उसे धीरज बधाते हुए समझाया—"चल पगली, अच्छे बच्चे कहीं रोते हैं, तुम्हारे पापा कितना ख्याल रखते हैं और तुम्हारी मम्मी बहुत अच्छी होंगी तभी तो भगवान के घर चली गई है।"

"और सुनो, तुम फिकर न करो, जो भी खाने को जी चाहे मुझे बता दिया करो। मेरी मम्मी मान बक्त रोज रात को यह पूछती है—'मुन्ने, कल लंच बाक्स में क्या भेजूं।

दोनों बच्चे खाने में व्यस्त हो गये फिर रिसेस समाप्त होने की घंटी बज गई तो सब बच्चे अपनी कक्षाओं में लौट गये।

दूसरे दिन सध्या का नया बस्ता देखकर राग उत्सुकतावश पूछ बैठा—

"यह बस्ता कौन-सी दूकान से खरीदा?"

और सध्या प्रसन्न होकर बताने लगी "यह बस्ता तो मेरे पापा दिल्ली से लाये हैं। टूर में जाते ही रहते हैं, मेरे लिए कोई-न-कोई नई चीज ले ही आते हैं। इस बार तो ढेर सारी चीजें लाये हैं—चाबी वाले खिलौने, कपड़े आदि आदि।"

"राग, तुम मेरे घर आना, मैं तुम्हें यह सब चीजें दिखलाऊंगी।"

राग ने कहा "नहीं, नहीं तुम्हारे पापा मुझ से नाराज होकर बात भी न करें कि मैं तुम्हारे खिलौने कहीं तोड़ दूंगा।"

"नहीं राग, मेरे पापा तो बहुत अच्छे हैं। मैंने तुम्हारे बारे में उन्हें बताया है और कहा है कि पापा, आप ढेर सारी चीजें तो लाते हो, पर खाने की चीजें तो

मुझे राग के लच बाक्स से ही मिलती है।"

दोनो बच्चे रिसस की छुट्टी मे अपना लच बॉक्स लेन जा रहे थे कि लौटते हुए उह अपन मम्मी पापा दिखे। बच्चा ने हाथ हिलाकर उह 'टा-टा' किया।

"देखो राग, वो जो नील सूट मे थे वही तो मेरे पापा ह।"

"कित्ता अच्छे है" और राग बताने लगा "वा सफेद साडी म जो थी न, वही ता मेरी मम्मी है।"

सध्या न पूछा—"तुम्हारी मम्मी सफेद कपडे ही क्यो पहनती हैं।'

"राग वो बताती है पापा नही है इसलिए उह वैसे ही कपडे पहनने पडत है। रोज पापा की तस्वीर पर फूलो का हार चढाती है फिर भी पापा आज तक लौटकर नही आय।'

"सध्या क्या बताऊ यही तो मर घर की कहानी है। मेर पापा मेरी मम्मी की तस्वीर पर फूल चढाते ह पर एक बार भी आकर उन्होने मुझसे प्यार नही किया।'

लच बाक्स खोलने से पहले सध्या ने राग को एक बढिया सा पन दिया "लो, यह पन तुम्हारे लिए लाई हू।" राग उछल पडा। सध्या बताती जा रही थी कि मैंने पापा से कह दिया है कि जहा भी जाए मेरे दोस्त राग के लिए भी कुछ न कुछ लाए।

"बेटी, नौकर बता रहा था। आजकल तुम्हारा लच बाक्स वसे ही आता है।

"छी पापा, मैं तो हाथ तक नही लगाती, वो मेरा दोस्त है ना राग, उसकी मम्मी एसी-ऐसी चीजें बनाकर भेजती है कि बस, खाने म मजा आ जाता है।'

"तब तो राग खुद भूखा रह जाता होगा।

'नही उसन बता दिया है कि मेरी मम्मी नही है तभी तो राग की मम्मी डबल खाना भेजती है।'

'क्या करते है राग के पिता '

सध्या रुआसी हो जाती है "वो इस दुनिया मे नही है। लच बाक्स देन वह खुद ही आती हैं।"

राजेश त्रिपाठी के दिमाग म एक चित्र घूम गया।

राग को उसकी मम्मी कहानी सुना रही थी और बता रही थी कि अच्छ दोस्त कैस होत हैं।

राग न जेब मे पेन निकाल कर दिखाते हुए कहा "मम्मी, मेरी दोस्त सध्या के पापा कितने अच्छे है मेरे लिए भी यह अच्छा सा पन लाये हैं।'

अगले दिन लच बाक्स देने आय राजेश त्रिपाठी ने पूछा "मेरी बच्ची के दोस्त राग की मम्मी आप ही तो नही है।"

और उस महिला ने स्वीकृति मे सिर हिलाया।

लच के वक्त सध्या न राम स कहा "क्या तुम्हारी मम्मी और तुम हमारे घर आकर नही रह सकत हो ?"

'पर यह कम हो सकता है ?"

"क्यो नही हो सकता, तुम्हार पापा नहीं है और मरी मम्मी नही है।

"पर मुश्किल यह है कि उनको कहे कसे और एक चक्कर यह भी ता है कि तुम त्रिपाठी लगात हा और हम अग्रवाल।"

"है तो क्या हुआ, हम दानो एक-दूसरे के लच बाक्स का खाना खात है फिर भी उन्होने कभी हमको टोका नही।"

"देखा राम, तुम अपनी मम्मी से बात करना, मैं अपन पापा से पूछूगी। हम उन्हे कहग कि आपको हमसे बहुत प्यार है और आप लोग यह भी कहत हो कि बच्चो म भगवान होता है तो फिर एक बात हमारी मान लीजिए।'

"पर, सध्या बो तो शादी-वादी कुछ होती है।"

सध्या न कहा—"हम नही जानत वो क्या है। हम तो इतना ही पता है कि तुम्हे पापा चाहिए और मुझे मम्मी।"

लच बाक्स खाली हो रहा था और दोनो बच्चे एक-दूसर का हिम्मत दिला रह थ "डरना मत, यह बात जरूर करना क्योकि हमारे अन्दर का भगवान बोल रहा है " और रिसस पूरी होन की घटी बज गई।



# सम्पर्क-सूत्र

1 सावित्री परमार, पालीवाल भवन, खजाने वाला का रास्ता, चादपोल, जयपुर
2 माधव नागदा, रा०उ०मा० विद्यालय, राजसमद (उदयपुर)
3 शीताशु भारद्वाज 138 विद्या विहार, पिलानी (झुझुनू)
4 मुरलीधर शर्मा 'विमल', प्र०अ०,रा०मा०वि० कोवडा (बीकानेर)
5 अरनी रावट स, पोस्ट आफिस के सामने, भीमगज मडी, कोटा 2
6 राधाकिशन चादवानी, वाम्बे मेडिकल स्टोर के पीछे, कोटगेट, बीकानेर
7 पुष्पलता कश्यप, रा०बा०मा० विद्यालय, महामदिर, जोधपुर
8 सुदर्शन राघव, I डी/107 जयनारायण व्यास कालोनी, बीकानेर
9 रूपा पारीक, जगमन का कुआ, बीकानेर
10 सत्य शकुन, हनुमान हत्था, बीकानेर
11 दीनदयाल शर्मा, पुस्तकाध्यक्ष, रा०मा० विद्यालय, हनुमानगढ सगम
12 गोपाल प्रसाद मुदगल सी-65 रनजीत नगर, भरतपुर
13 सलीम खा फरीद, हमामपुर, सीकर
14 श्याममनोहर व्यास, 15 पचवटी, उदयपुर
15 रामकुमार ओझा, बुद्धि विहार, नोहर (श्रीगगानगर)
16 कमर मेवाडी, चादपोल, काकरोली (उदयपुर)
17 श्यामसुदर तिवाडी, कोशीथल (भीलवाडा)
18 जगदीश प्रसाद सैनी प्र०अ०, रा०मा०वि० प्रीतमपुरी (सीकर)
19 नदलाल परसरामाणी, व्या०, रा०उ०मा०वि० भवराना (उदयपुर)
20 कमलेश शर्मा, व्या०, रा०बा०उ०मा०वि०, बारा (कोटा)
21 पूनाराम कमाणी, अध्या०, प०स० श्रीडूगरगढ (चूरु)
22 धनराज पवार, प्र० अ०, राउप्रावि, दाखा वाया बालोतरा, बाडमेर
23 रामनिवास शर्मा, प्रिंसीपल, गिरधरदास मूधडा बाल भारती, बीकानेर
24 दशरथ कुमार शर्मा, प्र० अ० रामावि, पचेवर, टाक
25 रवि पुरोहित, द्वारा श्री भीष्मदेव पुरोहित, श्री डूगरगढ-331803
26 श्याममुदर भारती, फतेहसागर, जोधपुर
27 प्रमिला शर्मा, अ०, राप्रावि, पडोली राठौड, बासवाडा





चित्रा मुद्गल

जन्म 10 दिसम्बर, 1944, मद्रास

शिक्षा फाइन आर्ट्स

कहानी सग्रह 'जहर ठहरा हुआ', 'लाक्षागृह', 'अपनी वापसी', 'इस हमाम मे' [1987 का 'साहित्यिक कृति पुरस्कार' हिन्दी अकादमी दिल्ली], 'ग्यारह लम्बी कहानिया' [1987 का राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरस्कार-राजभाषा विभाग बिहार], 'मेरी रचना प्रतिया', 'जगदवा बाबू गाव आ रहे हैं' [शीघ्र प्रकाश्य]

उपन्यास 'एक जमीन अपनी'

बालकथा सग्रह 'सवक', 'जगल का राज' पुरस्कृत [हिन्दी अकादमी, दिल्ली]

विविध 'तहखानो मे बन्द आइनो के अक्स'

सपादन

(1) असफल दाम्पत्य की कहानिया
(2) टूटते परिवारो की कहानिया
(3) दूसरी औरत की कहानी
(4) पुरस्कृत कहानिया

दूरदर्शन के लिए टेलीफिल्म वारिस का निर्माण।